प्रकाशकीय

आचारांग सूत्र जैनागमों, अंग ग्रन्थों में आदि आगम, अंग माना जाता है। यही नहीं, उपलब्ध पाण्डुलिपियों में जो प्राचीनतम हैं उनमें से एक है आचारांग सूत्र का एक भाग, प्रथम श्रुतस्कन्ध। इस ग्रन्थ की प्राचीनता ही इसका वैशिष्ट्य नहीं है, वस्तुतः *यह ग्रन्थ अपने में समेटे है भगवान महावीर* के चिन्तक एवं साधक व्यक्तित्व की मानव को एक मौलिक देन। मानव जाति के इतिहास में सर्वप्रथम प्रभु महावीर ने जीव की सूक्ष्मता और व्यापकता की *अवधारणा को प्रस्तुत किया था आचारांग सूत्र के माध्यम से।*

विभु महावीर की प्रथम देशना के इस आगम को आधार बना डॉ. साध्वी मुक्तिप्रभाजी ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण से आधुनिक विश्व की अनेक समस्याओं का अध्ययन किया है और समाधान खोजने का प्रयत्न भी किया है। भौतिक व आध्यात्मिक उर्जाओं के परस्पर संयोजन-नियोजन की भूलभुलैया को समझने समझाने का यह प्रयास प्रशंसनीय है। उनकी प्रवचन शृंखला का यह पुष्प अवश्य ही हमारे पाठकों को रोचक लगेगा और उनकी चिन्तन धारा को एक नई दिशा देगा—यह हमारा विश्वास है।

प्राकृत भारती के पुष्प १०८ के संयुक्त प्रकाशन के रूप में इसको प्रकाशित करते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता है।

इन प्रवचनों के संकलन, सम्पादनादि कार्यों से जुड़े सभी महानुभावों के प्रति हम हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं। श्रमण संघ के आचार्य प्रवर श्री देवेन्द्रमुनि जी महाराज ने आशीर्वचन लिखकर इस पुस्तक की उपादेयता में वृद्धि की है अतः हम उनके अत्यन्त ही उपकृत हैं।

उमरावल चोरड़िया	*म. विनयसागर*	*देवेन्द्रराज मेहता*
अध्यक्ष	निदेशक	सचिव
अ. भा. श्वे. स्था. जैन कान्फ्रेंस	प्रा. भा. अ.	प्राकृत भारती अकादमी
	जयपुर	जयपुर

आशीर्वचन

जैन आगम साहित्य ज्ञान और विज्ञान का अक्षयकोष है । आत्मा, परमात्मा, जीव जगत, पुनर्जन्म, पूर्व-जन्म विविध दार्शनिक पहलुओं पर जितना गहराई से चिन्तन जैन आगमों में हुआ है, उतना विश्व के अन्य प्राचीन वांगमय में प्राप्त नहीं है, ऐसा कोई भी विषय नहीं जिस पर जैन-आगमों में गहराई से चिन्तन न हुआ हो, चाहे हम परमाणु को ले लें, परमाणुवाद का तलस्पर्शी अनुशीलन जैन आगमों में देखने को मिलता है ।

जैन आगमों में सर्वप्रथम स्थान आचारांग सूत्र का है । हरमनजेकोबी आदि पाश्चात्य चिन्तकों का यह अभिमत है कि आचारांग की भाषा-शैली और प्रतिपादन पद्धति को देखते हुए ऐसा लगता है कि स्वयं भगवान् महावीर के शब्द प्रस्तुत आगम में संकलित हुए हैं, उनका मौलिक चिन्तन इसमें सुरक्षित है, आचारांग का प्रारंभ होता है मैं कौन हूँ ? कहाँ से आया हूँ ? मेरा स्वरूप क्या है ? और मैं कहाँ जाऊँगा ? एकान्त शान्त क्षणों में साधक स्व के अस्तित्व पर चिन्तन करता है । पर अस्तित्व पर चिन्तन करना सहज है पर स्वयं का चिन्तन करना बहुत ही कठिन है, जिसने 'स्व' को समझ लिया वह व्यक्ति 'पर' को कष्ट नहीं देगा वह यही सोचेगा जैसे मुझे सुख प्रिय है, प्राण प्रिय है वैसे ही विश्व के सभी जीवों को अपने प्राण प्रिय हैं, जिस प्रकार मुझे कोई व्यक्ति छेदन, भेदन, ताड़न और तर्जन करता है तो अपार कष्ट का अनुभव होता है, वैसे ही विश्व के सभी जीवों को कष्टानुभूति होती है, मुझे कष्ट प्रिय नहीं है तो अन्य जीवों को कष्ट कैसे प्रिय होगा, जब यह अस्तित्व बोध आत्मा को हो जाता है तो वह षशट्काय के जीवों को अपने ही समान समझ कर हिंसा से ऊपर रहता है, न स्वयं हिंसा करता है न करवाता है और न करने वाले का अनुमोदन करता है । इस आत्मोपम्य दृष्टि का जब साधक के मन में विकास हो जाता है तो स्वतः हिंसा से उसका सम्बन्ध विच्छिन्न हो जाता है ।

आचारांग सूत्र में यह चिन्तन बहुत ही व्यापक रूप से अभिव्यक्त हुआ है; उस चिन्तन को आधार बनाकर परम् विदुषी साध्वी रत्न जैन शासन चन्द्रिका महासती श्री उज्ज्वल कुमारी जी म० की सुशिष्या महासती डॉ० मुक्तिप्रभा जी म० ने प्रवचन दिये हैं, ये प्रवचन आचारांग के आधार पर हैं पर इन प्रवचनों में विदुषी महासती जी का अपना मौलिक चिन्तन है और उसके पीछे उनका गहन अध्ययन है, उन्होंने आगम आदि पौर्वात्य-साहित्य, आधुनिक साहित्य के गहन चिन्तन के आधार पर प्रस्तुत प्रवचन माला को चार चरणों में विभक्त किया है, सर्वप्रथम भूमिका के रूप में स्व के अस्तित्व पर चिन्तन है, अनुभव और परामनोविज्ञान पर चिन्तन है, भौतिक जगत का क्या रूप रहा है, उस पर चिन्तन किया है, उन्होंने पर्यावरण के बढ़ते हुए प्रदूषण पर भी चिन्तन किया है, पर्यावरण के मूल आधार पर उन्होंने प्रकाश डाला है, उन्होंने यह बताने का प्रयास किया है कि आधुनिक युग में संस्कार उदबुद्ध किये जाएं। आर्थिक विषमता के आधार से भी मानव के अन्तरमानस में तनाव पैदा होता है। संवेदनात्मक अनुभव और संवेगों की उत्तेजना पर किस प्रकार नियंत्रण किया जा सकता है, समस्याओं का समाधान कैसे किया जाए, पराशक्ति का प्रयोग और परिणाम किस रूप में आते हैं, प्रभृति विषयों पर उन्होंने प्रथम चरण में प्रकाश डाला है।

द्वितीय चरण में उन्होंने अपने चिन्तन का आधार बनाया है, शारीरिक, मानसिक, आत्मिक समस्याएँ और उत्तेजना का मूल केन्द्र कहाँ है? उस मूल केन्द्र पर उन्होंने चिन्तन करते हुए कहा है कि ममत्व से हमें दूर होना होगा और दूर होने का उपाय क्या है? वृत्तियों का निरोध और दमन न कर हमें उनका शमन करना होगा। वासना को उपासना के रूप में बदलना होगा। उन्होंने अपने एक प्रवचन में इस बात पर भी प्रकाश डाला है कि संपत्ति आसक्ति से विपत्ति बन जाती है, यदि मन में अनासक्ति रहे तो संपत्ति विपत्ति नहीं बनती, साधक के पास संपत्ति रहती है पर उसके प्रति मूर्च्छा नहीं रहती, इसीलिए वह संपत्ति परिग्रह नहीं बनती क्योंकि आसक्ति ही परिग्रह है, उन्होंने इस प्रश्न पर भी चिन्तन किया है कि सुख, दुःख के रूप में किस प्रकार रूपान्तरित होता है। विषयों के आवर्त में जो आत्मा

फंस जाता है, उसके जीवन में विविध समस्याओं का जाल स्वतः बुन जाता है और वह आत्मा अहर्निश आर्त-ध्यान और रौद्र-ध्यान से मुक्त नहीं हो पाता । पापों से बचने के लिए जीवन में परिवर्तन आवश्यक है ।

तृतीय चरण में महासती जी ने इस बात पर प्रकाश डाला है, कि पार्थिव देह की सार्थकता किसमें है, साधक को अपने आप पर आस्था रखनी चाहिए, क्योंकि स्वयं पर जब तक आस्था नहीं होगी तो वह साधना के पथ पर अपने मुस्तैदी कदम बढ़ा नहीं सकेगा । विवेक के द्वारा ही वह आश्रव और परिश्रव को और बन्ध के स्वरूप को समझ सकेगा ! वह अशुभ से शुभ की ओर बढ़ सकेगा, उसके कदम आसक्ति से अनासक्ति की ओर गिरेंगे, उसके जीवन का कायाकल्प हो जाएगा, जन्म और मरण की शृंखला क्या है, किस कारण से आत्मा का उत्थान और पतन होता है, प्रमाद किसे कहते हैं, अप्रमाद किसे कहते हैं, हिंसा क्या है, अहिंसा क्या है, आसक्त और अनासक्त जीवन का आधार क्या है ? आदि विविध विषयों पर विदुषी महासती जी ने अपना चिन्तन दिया है ।

चतुर्थ चरण में विदुषी महासती जी ने परिवर्तन की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया के रहस्यों को उद्घाटित किया है, अध्यात्म साधना का मूल श्रोत क्या है, भावना की भव्यता से जीवन में किस प्रकार परिवर्तन आता है, किस प्रकार उसके अन्तर जीवन में वैराग्य के अंकुर प्रस्फुटित होते हैं । वह सोचने लगता है कि जीवन अनित्य है, संसार का कोई भी पदार्थ उसे शरण नहीं दे सकता, संसार की असारता का सम्यक परिबोध उसे होने लगता है, मैं अकेला हूँ, अकेला आया था और अकेला ही यहां से विदा होऊंगा, जिस तन पर मेरे मन में अहंकार है यह तो असुचि का घर है, आश्रव और बंध के द्वारा संसार का परिभ्रमण बढ़ता है । मुझे आश्रव के द्वार बंद कर जीवन को संवरमय बनाना होगा ? सम्पूर्ण कर्मों को नष्ट करने पर ही मेरा आत्मा मुक्ति को प्राप्त कर सकेगा । उन्होंने निर्जरा के स्वरूप पर भी चिन्तन करते हुए उनके बारह भेदों पर भी चर्चा की है; साथ ही महाव्रतों पर भी चर्चा की है और पापों के विविध स्वरूप पर भी प्रकाश डाला है और अन्त में उन्होंने मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्तवृत्ति योगिक भावनाओं के संबंध में चिन्तन किया है ।

इस प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ रत्न में परम विदुषी साध्वीरत्न ने अपने मौलिक चिन्तन के द्वारा जो आचारांग पर प्रवचन दिये हैं, वे बहुत ही आकर्षक हैं और ज्ञान वृद्धि करने में सक्षम हैं, आचारांग के सूत्रों की नई दृष्टि से व्याख्या करके उन्होंने अपना गम्भीर चिन्तन प्रस्तुत किया है, वह स्तुत्य है । आशा है कि उनकी यह कृति जन-जन के लिए उपयोगी सिद्ध होगी, यही मेरा हार्दिक आशीर्वाद है ।

—आचार्य देवेन्द्र मुनि

⌘

समर्पण

सद्दा य रूवा य गंधा य रसा य फासा य
अभिसमन्नागया भवंति, से
आयवं नाणवं वेयवं धम्मवं वभवं ।
शब्द, रूप गंध रस और स्पर्श के ज्ञाता
राग द्वेष की फलश्रुति के विज्ञाता जो है उन
आत्मज्ञ, ज्ञानज्ञ, वेदज्ञ, धर्मज्ञ और ब्रह्मज्ञ के
श्री चरणों में ....

⌘

अर्हम्

आचारांग जैसे अलौकिक आगम का किसी एक परम्परा की सीमा में समावेश करना आचारांग क प्रति अन्याय करना है । सभी भेद-विभेद, सारे संघर्ष, सारी विषमताएँ और सारी सीमाएँ हट जाने के पश्चात् जो कुछ भी रह जाता है, वह है आचारांग । ऐसा महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हम सभी के बीच में विद्यमान है । उसका गौरव तभी हो पायेगा जब हम "अस्तित्व का मूल्यांकन" का मूल्यांकन करें और ग्रन्थ की हर पंक्ति का प्रयोगात्मक मंथन करें । सर्वज्ञ महाप्रभु के भीतर से निकले हुए सूत्र का विनियोग घर-घर में स्थापित करें । हिंसा के क्षेत्र में टेक्नोलोजी विकास यात्रा व्यापकता का रूप धारण कर बैठी है, वैसे ही अहिंसा के क्षेत्र में भी ऐसी टेक्नोलोजी व्यापक रूप धारण करे ।

जैन दर्शन की अहिंसा जागनिक संदर्भ में प्रस्तुत हो रही हो वहाँ "अस्तित्व का मूल्यांकन" जैसे ग्रंथ का परिचय संसार को प्राप्त हो जाना अत्यंत आवश्यक है । आज हमारा निजी दायित्व है कि हम संसार में होने वाली अमर्यादित जीवहिंसा को जानें मानें और उसे बचाने का प्रयत्न करें तथा उसके माध्यम से होने वाली हानि का विश्व संदर्भ में मूल्यांकन करें । अस्तित्व का मूल्यांकन और वैज्ञानिक संशोधन का अनुबन्ध एक मौलिक चिन्तन प्रस्तुत करता है । जैसे—

१. अहिंसा को विश्व-शान्ति, इकोलोजी, शोषणमुक्ति, शाकाहार और जीवों का आदर तक पहुँचाना ।

२. अन्तर-बाह्य ऊर्जा की कसौटी, आर्थिक असमानता, प्रदूषण और अन्तर-बाह्य युद्ध की समस्या के साथ अनुबन्धित करना ।

३. पूर्वजन्म, पुनर्जन्म और कर्म सिद्धान्त को संसार के अनेक जीवों के परस्परावलंबन (सिम्बिओसिस) के रूप में विश्वनिर्मित (कोस्मोस) पदार्थों से तथा व्यवहार शुद्धि से अनुबन्ध स्थापित करना इत्यादि ।

हमारा आचार-विचार और व्यवहार अहिंसक समाज रचना के संपर्क से पला हुआ होने पर भी भौतिक युग का प्रभाव सर्वत्र छाया हुआ है । प्रदूषण, शोषण, अमानुषकी व्यवहार सर्वत्र दूषित हुआ है । हिंसा दुर्बल मानव का

अन्तिम आश्रय स्थान है, जिससे प्राणिज हिंसा, मानव हिंसा, धर्महिंसा का सूक्ष्म सन्दर्भ प्राणिमात्र के साथ संयोजित हो गया है । जब तक आचारांग प्रदत्त अहिंसा का जीवन के रहस्यों के साथ स्पर्श नहीं होगा तब तक हमारी साधना अपूर्ण ही रहेगी । डार्विन और लैमार्क के पश्चात् जीव-विज्ञान और शरीर-विज्ञान के क्षेत्र ने भी काफी उन्नति पायी है । न्यूटन, मेकस्पेल तथा आइनस्टाइन के पश्चात् पदार्थ विज्ञान की भी असीम उन्नति हुयी है । परमाणु के संशोधन से तो सारा विश्व काँप उठा है । इस प्रकार पदार्थ-विज्ञान, जीव-विज्ञान, शरीर-विज्ञान, मनोविज्ञान, परामनोविज्ञान अपने-अपने विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र को नया मोड़ दे रहे हैं । इन वैज्ञानिकों की संपूर्ण गतिविधियों को देखते हुए सिद्ध हो रहा है कि आचारांग को इन वैज्ञानिकों ने जाने अनजाने स्पर्श अवश्य किया है । इसके छोटे-छोटे सूत्रों के माध्यम से संसार के बड़े-बड़े कार्य सफल हुए हैं ऐसा स्पष्ट है ।

अपने आपको बनाने के लिए जैसे-जैसे हमारे भीतर समझ, बोध और विचारों का जन्म होता है, वैसे-वैसे भीतर संस्कार का संचय होता जाता है । ये विचार कभी जिज्ञासा, कभी संवेदना, कभी आन्दोलन के रूप में जाग जाते हैं और उन्हीं प्रभाव में बदल जाते हैं । मानव सोचते हैं युग बदल गया इसलिए हम बदल गये; वे सोचते हैं वातावरण का सर्जन करने वाले जितने घटक तत्व हैं वे सारे तत्वों से हम प्रभावित हैं । वे सोचते हैं बाह्य उद्दीपक हमारे आंतरिक वातावरण को उद्दीप्त कर देते हैं । पर ऐसा नहीं सोचा जाता कि हम बदल गये इसलिए युग को बदलना पड़ा । हजारों-हजारों वर्षों से मानव बदलता रहा और पत्थरों की दीवारों की तरह व्यवधान डालता रहा कि हालत खराब है । शोषण, दमन, दुराचार, दुर्व्यवहार का प्रदूषण त्वरित गति से फैल रहा है । बीभत्स व्यवहार, बीभत्स वेशभूषा, और बीभत्स रहन-सहन का माध्यम सीमातीत होने से कंट्रोलिंग पावर खतम हो गया है । रेड किडनेप, हाइ-जेक आदि का निरन्तर भय फायरिंग, बम्ब विस्फोट आदि का निरन्तर विनाश हमारे सम्मुख प्रश्न विराम चिन्ह की तरह खड़े हैं । ऐसे वातावरण में ही हमें सावधान रहना है । प्रश्न आज का है ऐसा नहीं, प्रश्न पहले भी था और आगे भी रहेगा । केवल साधनों का परिवर्तन हुआ है । कभी पत्थर, लाठी, तलवार या बन्दूक थीं, आज बम्ब की सत्ता है । आज बम्ब ने उस प्रश्न को हजार गुना ताकत वाला बना दिया है । ६०,००० हाइड्रोजन बम्ब का निर्माण एक बार ही नहीं पन्द्रह बार इस पृथ्वी का विनाश

कर सकें ऐसी स्थिति है । ऐसी स्थिति में एक वार सावधान होने का सामर्थ्य तो भीतर जाग जाय । हालात खराब हैं उसके विध्वंश की शक्ति का मापदण्ड तो हो जाय । वही शक्ति दिशा सूचक यंत्र बन जायेगी । प्रकृति के साथ-साथ आकृति वदल जायेगी । इस आकृति को बदलने का माध्यम है अस्तित्व का मूल्यांकन ।

हम जनम-जनम से कहीं मिलते हैं, कहीं विखरते हैं । कुछ मिटाते जाते हैं, कुछ नया उभारते रहते हैं । हम संसार से, संसार के आकर्षण से और संसार के प्रभाव से जितने मुक्त होते जायेंगे उतने ही आगे बढ़ते जायेंगे, जिससे हमारा जीवन गतिमान होता रहेगा । नदी का प्रवाह पहाड़ों से निकलता हुआ कितनी चट्टानों से टकराता है तब मार्ग में आने वाली वाधाओं से लकीर खींची जाती है और पानी को रास्ता मिलता जाता है ।

हमने सोचा पुराने युग को वदलना है और नये युग का निर्माण करना है और वह त्वरित गति से हो गया । एक आविष्कार का निर्माण होता है, दूसरा पुराना हो जाता है । एक परम्परा चलती है, दूसरी पुरानी हो जाती है । एक नेता नया विधान बनाता है, पीछे के सारे विधान पुराने हो जाते हैं । अतीत जकड़े हुए है मानव के भावी आविष्कारों से । मनोवैज्ञानिकों ने, वैज्ञानिकों ने, शरीरशास्त्रज्ञों ने नये-नयै आविष्कार का निर्माण किया और पुराना ढाँचा बदलता गया । वह उत्सुक हो जाता है कि पुराना ढाँचा वदल गया । खुशी की बात है, पुराना बदल गया किन्तु बहुत कुछ गलत बदल गया वही अफसोस रह गया । पत्थर में प्रतिमा तो पहले से ही विद्यमान थी । केवल गलत पत्थर को ही विद्यमान थी वह भी टूट गई । वह भूल गया कि इसमें प्रतिमा विद्यमान थी । उसे यह भी पता नहीं कि मैंने गलत पत्थर हटाये हैं या सही प्रतिमा । ऊपर का कवर बदलने से युग नहीं बदल जाता । युग तो पहले भी था आज भी है और आगे भी रहेगा किन्तु कवर बदलते जाते हैं । जिसने कवर बदल दिया वह सोचता है मैं ही प्रथम और अन्तिम हूँ । उसे पता नहीं कि मेरे पीछे प्रतिस्पर्धा वालों की कितनी वड़ी रेखा है । उसी के सामने ही जब नया कवर तैयार होता है तो पुराना जगत तड़फता है, पीड़ा का अनुभव करता है, उसके जीवन में आत्मग्लानि, हीनता, दीनता और उदासीनता छा जाती है ऐसे ही दीन-हीन और उदासीन मानव का यह संसार बसा है । वह हमेशा दूसरों से आगे निकलने की कोशिश करता है किन्तु उसे पता नहीं कि वह कितना पीछे हट रहा है । उसकी

जिन्दगी में कितने काँटे लग गये हैं । जहाँ काँटे पैदा होते हैं वहाँ फूल कभी पैदा नहीं होते हैं । एक ही स्थान में दोनों नहीं हो सकते हैं । अतः हमें आचरण और व्यवहार की दूरी नहीं, निकटता अपनानी है ।

पदार्थ विज्ञान का चुम्बकीय क्षेत्र, जीवविज्ञान के क्षेत्र में आकृति के रूप में जनिनशास्त्रीय (मोर्फोजीनेटिक) मनोवैज्ञानिक कर्ट ल्यूइ का क्षेत्र सिद्धान्त (फील्ड थ्योरी) और जीवनाकाश (लाइफ स्पेस) की संकल्पना का विकास प्रचलित है । हेन्री वर्गसो 'सृजनात्मक उत्क्रान्ति'' में चेतना के अवरोध जैसे पदार्थ को जड़ कहते हैं । ऐसे तो जड़ पदार्थो में भी डी. एन. ए., आर. एन. ए. के माध्यम से संशोधन हो रहा है । प्रति ध्वनि (रेसोनन्स) अर्थात् सिम्पथेटिक वाइब्रेशन सारे संसार में व्यापक है । इन स्पन्दनों के माध्यम से अहिंसात्मक *अस्तित्व जो अत्यंत सूक्ष्म रूप में समग्र विश्व में आन्तरक्रिया (Interaction)* मे संयुक्त है । उसे उजागर करने हेतु प्रस्तुत ग्रंथ में आधुनिक युग की समस्याओं को देखते हुए प्रथम चरण में पच्चीस समस्याओं का समाधान किया है ।

इस ग्रंथ में चार चरण हैं और चारों ही विभिन्न संदर्भो से संयुक्त हैं । प्रथम और द्वितीय चरण गद्यात्मक और पद्यात्मक हैं तथा आचारांग के माध्यम से प्रत्येक समस्या का समाधान किया है । तृतीय और चतुर्थ चरण आचारांग के सूत्रों के माध्यम से आत्मा की कर्तृत्व और भोगतृत्व शक्ति का तथा मुक्त होने के उपाय का प्रयोगात्मक विश्लेपण है ।

प्रस्तुत ग्रंथ में साध्वी डॉ. अनुपमा जी, साध्वी विरती साधना जी एवं डॉ. विजय बहादुर सिंह का संयोग रहा अतः हमारे लिए प्रशंसनीय है ।

प्रश्न का विविध रूप, स्थान और विभिन्न गाँवों के व्यक्तियों के माध्यम से प्राप्त हुआ है । अनेक लोगों की माँग होने से साध्वी डॉ. अनुपमा जी ने इन प्रश्नों का संकलन करके मेरे द्वारा समाधान पाया है । पाठक सम्बोधन से स्व का बोध करने में सफल रहे यही शुभ कामना ।

आचारांग
जैन आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर
जैन विश्व भारती, लाडनूं
—साध्वी मुक्तिप्रभा

ॐ

प्रथम चरण

द्वितीय चरण

तृतीय चरण

चतुर्थ चरण

प्रथम चरण

१

साक्षात्कार का अनुभव जागृत अवस्था का प्रयोग और परिणाम

- अस्तित्व—अभेदज्ञान की प्रक्रिया
  संस्कार—रूपांतरण की प्रक्रिया
  संयोग—अतीत और अनागत की प्रक्रिया
  परिभ्रमण—जन्म और मृत्यु की प्रक्रिया
  जागरन—एकत्व का अनुचिन्तन की प्रक्रिया
  आवृत्त—आत्मा की अनावृत प्रक्रिया
- पूर्व स्मृति का चिन्तन
  पुनर्जन्म का अनुभव
  आकृति का वैचित्र
- कर्म—प्रवृत्ति का परिणाम
  - अतीन्द्रिय ज्ञान की शक्ति
  - प्रेतात्मा का प्रभाव
  - एस्ट्रल बॉडी
  - एथिरिक बॉडी

  जड़-चेतन का विलक्षण संयोग
- विद्युत उर्जा का उपयोग
  शारीरिक संतुलन
  पदार्थ मूर्च्छा की असीमता
  इन्ट्यूशन का प्रभाव
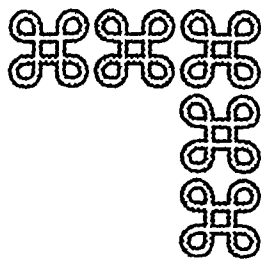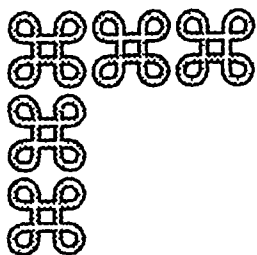
१. "जो इमाओ दिसाओ अणुदिसाओ वा अणुसंचरइ,
सव्वाओ दिसाओ सव्वाओ अणुदिसाओ जो आगओ
अणुसंचरइ सोहं ।"

अर्थ—जन्म और मृत्यु द्वारा दिशा और अनुदिशा में जो परिभ्रमण करता है वही मैं हूँ अर्थात् वही सशरीरी आत्मा है ।
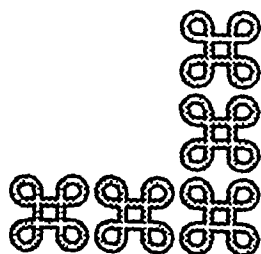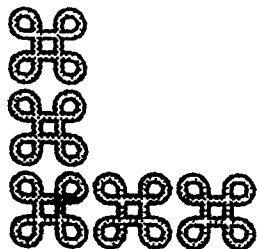
अर्हम्

अस्तित्व

१. आत्मा जैसा कोई तत्त्व है, ऐसा अनुभव अवश्य हुआ, किन्तु जन्म और मृत्यु क्यों ? आत्मा एक ही स्थान पर क्यों नहीं रहता, परिभ्रमण क्यों करता रहता है ?

प्रिय.........

आज दिन तक देह ही आत्मा है, देह से भिन्न आत्मा का कोई अस्तित्व नहीं ऐसा मानते थे । किन्तु मिलन द्वारा ऐसा अनुभव होता है कि अब आपको आत्मा और शरीर दो हैं, ऐसी मान्यता में किसी प्रकार का संदेह नहीं ।

शरीर प्रत्यक्ष है, आत्मा प्रत्यक्ष नहीं, किन्तु दोनों का प्रगाढ़ सम्बन्ध है अतः इस सम्बन्ध का आदि बिन्दु है जन्म और अन्तिम बिन्दु है मृत्यु । जन्म और मृत्यु के बीच जो भी प्रवृत्ति उपलब्ध होती है वह संस्कार का रूप धारण करती है । संस्कार को समझने के लिए आत्मा और शरीर दोनों तत्वों को समझना जरूरी है ।

आत्मा का लक्षण चेतना है और जहाँ चेतना है, वहाँ संस्कार रूपान्तरित होते हैं । संस्कार को रूपान्तरित करने वाला जो प्रवर्तमान है, उसका ही अस्तित्व होता है । हमारे भीतर रहे हुए संस्कारों में कुछ संस्कार इस जन्म के होते हैं, कुछ संस्कार पिछले जन्म के होते हैं और कुछ संस्कार वर्तमान में नये प्राप्त होते हैं और विनष्ट भी होते रहते हैं । संस्कार से ही हमारे अस्तित्व और व्यक्तित्व की, प्रकृति और विकृति की, उत्थान और पतन की सीमा रेखा आँकी जाती है ।

सभी आस्तिक दर्शन सहमत हैं कि पुराने संस्कार जीवन के साथ जुड़े हुए हैं और समय-समय पर वे शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक

प्रवृत्ति में उजागर होते हैं । वर्तमान में मानव जो कुछ भी अच्छाइयाँ या बुराइयाँ धारण करता है उसका परिणाम इस जन्म में, अगले जन्म में, या अन्य किसी भी जन्म में मिलता अवश्य है, ऐसा प्रत्यक्ष प्रमाण है । बच्चा पैदा होते ही रोता है, हँसता है, भयभीत होता है, मुँह से ही दूध या पानी पीता है, इत्यादि जो भी प्रवृत्ति है, पूर्व स्मृति का परिणाम ही तो है और स्मृति संस्कार के विना सम्भव नहीं, तथा संस्कार पूर्व जन्म के विना सम्भव नहीं इस प्रकार पूर्वजन्म और पुनर्जन्म सिद्धान्त यहाँ सिद्ध होता है । जैसे मानव पुराने वस्त्र का त्याग करके नये वस्त्र को धारण करता है । वैसे ही आत्मा पुराने शरीर का त्याग करके नये शरीर को धारण करता है इस प्रकार जन्म और मृत्यु प्रत्यक्ष सनातन सत्य हैं । यह भी एक सत्य है कि जन्म और मृत्यु दोनों अवस्थाएँ शरीर की हैं । शरीर घटता है, बढ़ता है, सड़ता है, रोगी बनता है तथा विनाश को प्राप्त होता है । इस प्रकार उत्पत्ति और विनाश दोनों प्रक्रियाएँ शरीर में घटित होती हैं । आत्मा ध्रुव है, नित्य है, न तो उत्पन्न होता है और न ही विनाश को प्राप्त होता है किन्तु दोनों का संयोग ही जन्म और मृत्यु अथवा पूर्वजन्म और पुनर्जन्म को सिद्ध करता है ।

ऑक्सीजन एक प्राण पोषक गैस है और हाइड्रोजन एक प्राण नाशक तत्व । दोनों विरोधी तत्व हैं, किन्तु दोनों के संयोग से जल जैसा जीवनोपयोगी तत्व का निर्माण होता है । ठीक वैसे ही अकेला शरीर है कोई प्रभाव नहीं, अकेला आत्मा है कोई प्रभाव नहीं । प्रभाव है जड़ और चेतन के संयोग का । जहाँ आत्मा और शरीर का संयोग है वहाँ जन्म और मृत्यु है और जहाँ जन्म और मृत्यु है, वहाँ स्थिरता नहीं परिभ्रमण ही परिभ्रमण है । परिभ्रमण से जड़ और चेतन जगत की भेदरेखा दृष्टि के सामने उभरती नहीं फलतः हमारा शरीर ही आत्मा है, ऐसा मानने का भ्रम कर बैठते हैं, भ्रम के आवरण से आवद्ध आत्मा को, कर्म प्रभावित करते हैं, अध्यवसाय बाह्याभिमुख करते हैं, और संचित संस्कार सहयोगी बनते हैं । भ्रम में फँसने के कारण वह भूल जाता है कि मैं स्वतन्त्र हूँ, अकेला आया हूँ, अकेला ही यहाँ से चला जाऊँगा । उसे शोर हल्ला गुल्ला पसन्द है । भीड़ भड़का में रहने की आदत है । सब से मिलना, जुलना, बोलना, घूमना, फिरना, खाना-पीना उसे अच्छा लगता है । इसलिए संयोग और वियोग, उत्थान और पतन, सुख और दुःख की लम्बी यात्रा वह भोगता रहता है ।

जब यह निश्चित है कि मानव अस्तित्व मूलतः देह नहीं आत्मा है, तब तो उसे पुकार कर यह कहना ही पड़ेगा कि—हे आत्मतत्त्व ! इस यात्रा में तुझे अपने आपको उठाना है और चिन्तन करना है कि मैं आत्मा हूँ और अकेला हूँ । लाखों मानवों के बीच रहने पर भी मानव तू अकेला है । छः खण्ड का अधिपति चक्रवर्ती पर अकेला है, हजारों स्त्रियों का स्वामी पर अकेला है । सारे देश की सत्ता का मालिक राष्ट्रपति पर अकेला । लाखों मानवों के हाथ से हाथ मिलाने वाला प्राइमिनिस्टर पर वह भी अकेला । सौ पुत्रों का बाप धृतराष्ट्र पर अकेला । ऋपियों के ऋपि वशिष्ठ, वाल्मीकि, विश्वामित्र पर अकेले हैं ।

इस एक के अकेलेपन को जिसने जान लिया, उसने सब कुछ जान लिया । इस आत्म तत्व को जिसने जान लिया उसने सारे संसार को, सारे संसार के सुख-दुःख को, सुख-दुःख के सारे संतुलन की अवस्था को जान लिया । जो अपने आप को नहीं जान पाता वह एकत्व का अनुचिन्तन क्या कर पायेगा । यही सबसे बड़ी किन्तु जटिल समस्या है ।

प्रिय आत्म स्वरूप अनु !

राग और द्वेष ये दो ही तो मूल दोष हैं । राग-माया और लोभ को और द्वेष क्रोध और मान की प्रवृत्ति को जन्म देता है । सशरीरी आत्मा मृत्यु के पश्चात् स्थूल शरीर से मुक्त होने पर भी सूक्ष्म शरीर से मुक्त नहीं होता । जीव का सम्बन्ध एक गति से दूसरी गति में सूक्ष्म शरीर के योग से ही जन्म धारण करने का है । इस सूक्ष्म शरीर द्वारा ही कर्म आकर्षित होते हैं जैसे मैगनेट (चुम्बक) लोहे को आकर्षित करता है और लोहा चुम्बक से चिपक जाता है वैसे ही आत्मभाव आत्मा से कर्म आकर्षित होते हैं और आत्मा से चिपक जाते हैं । इन शुभाशुभ कर्मों को भोगने के लिए ही परिभ्रमण करना पड़ता है । तब एक गति से दूसरी गति में जन्म लेना पड़ता है । एक स्थान से दूसरे स्थान पर मरकर जाना पड़ता है ।

हमें इस शरीर के द्वारा आवृत्त आत्मा को मुक्त करना है । ज्ञान, ध्यान, तप और त्याग द्वारा जन्म और मृत्यु पर विजय पाना है । भीतर रही हुयी शक्ति को उजागर करना है । मूर्च्छा में सोये पड़े हो आज से ही जागृत हो जाओ । आशक्ति की तीव्रता शान्ति की सांस नहीं लेने देगी । पदार्थों के लिए संकल्प शक्ति का दान देने वाले लाखों मिलेंगे । पदार्थ प्राप्ति के

लिए अपने जान की कुर्बानी करने वाले भी अनेकों मिलेंगे किन्तु आत्म तत्व को जानने वाला लाखों में एक मिलेगा । निन्यानवे डिग्री तक पानी-पानी है, गरम होता जायेगा पुनः समय पर ठण्डा हो जायेगा किन्तु सौ डिग्री होने पर पानी पानी नहीं रहता वह भाप बन जाता है । पानी का रूपान्तरण भाप में हो जाता है वैसे ही शरीर और आत्मा तब तक जुड़े हैं, जब तक सौ डिग्री तक विशुद्धि अपना कार्य पूर्ण न करे ।

हमें संस्कार से मुक्त होना है, भेद और अभेद ज्ञान की प्रक्रिया को जानना, मानना और अपनाना है । बस एक बार जागृत हो जाओ, फिर तो आत्मा ही परमात्मा है, बस परमात्मा ही परमात्मा है । जहाँ जन्म और मृत्यु नहीं केवल स्थिर अवस्था है, परिभ्रमण का अभाव है । और उस अवस्था तक तुझे पहुँचना है ।

आत्म तत्व की साधना भीतर की यात्रा है । हम बाह्य यात्राएँ अनेक जन्मों में करते आये हैं और अनेक जन्मों में करते भी रहेंगे । हमारे अनुसंधान के सारे प्रयोग बाह्य मिलन के ही द्वार खोलते रहते हैं । हमें भीतर जाने का मार्ग ही नहीं मिला, जिससे हम बाहर ही बाहर भटक रहे हैं । भीतर की यात्रा करने का कोई अवकाश ही नहीं मिला । हमारी बाहरी व्यस्तता ने हमेशा हमारे जीवन को अस्त ही किया है । प्रातःकाल का सूर्योदय होने ही नहीं दिया है । सत-असत का बोध प्रतिभापित ही नहीं हुआ है । भीतर की यात्रा ही सत-असत का बोध करा सकती है । भीतर क्या है और कहाँ स्पर्श करना है उसका ज्ञान आवश्यक है । भूखे-प्यासे मानव को जैसे भोजन पानी मिल जाते हैं तो तृप्ति हो जाती है वैसे ही बहिर्मुखी प्रवृत्ति से त्रस्त मानव भीतर के अनुभव से शान्ति पाता है तो उसे तृप्ति हो जाती है । भीतर के अनुभव से अतृप्त आत्माएँ तृप्त हो जाने से जनम और मृत्यु का परिभ्रमण अल्प हो जायेगा और भीतर का आनन्द अवश्य पायेगा ।

चिन्तन

१. प्रकृति की कई आकृति संस्कृति का रूप धारण करती है तो कई आकृति विकृति का रूप धारण करती है ।

२. उन्माद का अतिरेक अश्लीलता के क्षितिज तक पहुँच चुका है, जिसमें बच्चे, बूढ़े और जवान सब कोई तबाह हो रहे हैं ।

३. रोग और क्लेश का मूल जिह्वा है, खाने से शरीर में रोग होता है और संक्लेश युक्त बोलने से दिल टूटता है ।
४. पीड़ा भोगी जाती है, बाँटी नहीं जाती क्योंकि पीड़ा का मालिक मैं हूँ, पीड़ा मैंने पैदा की है ।
५. महत्वाकांक्षा का रोग घर-घर में फैल गया है इसलिए मानव हीनग्रन्थि से पीड़ित है ।

संसार के सर्वोत्कृष्ट पदार्थ भी
आत्मा के एक छोटे से गुण का
मूल्यांकन करने में मूल्यहीन हैं ।

⌘
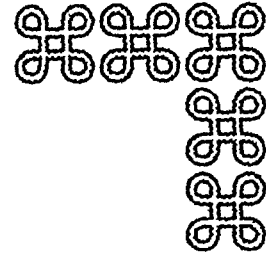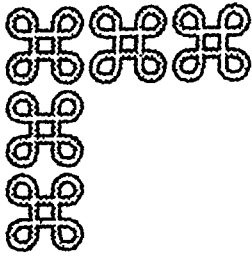
२. "अत्थि मे आया ओववाइए,
णत्थि. मे आया ओववाइए,
के अहं आसी ?
केवा इओ चुओ इह पेच्चा भविस्सामि ।"

अर्थ—पूर्वजन्म और पुनर्जन्म को सिद्ध करता हुआ आत्मा चिन्तन करता है कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, और कहाँ जाऊँगा ।
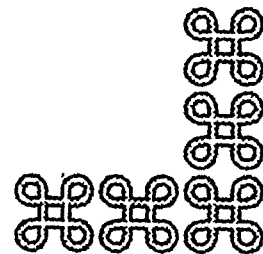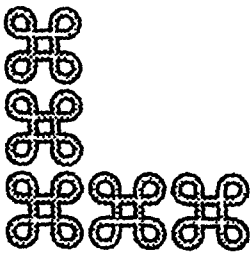
अनुभव

२. वर्तमान परिस्थिति में चेतना के अस्तित्व में सभी का विश्वास है किन्तु पूर्वजन्म और पुनर्जन्म के अस्तित्व में अभी विश्वास नहीं है । क्या पूर्वजन्म और पुनर्जन्म जैसा कुछ है ?

प्रिय..........

प्रश्न उत्तम कोटि का है । वर्तमान युग में चैतन्य का अस्तित्व सभी को स्वीकार है ऐसा अनेक वैज्ञानिकों का सिद्धान्त प्राप्त होता है । इसके साथ-साथ पूर्वजन्म और पुनर्जन्म सिद्धान्त भी अभी अनेक वैज्ञानिकों के द्वारा सिद्ध हो रहा है । क्योंकि पूर्वजन्म या पुनर्जन्म, कोई अपवाद नहीं है, हकीकत है । जो आज पैदा हुआ है वह कहीं से अवश्य आया है, यह निर्विवाद है और जो यहाँ से जाता है वह कहीं अवश्य पैदा होता है यह भी निर्विवाद है और इसका प्रमाण है—स्मृति ।

स्मृति से ही हमारे चिन्तन के चार आयाम प्रतिबिम्बित होते हैं । जैसे—

१. मैं कहाँ से आया हूँ ?

२. कहाँ जाऊँगा ?

३. मैं कौन था ?

४. क्या होऊँगा ?

मानवीय बौद्धिक स्तर विविध प्रकार का अनुभव करता है । उसमें प्रथम अनुभव यही है कि चेतन की हर प्रवृत्ति अचेतन से भिन्न है । चेतन की प्रवृत्ति प्रत्यक्ष है अतः उसके अस्तित्व का अस्वीकार भी नहीं हो सकता । सवाल है पूर्वजन्म और पुनर्जन्म का । न वह प्रत्यक्ष है न अनुभव में ।

परमात्मा महावीर तो अपने साधक समवाय को जाति स्मृति (पूर्वजन्म की स्मृति) करवा देते थे । जिनकी आत्मा विशुद्ध है उन्हें तत्काल ही विशिष्ट ज्ञान की उपलब्धि हो जाती थी । आज ऐसे ज्ञान का अभाव है । फिर भी वर्तमान युग के अनेक वैज्ञानिकों ने भी इस तथ्यात्मक विषय का अन्वेषण किया है जिसमें—अलेकझेन्डर केनन ने "द पावर विदिन" नाम की अपनी किताब

में पुनर्जन्म सिद्ध करके वताया है । इतना ही नहीं ऐसे १३०० सौ व्यक्तियों के पूर्वजन्म को सिद्ध करने की सफलता भी पायी है । जयपुर विश्वविद्यालय के पैरासाइकोलॉजी विभाग द्वारा अनेक संशोधन में एक संशोधन पुनर्जन्म सम्बन्धी भी सामने आया है । इसमें करीवन छह सौ प्रमाण का संकलन उपलब्ध है, तथा नामों, स्थानों और व्यक्तियों का पूरा परिचय भी प्रदर्शित है ।

इन्टरनेशनल स्पिरिच्युआलिस्ट फेडरेशन (स्विजरलैण्ड) के प्रधान कार्ल मूलर ने सात सौ केसों का विवरण दिया है । जिससे सावित होता है कि पुनर्जन्म सिद्धान्त है ।

मोरी बर्नस्टेइन नाम के हीप्नोटिस्ट ने भी पुनर्जन्म सिद्धान्त की अपनी रिपोर्ट तैयार की है । उन्होंने प्रयोगात्मक स्थिति में टेप रेकार्डिंग भी किया है ।

"द सर्च फोर बाइड मर्फी" पुस्तक में इस विषय की जानकारी मिलती है ।

पुनर्जन्म सिद्धान्त को सिद्ध करने में अमेरिकन ऑथर लेमर्स भी सफल रहा है । अपने और अन्यों की "लाइफ रीडिंग्स" कर उन्होंने ढाई हजार जीवनियों के रेकार्ड हमारे लिए उपलब्ध कराये हैं, जिसके ऊपर संशोधन हो रहे हैं ।

एड्गर के तीस हजार रीडिंग और लाइफ रीडिंग्स के रेकार्ड भी सुरक्षित हैं ।

महायोगी श्याम चरण लाहिड़ी ने अपने पिछले अनेक जन्म का साक्षात्कार किया था । उसमें से एक घटना पटना की है । योगी जी को द्रोण पर्वत पर पहुँचने के लिए बार-बार आवाज सुनाई दे रही थी । योगीजी जब वहाँ पहुँचे तो कोई प्रकाश पुँज योगीराज के द्वार पर प्रतीक्षा कर रहे थे । वे उनके पूर्व जन्म के गुरु थे । गुरू के साथ वीती हुई सारी घटनाएँ प्रत्यक्ष हो रही थीं । कितने जन्म में गुरु के साथ रहने को योग प्राप्त हुआ था । कहाँ और कैसा यह स्थल भी निर्देश हुआ था जिससे प्रत्यक्ष प्रमाण किया जा सकता है ।

जोय ढाई साल की थी तब से पूर्वजन्म के परिचित दृश्यों के चित्र बनाया करती थी । परिवार में सब हैरान थे कि ढाई साल की बच्ची ऐसे चित्र किस प्रकार अंकित कर सकती है । जिसका किसी को अता-पता नहीं उसका पता उसको कैसे है । बारह साल की हुई तब ओमपोल से सम्बन्धित ऐतिहासिक सारी घटनाएँ क्रमशः बता दिया करती थी । जो सारी की सारी सही थीं । जोय पिछले नौ जन्म का अपना इतिहास बताती थी और वह वैसा ही था, उसका अनुभव प्रमाण भी यथा समय किया जाता था ।

डॉ. मैक्स मूलर का कहना है कि मानव बिना अपराध किये भी विशेष दुःख का शिकारी बन जाता है, वह पूर्वजन्म कृत फल का परिणाम है ।

कोहम्— मैं कौन हूँ, सोहम्- मैं वही हूँ, जिसका इस देह में अस्तित्व है । जो दृष्टिगोचर न होने पर भी अनुभव गम्य है । जो शब्द होने पर भी शब्दातीत है । जो तर्क की तुला से तोला नहीं जाता । जो मति के विषय में ग्राह्य नहीं होता, जिसका कोई आकार नहीं, जिसमें कोई रंग, रूप, रस और गन्ध नहीं, जो स्त्री, पुरुष या नपुंसक नहीं । जो जन्मधर्मा नहीं, जो मृत्युधर्मा नहीं, केवल चैतन्यधर्मा है । इसका अनुभव करना है उसे बाहरी पर्तों की तीव्रता ने अनन्तकाल से घेर रखा है । बन्द पड़ी उर्जाएँ सक्रिय होने पर भी अतिक्रमण का आक्रमण नहीं कर पातीं अतः सोहम् के स्थान पर कोहम् ही प्रश्न विराम रह जाता है । पराचेतना की महायात्रा का प्रारम्भ अनेक बार करने पर भी न: जाने कहाँ और कैसे वह भटक जाता है और अपना मूल प्रकाश खो बैठता है । उर्जा प्रवाह और चुम्बकीय तरंगों का अस्तित्व सूक्ष्म प्रक्रियाओं के प्रयोग से ही होता है ।

जिस दंगे को शान्त करने के लिए गोली और बम्ब की आवश्यकता होती है ऐसी भीड़ को वै. पावलिटा बिना साधन पन्द्रह मिनट में शान्त कर सकता था । विद्युत कम्पन से बिना देखे ही स्त्री है या पुरुष पहचान सकता था । एक बार भीतर चले जाओ जो शुभ है, जो सुन्दर है, जो सत्य है उसका दर्शन कर लो । सूर्य स्वयं प्रकाशमान है कहीं हम वंचित न रह जायें । जो अपने को अपने से वंचित रखता है वह अपने को ही धोखा देता है । मैं केवल उसे ही पा सकता हूँ जिसे मैंने जन्म-जन्म से पाया हुआ है । मैं उसी का मालिक हूँ जिसकी मैंने जन्म-जन्म से मालिकी भोगी है ।

प्रिय आत्म स्वरूप अनु !

जो उत्पन्न होता है वही (आत्मा) पूर्व की स्मृति को उजागर करता है । अतः पूर्व जन्म की स्मृति का आधार शरीर नहीं, आत्मा है । जैन दर्शन में इसे जाति स्मरण ज्ञान कहते हैं । जो प्रवृत्तियाँ पूर्वजन्म के शरीर द्वारा हुयी हैं वही प्रवृत्तियों की स्मृतियों का आधार वर्तमान शरीर नहीं है । अतः पुरातन शरीर और नूतन शरीर के बीच जो स्मृतियाँ झलकती हैं वे पूर्वजन्म और पुनर्जन्म को सिद्ध करने में सफल होती हैं ।

पर्दे पर दिखलाई पड़ने वाली सजीव आकृतियों का स्वरूप ध्वन्यात्मक विद्युत चुम्बकीय तरंगों से जोड़ा जाता है तब ध्वनि अनुरूप चित्र व्यक्त होते हैं । वैसे ही शरीर और आत्मा मन, वाणी, और कर्मरूप योग से जुड़े हुए हैं । पिक्चर के चित्र और ध्वनि तरंगें भिन्न हैं फिर भी विद्युत तरंगों से यह भिन्नता एकरूपता में रूपान्तरित हो जाती है ।

जैसे कार्डियोग्राम द्वारा हार्ट की गतिविधि नापी जाती है और सही रिपोर्ट प्राप्त हो जाती है, वैसे ही आज प्रयोगों द्वारा प्रत्यक्ष जगत में पुनर्जन्म, पूर्वजन्म, आत्मा और कर्म का प्रत्यक्ष समाधान किया जाता है । सूक्ष्म शरीर का फोटो भी इस विषय को प्रमाणित करने में सफल रहा है ।

इस प्रकार पूर्वजन्म और पुनर्जन्मों की स्मृतियों से घटित अनेक घटनाएँ सिद्ध करती हैं कि मरने के साथ ही जीवन का अन्त नहीं हो जाता किन्तु जन्मजन्मांतर तक जीवन का संयोग विभिन्न योनियों से संयुक्त होता रहता है । और पूर्वकृत कर्मों के अनुसार इस जन्म में वह सुख और दुःख भोगता रहता है ।

चिन्तन

१. सूक्ष्म दर्शक यंत्र में सूक्ष्म जीवों की जाँच हो सकती है और रोग का निदान भी होता है । अतः शारीरिक रोग का निदान यंत्र है ।
२. सूक्ष्म वृत्तियों को निरोध करने हेतु भीतर एकाग्रता द्वारा विकल्पों का निरीक्षण आवश्यक है, अतः भव रोग का निदान विकल्प है ।
३. शारीरिक रोग अहित करता है जिसकी उत्पत्ति हिंसा है भव रोग जन्म से मुक्त करता है, जिसकी उत्पत्ति अहिंसा है ।

४. टूटी हुई हड्डी प्लास्टर से जोड़ी जाती है किन्तु टूटा हुआ दिल प्लास्टिक से नहीं जोड़ा जाता ।

५. देह में आत्मा के दर्शन करने हैं तो हमें आँखों की आवश्यकता नहीं सत्य की आवश्यकता है ।

दूध में घी, पुष्प में पराग,
लकड़ी में आग और रोग
में वेदना है, वैसे ही शरीर
में आत्मा छिपा हुआ है ।

⌘
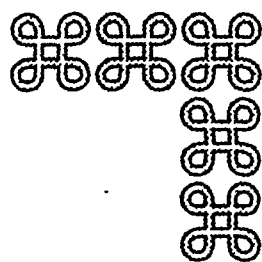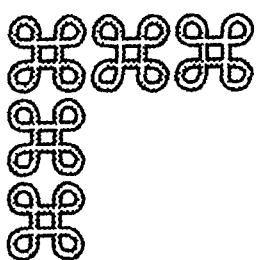
सहसम्मुइयाए

अर्थ—अनेक मानव ऐसा अतीन्द्रिय ज्ञान शक्ति से जानते हैं कि मैं कहाँ था ।

परवागरणेणं

अर्थ—अन्य द्वारा (अर्थात् ज्ञानी द्वारा, प्रेतात्मा द्वारा या देवत्व द्वारा) जानता है कि मैं कहाँ से आया हूँ अथवा कहाँ जाऊँगा

परामनोविज्ञान

३. पुनर्जन्म, मृत्यु, आत्मा, जड़, चैतन्य आदि के भेद रेखा का अन्धकार तो प्रकाशमान हो गया किन्तु प्रेतात्मा, परामनोविज्ञान द्वारा निर्दिष्ट अतीन्द्रिय ज्ञान-शक्ति का स्रोत भी जानना चाहता हूँ ।

प्रिय..........

आप जीव विज्ञान के रहस्य का स्वीकार करते हो तो आपको सर्वप्रथम प्राणी जो कुछ भी मानसिक, वाचिक, कायिक और वौद्धिक प्रवृत्ति करता है उसका मूल आधार भी जानना आवश्यक है और वह है कर्म । कर्म इस जन्म के हों, पूर्व जन्म के हों या सैकड़ों जन्मों के हों, किन्तु अच्छी बुरी प्रवृत्ति का परिणाम अवश्य देते हैं, यह निर्विवाद है ।

कर्म के माध्यम से हम इस संसार में अनेक प्राणियों का संयोग और वियोग जन्य सुख और दुःख उपार्जित करते रहते हैं । अपना प्रियजन जव अपने से अन्तिम विदा लेता है तो वह कहाँ गया होगा । उसका अता-पता कुछ मिल सकता है यदि जानने वाला कोई अतीन्द्रिय ज्ञानी मिल जाय तो यह कितनी प्रसन्नता की बात होगी ।

परामनोवैज्ञानिक ओलिवर लोज, विलियम वारेट, रिचर्ड हडसन, कानन सीनेट आदि ने प्रेतों से सम्पर्क साधकर गम्भीर खोजें की हैं जिसके अनेक उदाहरण और प्रमाण मिलते हैं । कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में प्रेतात्माओं के विषय में गहरे शोध प्रयोग हुये हैं । अमेरिका में साइकिक रिसर्च फाउण्डेशन नामक संस्था में भी ऐसे प्रयोग हुए हैं वहाँ तो प्रेतात्मा बदला भी लेते हैं ।

ब्रिटिश परामनोवैज्ञानिक बर्नर्ड का एक अनुभव कुछ विशेष प्रकाश डालता है, जैसे—इंग्लैण्ड में पोर्ट्स साउथ रोड इशर कस्बे के पास से जो भी कार निकलती है उसे बंदूक की गोली ऐसी लगती है कि शीशे छत या दरवाजे पर सीधा गोलाकार छिद्र ही हो जाता है । जांच करने पर पता चला कि वहाँ झील में एक प्रेतात्मा का निवास है ।

सर ओलिवर लॉज का पुत्र रेमण्ड प्रथम विश्व-युद्ध में मारा गया था ।

उसकी मृतात्मा के माध्यम से खोज ने आत्मा, कर्म, पुनर्जन्म, प्रेतात्मा इत्यादि का शोध प्रयोग आवश्यक अन्वेषण है ऐसा मान कर, "साइकिक रिसर्च सोसायटी" की स्थापना करके उसके माध्यम से अज्ञात तत्त्वों का सफल प्रयोग सिद्ध कर दिखाया है ।

फ्रान्स के सम्राट हेनरी चतुर्थ के पीछे एक बार प्रेतात्मा की आकृति आने लगी । जाँच करने पर आवाज आयी, षड्यंत्र के द्वारा शीघ्र ही आपकी मृत्यु है, और निकट समय में ही हेनरी की मृत्यु हो गई ।

एक मृतात्मा ने तो कन्हैयालाल मुंशी जी को ऐसा कहा कि आप शीघ्र ही कैद से मुक्त होने वाले हो और पुनः कैद में जाने वाले हो और ऐसा ही सत्य रहा ।

न्यूयॉर्क के एक मानस चिकित्सक ने तो ऐसा लिखा है कि—इस दृश्य विश्व के परे एक विलक्षण विश्व है, जहाँ मृत्यु के उपरान्त जीवन है । दुर्घटना से एकाएक जिसकी मृत्यु हो जाती है वह अतृप्त आत्मा प्रेतात्मा के रूप में इस संसार में भटकती रहती है । जैन दर्शन में ऐसी आत्मा को व्यंतरदेव कहते हैं । वैक्रेय शरीर के प्रभाव से तथा सूक्ष्म शरीर के सम्बन्ध से ये आत्मा विविध रूप धारण कर सकती है तथा अदृश्य रूप में परिभ्रमण करती रहती है ।

ये देव अनेक बार आने वाले विघ्नों की सूचना उनके प्रियजनों को देते हैं । अनेक बार वे खतरों से बचने के उपाय भी बताते हैं या खुद भी बचाते हैं । पूर्व सूचना संकेत और उपाय ऐसे भी होते हैं जिनसे खतरा देव खुद मोल ले लेते हैं या अपने प्रियजन को छोड़कर अन्य को खतरे में लपेट लेते हैं ।

कभी ईर्ष्या, द्वेष और वैरभाव होने से जान-माल की हानि भी हो जाती है । कभी गुप्त धन का स्थान और सूचना भी दे देते हैं । कभी उत्थान और पतन का ज्ञान करा देते हैं, तो कभी जीवन में उत्साह का पथ प्रदर्शित कराते हैं । कभी हताश, निराश और हीन भावों से घेर लेते हैं, तो कभी नेपोलियन की मृत पत्नी जोसेफाइन की प्रेतात्मा के तरह मृत्यु की पूर्व सूचना दे देते हैं । महारानी विक्टोरिया के मृत पति प्रिंस अलबर्ट को अपने पत्नी के प्रति अत्यधिक आशक्ति भाव होने से समय-समय पर उनके प्रेत के द्वारा महत्वपूर्ण सुझाव देने के प्रमाण भी मिलते हैं ।

आज वैज्ञानिकों को एक नया आयाम मिल रहा है । कुछ ऐसा समय था प्रेतात्मा को चमत्कार के रूप में किसी के शरीर में तथा देवी देवता के रूप में स्वीकारा जाता था । किन्तु कुछ ऐसा भी समय था कि ये हंवक है ऐसा नहीं होता है इत्यादि प्रश्न उपस्थित होते थे । मान्यता एक बात है और स्वीकार करना दूसरी बात है । अतीन्द्रिय ज्ञान शक्ति की समूची साधना अनुभव की साधना है । अनुभव अवौद्धिक होने से बुद्धिगम्य नहीं हो सकता । वाह्य प्रवृत्ति से परे होकर मन, वाणी और शरीर को एक प्रवृत्ति में केन्द्रित करने से मन, विचार और विकल्प निर्विकल्प होते हैं । बुद्धि, तर्क और शंकाओं की दीवारें समाप्त हो जाती हैं और प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त होता है । अनुभव जागृत होने पर किसी भी प्रकार का संदेह नहीं होता है ।

प्रिय आत्म स्वरूप अनु !

आज परामनोवैज्ञानिक, वैज्ञानिक, साइकोलोजिस्ट आदि अपने शोधन कार्य में मानव मन की अतीन्द्रिय शक्ति का प्रयोगात्मक उपाय बताने में सफल रहे हैं । सूक्ष्म शरीर का शोधन करके एक नया चमत्कार जगत में प्रसिद्ध कर रहे हैं । इस पृथ्वी पर रहने वाले देहधारी आत्माओं का ही नहीं एस्ट्रल और इथिरिक देहधारियों का भी सम्पर्क करवाने में सफल रहे हैं । अब तो आप समझ ही गये होंगे कि आत्मा है, प्रेतात्मा है और अतीन्द्रिय शक्ति भी है ।

जड़ और चेतन का विलक्षण सम्बन्ध है । जैसे—टी. वी. और हाईफ्रिक्वेन्सी-विद्युत चुम्बकीय तरंगों का सम्बन्ध है । टी. वी. सेट में आई हुई अनेक ट्यूबें ट्रान्सफॉर्मर चित्र और ध्वनि को व्यक्त करने में सहायक होते हैं । हाईफ्रिक्वेन्सी वाली तरंगें अदृश्य होने पर भी जब टी. वी. में वह प्रविष्ट होती है तब ही व्यक्त होती है । उसी प्रकार आत्मा एक शरीर से दूसरे शरीर में और दूसरे शरीर से तीसरे शरीर में प्रविष्ट होती है । इस प्रकार शरीर और आत्मा का आधार और आधेय रूप में अस्तित्व जाना जाता है । शरीर में जो चेतना शक्ति अनुभूत है वह टी. वी. सेट में रही हाईफ्रिक्वेन्सी तरंग की तरह कार्य करती है । आत्मा पुराना शरीर त्याग कर नया शरीर धारण करता है उस समय भी ज्ञान, अनुभूति, स्मृति आदि तरंगें उसी रूप में व्यक्त होती हैं । अतः स्पष्ट है कि शरीर को चैतन्य बनाने वाला तत्व शरीर से भिन्न है जैसे टी. वी. सेट से टी. वी. की तरंगें भिन्न हैं ।

सूक्ष्म शरीर के फोटो लेने की सफलता ने अब तर्क, अनुमान, युक्ति या गलत प्रमाण सब कुछ फेल कर दिया। तंत्र द्वारा, मंत्र द्वारा और यंत्र द्वारा हमारे योगियों ने जैसा प्रमाण बताया है तथा हमारे ज्ञानी सर्वज्ञ महा प्रभु ने जैसा प्रत्यक्ष देखा है वैसा ही परामनोवैज्ञानिकों ने, प्रेतविधा तंत्रिकों ने, तथा सूक्ष्म शरीर के एक्स-रे निर्माण करने वाले वैज्ञानिकों ने अपने सफल प्रयास द्वारा आत्मा, पूर्वजन्म, पुनर्जन्म, प्रेतात्मा आदि के अस्तित्व का स्पष्ट बोध करा दिया है। जिससे आज वर्तमान युग में मूल आधार की मान्यताएँ स्वतः सिद्ध हो जाती हैं।

चिन्तन

१. शारीरिक स्वस्थता, मानसिक शान्ति और प्रज्ञा की निर्मलता निरन्तर जागरूकता और अस्तित्व के बोध से बनी रहती है।

२. आत्मा और शरीर के चक्रव्यूह को तोड़ने का प्रथम और अन्तिम साधन है—समता।

३. जागरूक प्रहरी के निरीक्षण से आत्मा और शरीर के भेद विज्ञान का अनुभव हो सकता है।

४. शिथिलीकरण से शरीर मन और ग्रंथियाँ ही प्रभावित नहीं होतीं किन्तु चैतन्य का प्रत्येक प्रदेश झंकृत हो जाता है।

५. शरीर और आत्मा की अन्तिम प्रक्रिया कर्म संस्कारों से अनावृत होने की है।
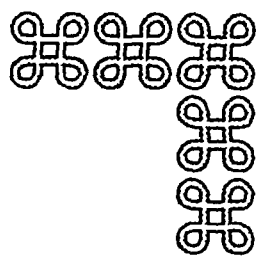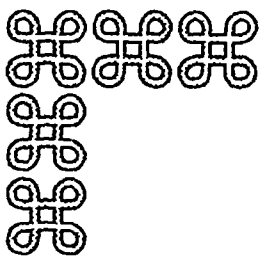
३. "से आयावाई, लोगावाई, कम्मावाई, किरियावाई ।"

अर्थ—संसार, कर्म और क्रियाओं में अनुसंचरण करने वाला, जानने वाला और देखने वाला आत्मवादी है ।
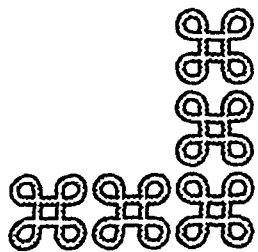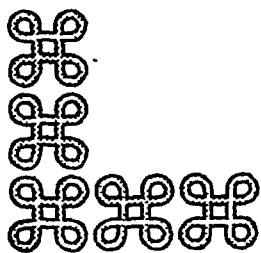
भौतिक-जगत

४. पदार्थ जगत का विकास वैज्ञानिक खोज है । वैसे ही चेतन जगत की खोज भी वैज्ञानिक जगत ही है या और भी कोई क्रम है इसका ?

प्रिय.........

पदार्थ जगत की खोज ने वैज्ञानिकों का मूल्यांकन अवश्य समृद्ध किया है और वह मान्य भी है । जैसे—विद्युत उर्जा को ही देखलो-संसार का सारा व्यवहार विद्युत उर्जा से चल रहा है । मिल, फैक्टरी, लिफ्ट, ए. सी., कूलर, पंखे, टी. वी., वी. सी. आर., फ्रिज, हीटर, प्लेन, ट्रेन, वस, कार, सारा व्यवहार देश विदेश का, वाणिज्य वैज्ञानिकों की देन है, किन्तु वाह्य पदार्थों के विकास से चैतन्य जगत का विकास कभी नहीं माना जाता है । क्योंकि चैतन्य द्वारा निर्मित शरीर को ही देखलो । वैज्ञानिक सिन्थेसिस द्वारा एमिनो एसिड या प्रोटीन वना सकता है किन्तु एक मक्खी का पंख वनाना हो तो संसार के समस्त वैज्ञानिक फेल हो जायेंगे । शरीर में खून की आवश्यकता है एक हजार वैज्ञानिक मिलकर एक बूंद खून वनाना चाहें तो वनाने में असमर्थ हैं । सजीव बीज है तो फल है विना बीज, बिना सजीवता एक भी पौधा वनाने की सफलता किसी में विद्यमान नंहीं है ।

हमारे शरीर का नियंता जो है उस शरीर में भी अरवों खरवों सेल हैं । अति सूक्ष्म ये सेल अनेक अवयवों की पुष्टि करने में लगे रहते हैं । शरीर का संतुलन कैसे रहे, कहाँ नियंत्रण की आवश्यकता है । क्या व्यवस्था करनी है, जहाँ दर्द है वहाँ मेडिशन पहुँचानी है । उसके अपने-अपने डिपार्ट हैं । जिस पदार्थ को जिस रसायन में वदलना है उसी डिपार्ट में ले जाने का कार्य ये सेलों का नियत होता है । खून की कहाँ आवश्यकता है । विटामिन किस में से कौनसा बनता है, उन विटामिनों की कहाँ आवश्यकता है किन निकम्मे पदार्थों का विसर्जन करना है आदि । लीवर, किडनी, आमाशय, आँतों का जैसा निर्देश है वे उसी क्षण पूर्ति करने को पहुँच जाते हैं । किन्तु ये सारा कार्य कराने वाला चैतन्य तत्व है ।

लाइट का वल्ब किसी फैक्टरी में बनता है, किन्तु अकेला वल्ब प्रकाश नहीं देता है । प्रकाश तो वह तभी देगा जब विद्युत चुम्बकीय तरंगों का उसमें अस्तित्व होगा । चेतना की अभिव्यक्ति शरीर के योग से होती है और योग के संयोग से शरीर और आत्मा का विकास परिलक्षित होता है । शरीर की सुरक्षा, शरीर की मरम्मत के लिए साधन का संशोधन हो सकता है किन्तु शरीर की रचना और शरीर को संचालित करने के यंत्र और तंत्रों का निर्माण कोई नहीं कर सकता ।

एक छोटा सा बाज पंछी ही ले लो, उसके छोटे से मस्तिष्क ने वैज्ञानिकों को बहुत बड़ी उपलब्धि करवा दी है । उसकी उड़ान में आने वाले अवरोधों को वह कोसों दूर उड़ान से ही पहचान लेता है । वैज्ञानिकों ने उसकी इस शक्ति का गहरा परीक्षण किया है । उसका छोटा-सा मस्तिष्क प्रबल राडार और कम्प्यूटर का बहुत जबर्दस्त कार्य करता है । प्लेन की उड़ान होने पर भी वह अपनी उड़ान में कहीं गलती नहीं कर बैठता ।

जीव विज्ञान का विकास भौतिक वैज्ञानिकों ने रसायनों के प्रयोग से सफल हुआ माना और उसके परिणामस्वरूप उन्होंने बायो-फिजिक्स (Bio-Physics) तथा बायो-केमिस्ट्री (Bio-Chemistry) का ज्ञान संसार को समझाया । फिर भी चेतनता के विलक्षण स्वरूप का मापदण्ड सम्यग्ज्ञानी के सिवाय और कौन निकाल सकता है । चेतन का कर्तृत्व विलक्षण है । भौतिक रसायनों का कर्तृत्व किसी एक हद तक सीमित है । चित्त, मन और शरीर किसी एक सीमा तक पहुँच सकता है पर सफल नहीं हो सकता ।

जब निर्मल मन और निर्मल चेतना सूक्ष्म शरीर के तेजस्वी रश्मियों से मिल जाते हैं तब सोया हुआ चैतन्य जागृत हो जाता है । भीतर के स्रोत स्रवित होने लगते हैं । स्रोतों के अनेक आयाम खुल जाते हैं । चेतन तत्व सारे तनावों से मुक्त हो जाता है । तनाव की अवस्था और तनाव मुक्त अवस्था का भोक्ता संसार, कर्म और क्रिया के वलय में आवृत होता है । आत्मा इस विराट संसार का भोक्ता है । संसार का परिभ्रमण कर्म है । कर्म के लिए प्रवृत्ति रूप क्रिया है । जो भी प्रवृत्ति होती है हर प्रवृत्ति कर्म बनती है, हर कर्म संसार का हेतु बनता है । अतः इस प्रकार कर्मों का नियंता आत्मा है । सम्पूर्ण कर्मों का क्षय होने पर ही आत्मा विशुद्ध होता है और परम तत्व को पाता है ।

प्रिय आत्म स्वरूप अनु !

पदार्थ की मूर्च्छा के पीछे व्यक्ति अपने आप को भूल बैठा है । यह भूल उसकी व्यापक होती जा रही है । यह भूल सारे समाज में व्याप्त है । सारे देश, राष्ट्र और संसार में फैली है । सारी बुराइयाँ और विकृतियाँ इस भूल के कारण पनप रही हैं । मानव जान बूझ कर इस भूल का लालन-पालन करता है । आशक्ति के आवरण में छिपी हुई भूल भीतर के पुण्य प्रकाश को अन्धकारमय बना देती है । पदार्थों के उपार्जन हेतु बनाये गये यंत्रों द्वारा जल, वायु, खान, पान और रहन-सहन पर परिस्थितीय असंतुलन फैला हुआ है । ३० राष्ट्रों के प्रस्ताव पर संयुंक्त राष्ट्र ने एक विश्व चार्टर को पारित किया है । प्रस्तावित चार्टर पर लिखा है कि मानवीय उर्जा प्राकृतिक व्यवस्था पर निर्भर है और सभी सभ्यताओं की जड़ें प्रकृति में ही हैं । अतः हमें प्रकृति को बचाना है ।

भौतिक पदार्थों के संवर्धन ने प्रकृति का सहयोग तो लिया किन्तु प्रकृति को विकृत करने की धृष्टता भी छोड़ी नहीं । जीवन-पद्धति विकास प्रयोग में इस हद तक लक्ष्यों को पहुँचाना है कि विकसित राष्ट्रों में अनावश्यक अनुसरण न करे । संसार में हमें रहना है, व्यावहारिक, सामाजिक, पारिवारिक और आध्यात्मिक जीवन जीना है । पदार्थों की आवश्यकता अवश्य है किन्तु चैतन्य और पदार्थ दोनों जुड़ जाते हैं । तब आसक्ति का नया संसार बस जाता है । लोंगफेलो के अनुसार वैभवपूर्ण विश्व हमारे चारों ओर है किन्तु इससे भी अधिक वैभवपूर्ण विश्व हमारे स्वयं के भीतर है । पदार्थ सीमित है और भोगने वाले अधिक हैं । अतः संघर्ष, विषमता और विवाद हर राष्ट्र में छाया हुआ है ।

आइंस्टीन को अनेक सिद्धान्तों की जानकारी चिन्तन से नहीं "इन्ट्यूशन" (प्रज्ञा) से हुई थी । आज जो भी वैज्ञानिक प्रयोग उपलब्ध है इसका माध्यम इन्ट्यूशन का प्रभाव है । कोई भी वैज्ञानिक इन्ट्यूशन के अनुभव से नयी रोशनी फैला सकता है । संसार को नयी क्रान्ति की उपलब्धि करवा सकता है किन्तु आंतरिक अनुभूति के अभाव में चैतन्य की शक्ति का मापदण्ड नहीं निकाल सकता । बौद्धिक विकास से पदार्थों का विकास हो जाता है । चेतना में ही असीम शक्ति है, आवश्यकता है भीतर से उस शक्ति के स्त्रोंत को

जगाना । चेतना तो स्वयं विकसित है । अविकसित तत्व को अधिक विकसाओ । विकास अपने आप स्पष्ट हो जायेगा । जैसे पत्थर में से अगर कुशल शिल्पी है तो निकम्मा पत्थर निकाल देगा तव एक अच्छी प्रतिमा अपने आप आकार ग्रहण कर लेगी । पत्थर में छिपी प्रतिमा की तरह शरीर में छिपे चैतन्य के दर्शन के लिए आप शिल्पी बन जायें आपके इस जीवन का कार्य सिद्ध हो जायेगा ।

साधना का सम्पूर्ण मार्ग अनुभव का मार्ग है । परोक्ष अनुभव से मानव अनेक दिशाओं का स्वामी अनेक वार हुआ है । किन्तु अभी तक प्रत्यक्ष अनुभव का स्वामी वनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है । चेतना की समाधि भीतर का स्वामी है । प्रत्यक्ष प्रमाण है । वहाँ तर्क, विचार या परामर्श नहीं है । किसी प्रकार का वाद-विवाद नहीं है । उस बीच में कोई माध्यम नहीं है । किसी भी प्रकार का व्यवधान नहीं है । समाधि की स्थिति होने पर परोक्ष समाप्त हो जाता है और अपना अनुभव प्रत्यक्ष हो जाता है । जहाँ समाधि है वहाँ संघर्ष नहीं रह पाता । पदार्थों का आकर्षण नहीं रह पाता वह तो स्वयं में ही स्वयं का आनन्द प्राप्त करता है ऐसा ही आनन्द का अनुभव करे ।

चिन्तन

१. भौतिक शरीर के भीतर एक चैतन्य शक्ति विद्यमान है जिसके माध्यम से भौतिक शरीर जिन्दा है ।
२. प्रिय और अप्रियता में आवृत्त चैतन्य विषमता को भोगता है और जन्म-मृत्यु की परिक्रमा में रहता है ।
३. शरीर जनम-जनम से चैतन्य का साथी होने से स्वभाव के ऊपर विभाव की विजय होती है ।
४. विद्युत चुम्बकीय तरंगें और रसायनों के माध्यम से शारीरिक प्रतिक्रियाएँ परिवर्तित होती हैं ।
५. जिस स्वरूप का पुनः पुनः अनुचिन्तन होता है उसी स्वरूप में चित्त भावित हो जाता है ।

जहाँ अतीत की स्मृति और भावि की कल्पना है, वहाँ चेतना में विषमता है और जहाँ स्मृति और कल्पना नहीं, वहाँ चेतना में क्षमता है ।

२

पर्यावरण का प्रदूषण—समस्या और समाधान

- विकलांग अवस्था की वेदना
  मूर्च्छित चेतना का विकासक्रम
  अव्यक्त का व्यक्त प्रमाण
  सुख-दुःख की संवेदना
  यांत्रिक-प्रयोग
- विकास और विनाश
  रासायनिक का विकृत प्रभाव
  पोषण या शोषण
  सुरक्षा की माँग
  जहरीली गैस और तापक्रम में वृद्धि
- स्थूल या सूक्ष्म का विविध रूप
  प्राकृतिक संतुलन का अभाव
  रोग को आमंत्रण दूषित जलवायु
  भौतिक खोज और उपलब्धि
  भौगोलिक अनुशासन
- स्नायु घर्षण से प्राप्त अग्नि
  जीव विद्युत कोष
  रासायनिक परिवर्तन
  पंचभूत तत्वों का उपयोग
  भौतिक सुख की उपज

⌘
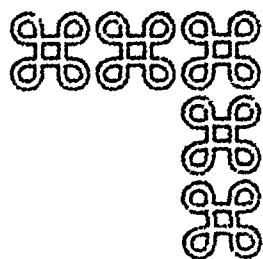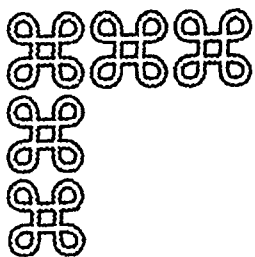
४. "अप्पेगे अंधमब्भे, अप्पेगे अंधमच्छे,
अप्पेगे पायमब्भे, अप्पेगे पायमच्छे,
अप्पेगे संपमारए, अप्पेगे उद्दवए ।"

अर्थ—पृथ्वी, पानी आदि के जीव जन्मना इन्द्रिय विकल होने से अव्यक्त चेतना वाले होते हैं । शस्त्रों का प्रहार करने से विकलांग मानव को जो वेदना होती है वैसी ही कष्टानुभूति इन सूक्ष्म जीवों को भी होती है ।
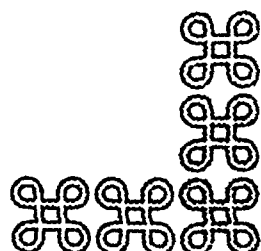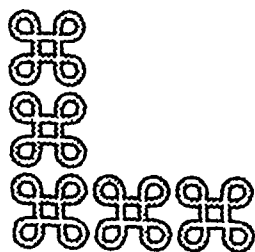
मूर्च्छित - चेतना

५. कीट, पतंग, पशु, पक्षी, मानव आदि में चेतना का अस्तित्व विद्यमान है पर क्या मिट्टी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति में भी चेतना का अस्तित्व है ?

प्रिय..........

कीट पतंग पशु आदि स्थूलकाय होने से उसकी प्रवृत्ति द्वारा चेतना शक्ति विद्यमान है ऐसा प्रत्यक्ष प्रमाण होता है और मिट्टी, जल आदि सूक्ष्मकाय होने से उसकी प्रवृत्ति द्वारा चेतना शक्ति विद्यमान नहीं है ऐसा प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं हो सकता । क्योंकि मिट्टी, जल आदि के जीवों में चेतना अव्यक्त होती है, हलन-चलन आदि स्थानांतर की प्रवृत्ति भी अस्पष्ट होती है अतः आपकी समस्या स्वाभाविक है किन्तु न चलना, न बोलना, न देखना, न सुनना इतने मात्र से जीव नहीं है और उसे वेदना नहीं होती है ऐसा नहीं मान सकते । जैसे कोई मानव अंध, वधिर, मूक या पंगु है और उसे शस्त्र से पत्याघात (प्रहार) किया जाता है तो क्या उसे वेदना नहीं होती ? वाणी से अव्यक्त है फिर भी पीड़ा नहीं होती ? वैसे ही मिट्टी जल आदि के जीव इन्द्रिय विकल अवस्था में वेदना की अनुभूति करते हैं ।

मूर्च्छित मानव की चेतना बाहर में लुप्त होती है, किन्तु उसकी अन्तर चेतना-अनुभूति लुप्त नहीं होती, वैसे ही पृथ्वी, पानी आदि की चेतना मूर्च्छित होती है फिर भी भीतर की अनुभूति शून्य नहीं होती ।

प्रो. सी. एन. वकील की किताब "एकोनॉमिक्स ऑफ काऊ प्रोटेक्शन" में उन्होंने लिखा है कि मानव, पशु, पंछी आदि की तरह मिट्टी भी सजीव है, मिट्टी का मानव और पशु की तरह पारस्परिक सम्बन्ध भी होता है । एक जाति की मिट्टी दूसरी जाति की मिट्टी को मिलने का प्रयास भी करती है । सूक्ष्म ऑर्गनिज्म मिट्टी में अपना सक्रिय स्थान रखते हैं । जैन दर्शन के अनुसार इन्हें स्थावर जीव कहते हैं । वे जीव कैसे आहार ग्रहण करते हैं, कैसे श्वासोच्छवास ग्रहण करते हैं, उनका शरीर, इन्द्रिय, योग, उपयोग,

ज्ञान, अज्ञान, प्राण और अच्छे बुरे अध्यवसाय पर बड़ी गम्भीर पैनी दृष्टि से विचार किया गया है ।

मिट्टी, पानी, वायु, अग्नि आदि से वनस्पति स्थूल है अतः वनस्पति में जीव है ऐसा स्पष्ट कहने में किसी को संकोच नहीं होता । वैज्ञानिकों, साइकोलोजिस्टों और अध्यात्म शास्त्रियों सभी ने वनस्पति की चेतना को स्वीकार किया है ।

पोलीग्रॉफ का आविष्कार करने के पश्चात् वनस्पति की संवेदनात्मक— सुख-दुःख का निर्णय जगदीश चन्द्र वसु तथा वैज्ञानिक वेकस्टन ने किया । तब वैज्ञानिकों ने यह महत्वपूर्ण खोज की है ऐसा सोचकर सम्पूर्ण जगत में प्रसिद्ध किया कि वनस्पति में भी जीव है । सुख-दुःख आदि की संवेदना है, आहारवृत्ति, भयवृत्ति, वासनात्मक वृत्ति और संग्रहीत वृत्तियाँ भी हैं । जैसे— वनस्पतियों में अनेक वनस्पतियाँ ऐसी हैं जो हिंसात्मक हैं, उनका आहार जीवों को मारकर उनको चूसना है । अनेक वनस्पतियाँ तो केवल खून चूसने का ही काम करती हैं ।

क्यारेवाचे ने ऐसी वनस्पति की खोज की है कि वे मिट्टी, हवा या पानी में से हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन आदि तत्वों को ग्रहण करती है । अनेक वनस्पतियाँ अपनी चेतना से खनिज पदार्थों को अपने लिए खाने योग्य बना लेती हैं । लाजवंती नाम की वनस्पति में भयवृत्ति विशेष दृश्यमान होती है ।

अनेक वनस्पतियों का सम्बन्ध स्त्री-पुरुष के रूप में, संभोग के रूप में वासनात्मक पाया जाता है । अनेक वनस्पतियाँ अपने मूल से धन आदि को आच्छादन करने का काम करती हैं ।

अनेक वनस्पतियों पर ऐसे प्रयोग हुए हैं जैसे एक पत्ता भारत में जलाया गया है और दूसरा पत्ता उसी वृक्ष का अमेरिका में हो तो वह पत्ता अपने आप जल जाता है । सड़ा हुआ एक पत्ता अनेक पत्तों को सड़ा देता है इत्यादि ।

प्रिय आत्म स्वरूप अनु !

मानव से भी कई गुना अधिक वनस्पति के जीव संवेदनशील होते हैं और इसलिए वे शत्रु और मित्र की पहचान करने में स्मृति और दूसरों के भावों

को जानने में जितने सक्षम हैं उतनी सक्षमता मानव जैसे विकासशील प्राणी में भी कई वार उपलब्ध नहीं होती है ।

वगीचे में खिले हुए पुष्पों का आनन्द तो आपने लिया है न । घूमने वालों की एक नजर उन तक पहुँच ही जाती है । माली रोज उसे प्यार करता था । संशोधन हेतु वैज्ञानिकों ने यंत्र द्वारा एक प्रयोग किया । प्रयोग में पुष्पों की खुशियों को देखा, माली का प्यार भरा व्यवहार देखा, प्यार भरी नजरों के अवसर पर वे झूमते हैं और तोड़ने की भावना वालों की नजरों के अवसर पर वे काँपते हैं ऐसा कम्पन और आनन्द देखा । रोज प्यार करने वाला माली जब पुष्पों को तोड़ने आता है तव अन्य कलियाँ दर्द भरी आहें उगलती हैं । उनकी आहें देखीं !

प्रकृति ने मानव को अनूठी प्रतिभा, क्षमता, सृजनशीलता, तर्कशक्ति प्रदान कर चिन्तनशील, प्रज्ञाशील और विवेकशील वनाने में अपना योगदान दिया है अतः मानव का दायित्व है कि वह मिट्टी, पानी, वनस्पति, वायु, अग्नि आदि प्राकृतिक संसाधनों में रही हुयी चेतना को, वेदना को और उनकी भावना को समझे और उनकी सुरक्षा करे । कीट, पतंग और मानवीय चेतना की तरह इन प्राणियों की वेदना स्वीकार करें ।

आज हमारे सन्मुख पर्यावरण की समस्या एक वहुत बड़ी समस्या है । भौतिकवाद और औद्योगीकरण का परिणामं इस समस्या को अधिक उलझन में घेर रहा है । किन्तु प्राण की सुरक्षा जितनी किसी व्यक्ति के लिए अहमियत रखती है, उतनी ही महत्ता इन विकलांग प्राणियों के प्रति भी होना आवश्यक है । यदि इनमें चेतना है, ऐसा बोध हो जाय तो उसकी सुरक्षा का सूर्योदय अवश्य हो सकता है । इन प्राणियों ने हमें निरन्तर वगैर किसी भेदभाव के निःस्वार्थ भाव से देने में विश्वास किया है । और मानव ने हर प्रकार से प्रकृति का शोषण किया है । दोहन और पोषण यह हमारी संस्कृति का आधार स्तम्भ ही हमने समाप्त कर दिया ।

अच्छा वड़े प्यार से स्वीकार करो कि इन नाचीज-सी जान पड़ने वाले मिट्टी, पानी आदि में भी चेतना, वेदना, प्यार और खुशी हमारी तरह व्याप्त है । हम हमारी तरह इनकी भी सुरक्षा करेंगे । सभी तत्व एक दूसरों से जुड़े हुए हैं, सभी के ऊपर एक दूसरों का प्रभाव है । विज्ञान अभी तक इन पृथ्वी, पानी के सूक्ष्म जीवों की चेतना तक नहीं पहुँच पाया किन्तु योगी, महर्षि

और ज्ञानी ने अपने ज्ञान में इन जीवों की वेदना, जानी है और मानी भी है । उनके सुख-दु:ख और आनन्द की अनुभूति का अनुभव किया है वैसा अनुभव हम भी कर सकते हैं यदि अटल विश्वास है तो । यदि हम चैतन्य के प्रति जागरूक एवं आस्थाशील हैं तो ।

आस्था का सर्व प्रथम कार्य है अनुभव के द्वार को खोल देना । अनुभव की हरेक दिशाएँ और विदिशाओं का उद्घाटन कर देना । तत्वों के द्वारा चिकित्सा हो सकती है । हम अनेक रोगों को इन जीवों की चेतना के माध्यम से मिटा सकते हैं । आज का विज्ञान जिसे सिद्ध नहीं कर पाया उसे हजारों वर्ष पहले ज्ञानी महापुरुषों ने अपने ज्ञान से देख कर सिद्ध किया है ।

चिन्तन

१. जहाँ चैतन्य है, वहाँ ज्ञान है, जहाँ ज्ञान है वहाँ आनन्द है । तीनों द्वारा मूर्च्छा की दुर्भेद्य चट्टानें तोड़ी जाती हैं ।
२. पृथ्वी, पानी आदि के सूक्ष्म जीवों में जो संवेदना होती है उस सच्चाई का किसी एक हद तक अनुभव करें ।
३. जीवन व्यवहार को सुख, शान्ति और आनन्दमय बनाने का सहज उपाय है शुभ संकल्पों से चेतना को जगाना ।
४. चलाचल जगत के प्रत्येक प्राणी में पूर्णता की शक्ति विद्यमान है, भीतर से चेतना को उठाओ ।
५. पृथ्वी पानी वनस्पति आदि के जीवों में प्रगाढ़ मूर्च्छा होती है अत: उसी योनी में वे बार-बार जन्म और मृत्यु लेते हैं ।
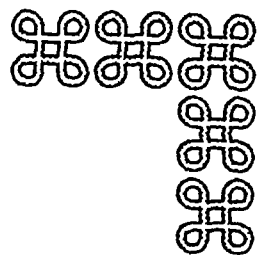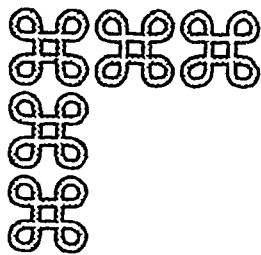
५. "इमं पि जातिधम्मयं, एयं पि जातिधम्मयं;
इमं पि वुड्ढिधम्मयं, एयं पि वुड्ढिधम्मयं;
इमं पि चित्तमंतयं, एयं पि चित्तमंतयं;
इमं पि छिण्णं मिलाति, एयं पि छिण्णं मिलाति;
इमं पि आहारगं, एयं पि आहारगं;
इमं पि अणितियं, एयं पि अणितियं;
इमं पि असासयं, एयं पि असासयं;
इमं पि चयावचइयं, एयं पि चयावचइयं;
इमं पि विपरिणामधम्मयं, एयं पि विपरिणामधम्मयं ।"

अर्थ—आचारांग के इस सूत्र में मानव और वनस्पति की तुलना करके बताया गया है कि मानव की तरह वनस्पति में भी जन्म, संवर्धन, चेतना, छिन्न होने पर मुर्झाना, आहार करना, अनित्यता, अशाश्वतता, उपचित, अपचित आदि विविध अवस्था को प्राप्त होती है ।
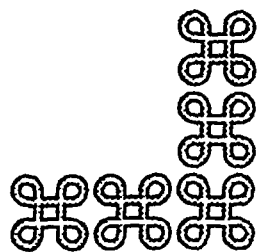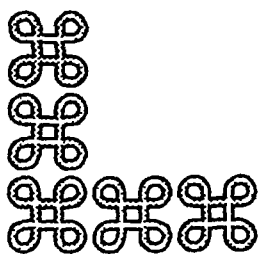
असंतुलित - पर्यावरण

६. वर्तमान में हमारे सन्मुख वायु, जल, उर्जा, धुआँ आदि का प्रदूषण विद्यमान है जिस पर अत्यधिक गम्भीरतापूर्वक चिन्तन करना आवश्यक है । क्या पर्यावरण के विषय में आपकी कोई राय है ?

प्रिय..........

पृथ्वी, जल, वायु, वनस्पति आदि में चेतना का अस्तित्व है या नहीं इस ओर संसार का ख्याल हो या ना हो किन्तु जल, स्थल, वायु उर्जा की सुरक्षा होनी चाहिए इस ओर तो विश्व का ख्याल अवश्य होना चाहिए और अब यह ख्याल जोर भी पकड़ने लगा है ।

पर्यावरण को असंतुलित करने वाले विभिन्न घटक जैसे—जल, स्थल, नभ, वायु, धुआँ की ओर हमें ध्यान देना अनिवार्य हो उठा है । सामाजिक, राष्ट्रीय और सांस्कृतिक मूल्यों में द्रुतगति से होने वाले परिवर्तन में विकास से भी अधिक विनाश प्रदूषण के माध्यम से हो रहा है । बदलते हुए परिप्रेक्ष्य में औद्योगिक विकास और उसके माध्यम से फैल रहा प्रदूषण और विगड़ता हुआ पर्यावरण सांस्कृतिक, सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में भी गम्भीर, व्यापक और विचारणीय समस्या खड़ी कर रहा है जिसका प्रभाव कालांतर में प्रत्येक जीवन पर तो पड़ेगा ही साथ ही साथ घर, वन, जंगल, खेत और स्वास्थ्य पर भी पड़ा है ।

संसार का विकास हमारे लिए वहुत बड़ी उपलब्धि है किन्तु दूषित जल, वायु, धुआँ आदि तो हमें समय से पूर्व ही नष्ट कर डालेंगे । हमें वनस्पति से प्राणवायु मिलता है । पर जंगल और वन ही काटे जा रहे हैं । हमें पहाड़ों की चट्टानों से स्रवित जल नदियों के माध्यम से मिलता है वड़े-वड़े तालाब के लिहाज से मिल रहा है पर फैक्ट्रियों के केमिकल का विष जल को दूषित कर देता है । हमें उपजाऊ जमीन से टॉनिक वाला खाद्य पदार्थ अन्नतत्व मिलता है किन्तु फर्टिलाइजर्स द्वारा विषैले तत्वों से भूमि को ही विकृत कर दिया गया है । पशु धन उजड़ रहा है, लकड़ियों का ह्रास हो

रहा है, खनिज उत्पादन से फसल और वन चौपट होते जा रहे हैं । गाँव के गाँव वीरान हो रहे हैं, झीलें सूख रही हैं, विकास के नाम पर झोले में असीम और असाध्य रोग भरे जा रहे हैं । यांत्रिक रसायनों से नाजी गैस चेम्बर का असर सब को भुगतना पड़ता है । इस प्रकार औद्योगिक धातुएँ, खनिज की धूल और रसायन द्वारा विकृत गैस आदि परमाणु ऊर्जा के भयंकर खतरे हमारे सामने हैं ।

पर्यावरण इन जैविक और अजैविक घटकों का समूह है । इन से पैदा होने वाली ऊर्जा प्रवाह को संतुलित रखना अत्यन्त आवश्यक है । प्रवाह की असंतुलन प्रक्रिया को प्रदूषण कहते हैं । अब यह प्रदूषण बढ़ता ही जा रहा है क्योंकि भौतिकवादी मानव निर्दयता से वृक्षों को समाप्त कर रहा है, जल को बाँध रहा है । जलवायु के प्रदूषण से वर्षा का अभाव और सूखे का निरन्तर प्रभाव होने से स्वाभाविक संतुलन में अड़चनें आ रही हैं । हमारी संस्कृति का मूल आयाम है कि हम जल-स्थल, वन, पेड़-पौधे आदि का पोषण करें किन्तु शोषण या विध्वंस न करें ।

आज वर्तमान स्थिति में वनखण्डों का शोषण प्रमाण से अधिक हो रहा है । फलस्वरूप मानव और वनस्पति जगत में असंतुलन प्रगाढ़ मात्रा में हो रहा है । मानव भौतिक विकास की अन्धी दौड़ और चकाचौंध के दृष्टिकोण में स्वार्थी होता जा रहा है । आवश्यकता से अधिक साधनों का शोषण करने से लाभ के स्थान पर हानि ही होगी ।

वनस्पति की सुरक्षा भूमि की सुरक्षा है । भूमि की सुरक्षा जल प्रदूषण की सुरक्षा है । अतः प्रदूषण से बचने के लिए प्रदर्शन के माध्यम से, चलचित्रों के माध्यम से संरक्षण की आवश्यकता और अभिवृद्धि का प्रचार करना आवश्यक है ।

अन्न, सब्जी और फल का अपव्यय होता है उपयोग नहीं यदि उपयोग किया जाय तो आय अधिक होगी और वृक्ष पौधे आदि सुरक्षित बचेंगे । भोग और विलास के साधन हेतु निरर्थक यंत्रों का निर्माण किया जाता है । उसके लिए जमीन की आवश्यकता है उपजाऊ अच्छी जमीन का अपव्यय होता है और खेती के स्थान पर भौतिक साधनों के निर्माण हेतु फेक्ट्रियाँ लगाई जाती हैं ।

पृथ्वी, पानी, वनस्पति, वायु आदि में जीव है ऐसी महावीर की वाणी

वैज्ञानिकों के प्रयोगों से अब शीघ्र ही संसार के सामने आयेगी । जीव अहिंसा का सही दोहन, सही सुरक्षा और सही विकास हेतु शिक्षा का माध्यम अवश्य अपनाना चाहिए । क्योंकि हमारा प्रकृति की गोद में लालन-पालन हुआ है । उसी में हमारा विकास हुआ है ।

प्रिय आत्म स्वरूप अनु !

युगों-युगों से भारतीय सर्व धर्म सांप्रदायिक परम्परा को पृथ्वी, जल, वायु, वनस्पति आदि प्राकृतिक सौन्दर्यता की सुरक्षा का गर्व रहा है । सभी सर्व धर्मों की उक्तियों में जल, अग्नि, पेड़, पौधे और भूमि आदि की पूजा और सुरक्षा का उल्लेख कहीं न कहीं किसी भी रूप में प्राप्त होता है । फिर भी उसी धरातल पर पैदा हुआ मानव चिन्तनशील और शक्तिशाली होने पर भी इन तत्वों के प्रति उपेक्षित क्यों ! आज सारा ही नियंत्रण अनियंत्रित हो रहा है । हर स्थान का संतुलन विगड़ रहा है इसका कारण यही है । आप को १९८४ की रात की घटना याद है । भोपाल के यूनियन कारवाइड संयंत्र में मिथाइल आइसोसाइनाइट गैस के रिसाव के द्वारा हजारों जान खतम हुई थीं और हजारों जान खतरे में थीं और कितने वर्षो तक वन, जन, वायु और अंतरिक्ष से सम्बन्धित परिस्थितियों का नियंत्रण करना पड़ा था ।

अन्वेषकों की दृष्टि में इस शताब्दी के प्रारम्भ से अब तक वायुमण्डल में कार्वन डाई-ऑक्साइड की मात्रा में १० से १५ प्रतिशत की वृद्धि हुई है । कार्वनयुक्त ईंधन के अपूर्ण दहन से एक रंगहीन गंधहीन लेकिन जहरीली गैस कार्बन-मोनोक्साइड निर्मित होती है इसका प्राधान्य कार, ट्रक आदि का पेट्रोल ईंधन है । इस प्रकार जहरीली गैस में कार्वन डाई-ऑक्साइड की बढ़ती मात्रा से तापक्रम में वृद्धि होती है और सूर्य का ओजन खतम होता है ।

अच्छा पृथ्वी, जल, वायु आदि की हिंसा की ओर हमारा ध्यान केन्द्रित होवे या न होवे किन्तु पर्यावरणीय प्रदूषण हेतु इन जलवायु वनस्पति की सुरक्षा हम आज से ही प्रारम्भ करें जिससे आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक असमानता से परस्पर संघर्ष, शोषण, अत्याचार और अपराधों से सांस्कृतिक असंतुलन हो रहा है उससे हम सावधान रहें । राष्ट्र, समाज, वातावरण, स्वास्थ्य, उर्जा आदि जीवन सम्पदा हेतु, जल, वायु, भूमि, वनस्पति आदि का समग्ररूप से समन्वय हेतु तथा चैतसिक सुरक्षा हेतु गम्भीर चिन्तन करने की महती आवश्यकता है । जल स्थल वायु की चेतना के साथ सह-अस्तित्व की भावना का विकास आत्मावलोकन और आत्मनिरीक्षण के मूल्यों के सन्दर्भ में प्रदूषण

पर भी रोक लगेगी, असंतुलन प्रकृति संतुलन का रूप धारण करके भौतिकता को अध्यात्म बनाने में सफल रहेगी । इस प्रकार मानव और वनस्पति की समानता, संवेदना और प्रियता अप्रियता का रूपान्तरण आज वैज्ञानिक जगत सफलता प्राप्त कर पाया है वैसी ही सफलता मिट्टी, जल आदि जीवों की संवेदना है ऐसा हमें स्वीकार करना है ।

इन तत्वों में विद्युत तरंगों का स्पर्श होता है, विजातीय तत्वों के माध्यम से परस्पर विरोधाभास भी प्रतीत होता है । अतः वर्षा होने पर मिट्टी की गंध, हवा की शीतलता, वनस्पति का संवर्धन, अग्नि का शमन इत्यादि सजीवता के प्रमाण माने जा सकते हैं ।

चिन्तन

१. पर्यावरण का प्रभाव अर्थव्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था और पारिवारिक मूल्यों पर विशेष पड़ता है जिससे शरीरतंत्र, मानस तंत्र और बौद्धिक तंत्र में असंतुलन हो जाता है ।

२. वृक्षों की निर्दयतापूर्ण कटाई के फलस्वरूप जलाभाव की समस्या पैदा हुई है, भूमि की ऊर्जा का क्षरण हुआ है ।

३. जल वायु का प्रदूषण मानव के व्यक्तिगत और सार्वजनिक स्वास्थ्य पर निश्चित रूप से प्रभाव स्थापित करता है ।

४. भौतिक, जलीय, वायु, वनस्पति आदि जीवों में परस्पर रिस्तों का संतुलन और सुरक्षा हमारा विवेक ज्ञान है ।

५. प्राकृतिक असंतुलन के फलस्वरूप पर्यावरण में प्रदूषण कालान्तर में प्राणी मात्र को काल के मुँह में धकेल देगा ।

⌘
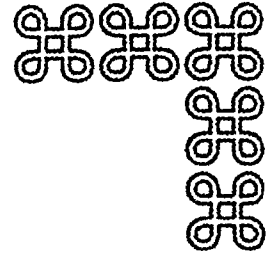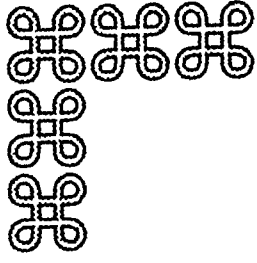
६. "जलिणं विरुवरुवेहिं सत्येहिं पुढवी, उदय, वणस्सइ, वाउ कम्म-समारं भेणं पुढवी वाउ-सत्यं समारं भेमाणे अण्णे, अणेगरुवे पाणे विहिंसति ।"

अर्थ—मानव अनेक शस्त्रों और उपकरणों द्वारा जल, स्थल, वायु और वनस्पति सम्बन्धी प्रक्रियाओं में व्यावृत होकर अनेक प्राणियों के प्राण की हिंसा करता है ।
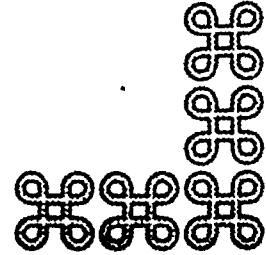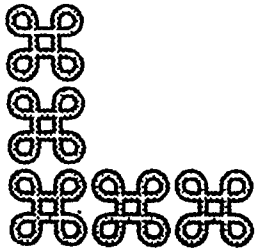
दुरुपयोग का दुष्परिणाम

७. क्या वायु, जल, भूमि, वनस्पति आदि के दुरुपयोग से होने वाले दुष्परिणामों को ध्यान में रखते हुए अविलम्ब इसकी सुरक्षा करना मानव के लिए हितकर रहेगा ?

प्रिय..........

प्रत्येक प्राणी चाहे वह सूक्ष्म हो या स्थूल, संसार में होने वाले सर्जन एवं संहार का विविध रूप है । उस रूप के अनुरूप ही अपना जीवन-चक्र उसे चलाना पड़ता है । वास्तव में जीवन का अनुशासन, संतुलन है और उस अनुशासन और संतुलन का असंतुलन होने से जीवन-चक्र प्रकृति से विकृत हो जाता है ।

जीवन असंतुलन होने का विशेष तात्पर्य वातावरण के भौतिक, रासायनिक, औद्योगिक, ऑटोमोबाइल्स का बढ़ता प्रयोग है । जीवन में एक प्रकार से संतुलन विद्यमान है किन्तु उसकी एक सीमा होती है । जीवन निर्माण का श्रेय वातावरण के साथ-साथ आनुवांशिक, जैविक शिक्षा-दीक्षा और समीक्षा के विभिन्न चक्रों से सम्बन्धित है । इन चक्रों के उत्थान के लिए मानव का सम्बन्ध जैसा पशु पक्षी के साथ है, वैसा ही भूमि, जल, वायु और वनस्पति के साथ भी है । इन्हीं तत्वों के माध्यम से कार्बन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा सल्फर आदि प्रकृति में संतुलन बनाये रखने में सहायक सिद्ध होते हैं । किन्तु जंगलों की अंधाधुन्ध कटाई, उद्योगों से निरन्तर निकलने वाली गैस, फैक्ट्रियों का धुआँ, कार, बस, प्लेन, ट्रेन, स्कूटर आदि से विसर्जित गैसों; जैसे—मीथेल, सल्फर डाई-ऑक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड से वायुमण्डल प्रदूषित हो रहा है और ओजोन की मात्रा अल्प होती जा रही है । पृथ्वी के जीव जगत की रक्षा कवच के रूप में फैला हुआ ओजोन नभ मण्डल में चलने वाले सुपर जैट वायुयान द्वारा ही नहीं किन्तु अन्तरिक्ष में विस्फोट होने वाले बमों आदि से फैलती गैस से प्रभावित हो रहा है । गैस के प्रभाव से विकृत ओजोन ऑक्सीजन में रूपान्तरित हो जाता है । अतः ओजोन के लिए सावधान होकर पुनः इन्हें तत्काल रोकने का सफल प्रयास करना होगा ।

पशु, पक्षी, मानव आदि प्राणधारियों के अस्तित्व को बनाये रखने हेतु वायु की तरह जल की सुरक्षा भी परम आवश्यक है । अग्नि द्वारा या सूर्य ताप द्वारा भाप बनकर पुनः वर्षा के रूप में स्वच्छ निर्मल बहता हुआ जल अनेक प्राणधारियों के प्राण की सुरक्षा करता है । समुंदर में अथाह जल-राशि है । सारे संसार को तबाह करने की शक्ति है । यदि सागर ने अपना मान और अपनी मर्यादा छोड़ दी तो सारा संसार मिनटों में समुन्दर बन सकता है । इतनी जल राशि होने पर भी आज पेय योग्य जल के लिए करोड़ों रुपयों का खर्च करने पर भी संकट का सामना करना पड़ता है । आज शुद्ध जल की प्राप्ति दुर्लभ होती जा रही है । स्थान-स्थान पर पेयजल के लिए जल की सुरक्षा मानव अस्तित्व की सुरक्षा है । बोर्ड लगाये जाते हैं । शुद्ध और पर्याप्त जल की सुरक्षा हेतु राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर पर्याप्त प्रयास जारी है फिर भी पानी का अभाव अत्यधिक मात्रा में होता जा रहा है ।

जल को दूषित करना यानि अनेक प्रकार के रोगों को आमंत्रण देना है । भौतिक साधन-प्रसाधन को उपार्जित करने हेतु औद्योगिक अवशिष्ट पानी में प्रसारित किया जाता है । रासायनिक खाद्य पदार्थ, कीटनाशक पदार्थ, गन्दे नाले का पानी इत्यादि पानी में मिल जाने से नगरों के बाथरूम, लैटरिन की गन्दगी पेयजल स्रोतों में मिला देने से पानी में जंतुओं का और रोग फैलने की सम्भावना बढ़ जाती है । बहती नदियों में मृतक शरीर को बहाने से, अनेक प्रकार के दूषित केमिकल जल भूमि पर छोड़ने से, वनस्पति और वायु दूषित हो जाते हैं । इस प्रकार जल में मिश्रित केमिकल आदि पदार्थों द्वारा पशु, पक्षी, मानव, जीव-जन्तु आदि के अस्तित्व के संतुलन पर विपरीत असर पड़ता है ।

आज भौतिक पदार्थों के प्रभाव की जितनी खोजें उपलब्ध हैं, उन खोजों के पीछे लाखों जानमाल का बलिदान है । पदार्थों की उपज हेतु कारखानों से औद्योगिक अवशिष्टों में उपस्थित पारा, सीसा, एसीटलडाई तथा बिना इलक्लोराइड जैसे अवशिष्ट पदार्थों के विसर्जन से देहधारी प्राणियों के शरीर में विष फैल जाता है और असमय में ही आदमी काल-कवलित हो जाते हैं ।

वायु और जल के प्रदूषण से भूमि भी दूषित हो जाती है क्योंकि भूगर्भ

में जल, वायु, अग्नि या वनस्पति का समावेश होता है। जलवायु विषैला है तो भूमि को दूषित होने की नौवत आयेगी ही । भूमि के भौतिक, रासायनिक या जैविक गुणों में थोड़ा भी दूषित परिवर्तन होगा तो पशु, पक्षी, जलचर, जीवजन्तु, वनस्पति और मानवीय क्षेत्र में अस्त-व्यस्तता छा जायेगी । जब प्राकृतिक सौन्दर्य या प्राकृतिक उपयोगिता का ह्रास हो जाय ऐसी नौबत आये तब हम भूमि को दूषित माने इतने मात्र से कुछ नहीं हो जाता किन्तु भूमि को असंतुलित करने वाले विभिन्न परिस्थितियों की ओर हमारा लक्ष्य पहुँचाना आवश्यक है । प्राचीन काल में भूमि हमारे लिए पूजनीय रही किन्तु आज निजी स्वार्थ के लिए भूमि का दुरुपयोग हो रहा है ।

टैगोर के शब्दों में—भूमि के प्रति विवेकपूर्ण व्यवहार अपने मूलभूत लक्ष्यों को स्थापित रखने में सह सम्बद्धता बनाए रखता है । अतः मानव को प्राकृतिक जीवन संवर्धन हेतु अपनी चेतना का विकास आस-पास की भूमि से प्राप्त होता है ।

स्वामी विवेकानन्दजी भी मानो सामाजिक या आत्मीयकरण का सन्दर्भ भूमि से जोड़ते हैं । शरीर, श्वास, प्राण, वाणी और मन की विशुद्ध चेतना का निर्माण भौगोलिक अनुशासन से अपेक्षित हैं । अतः भूमि को प्रदूषण से बचाना अनिवार्य है । इसी में मानव का कल्याण है ।

इस प्रकार आज वन की कटाई, जल की गन्दगी, औद्योगिक धुएँ से वायु की खराबी इत्यादि हमारे लिए घातक है, किन्तु इन घातकता का प्रभाव सबसे ज्यादा भूमि के लिए है ।

प्रिय आत्म स्वरूप अनु !

प्राणी मात्र को खाने के लिए अन्न, पहनने के लिए वस्त्र और रहने के लिए मकान आवश्यक है । विपुल जनसंख्या के परिणामस्वरूप भूधारी मानव जंगल में, झोपड़ियों में, फुटपाथ पर जीवन बिताते हैं । उनको इस धरती पर उस समय जीने के साधनों का अभाव तो रहेगा ही । इस दृष्टि से भूमि, जल, वायु, वनस्पति आदि के सदुपयोग के विषय में आज हमें सोचने का अवसर आ गया है । अतः पर्यावरणीय शुद्धता पर और प्राकृतिक सुरक्षा पर विशेष ध्यान देने के उपाय सोचना आज आवश्यक हो गया है ।

हमें सामाजिक, राजकीय, धार्मिक, भौतिक, आध्यात्मिक, नैतिक, आत्मिक

गतिविधि की शक्ति की वृद्धि में विकास पाना है तो अपेक्षाकृत पर्यावरण के निर्माण के लिए प्रकृति को न्याय देना नितांत आवश्यक है । यह अनुभव का पक्ष है । तर्क का नहीं । मानव ने इसकी सुरक्षा को भोग, विलास और वासना के उपभोग हेतु भुला दिया किन्तु इसका परिणाम विपरीत हो गया । आज पुनः मानव को इस विषय का चिन्तन करना चाहिए कि प्रकृति को विकृति के शिकंजे से निकालकर अनुभव के व्यापक क्षेत्र में कैसे स्थापित करें ! बाह्य पर्यावरण को विशुद्ध करने के लिए उसे हम भीतर के अनुभव के साथ जोड़ने का प्रयत्न करें, जिससे पर्यावरण पर अपनें आप नियमन हो जाय ।

आज के वैज्ञानिकों ने जिस रहस्यों को अनावृत किया है । जिस रहस्यों का उद्‌घाटन किया है वह वास्तव में प्रशंसनीय है किन्तु उन रहस्यों का परिणाम उन वैज्ञानिकों के लिए भी एक चुनौती है ।

यदि भूमि, जल, वायु, वनस्पति, पशु, पक्षी, मानव इत्यादि सारे जीव-जन्तु के लिए विकृति प्रकृति का रूप पुनः धारण करले तो संसार विज्ञान को नया आयाम दे सकता है ।

आज भौतिक विकास के इतने साधन उपलब्ध होने पर भी आदमी अशान्त ही अशान्त है । अत्यधिक तनावग्रस्त है । शुद्ध हवा लेने का भी उसे अवसर नहीं, दूषित वायु से उसकी श्वास घुट रही है, रोग से वह ग्रसित हो रहा है । न वह शुद्ध खाना खा सकता है, न शुद्ध जल पी सकता है, न शुद्ध वातावरण में रह सकता है । उसकी जिन्दगी यंत्रवत चलती रहती है । अतः प्रकृति के दुरुपयोग से होने वाले दुष्परिणामों को ध्यान में रखने से ही नैतिक जीवन जीने का अधिकार संभव हो सकता है । ऐसे अधिकार को पाने का प्रयास करो । पर्यावरण की सुरक्षा प्राणी मात्र के हरे-भरे जीवन की सुरक्षा है । प्रकृति की सुरक्षा से दुरुपयोग के आवरण का विलय हो सकता है । हमारे शरीर में भी इन्हीं तत्वों की उर्जा व्याप्त है । फलतः शरीर की प्रत्येक कोशिका विशुद्ध जल वायु से ही शुद्ध रहती है । नाड़ि संस्थान की विशुद्धि प्राकृतिक जीवन से जुड़ी हुई है । प्राण शक्ति से संचालित है । हमारी सोचने की क्रिया जलवायु से संयुक्त है । हमारा आहार वनस्पति से नियोजित है, हमारा आवास पृथ्वी से सम्बन्धित है । हम प्रकृति को छोड़कर एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकते हैं अतः जहाँ हम हैं वहाँ प्रकृति है, जहाँ प्रकृति है वहाँ हम हैं । अतः प्रकृति की सुरक्षा अपने आपकी सुरक्षा है ।

चिन्तन

१. जल-वायु के प्रभाव से शरीर के भीतर उत्थित प्राणवायु को चुम्बकीय शक्ति की तीव्र गति मिलती है ।

२. किसी भी स्थान में स्थित जल-वायु एक अविच्छिन्न रूप से केन्द्रित किये जायँ, दूषित होगा ही ।

३. जल-वायु और वनस्पति के प्रभाव से प्रतिक्षण एक नयी सृष्टि की संरचना होती है ।

४. पानी से भरे मेघ जब आपस में टक्राते हैं तो तरंगों में संघर्षण होने से विद्युत पैदा हो जाती है ।

५. प्रकृति की सुरक्षा से रहित होकर संसार को संजोते रहना यह सर्वोपरि नैतिक अपराध है ।

प्रकृति के कण-कण में
कई नयी तरंगें होती हैं,
किन्तु विकृति उन्हीं तरंगों को
जड़ मूल से उखाड़ देती है ।

⌘
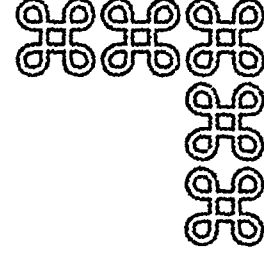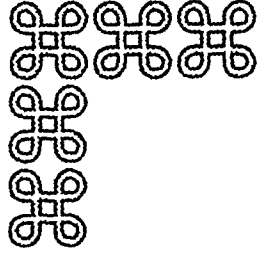
७. "जे लोगं अब्भाइक्खइ, से अत्ताणं अब्भाइक्खइ,
जे अत्ताणं अब्भाइक्खई, से लोगं अब्भाइक्खइ ।"

अर्थ—जो मानव अग्नि के अस्तित्व को अस्वीकार करता है वह अपनी आत्मा को अस्वीकार करता है । अतः आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करना है तो अग्नि के अस्तित्व को भी स्वीकार करना होगा ।
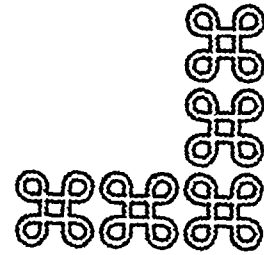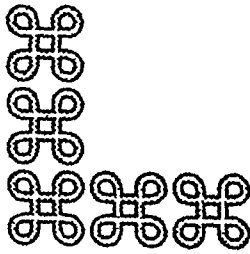
प्राणिज विद्युत की सजीवता

८. आग सबको जलाती है फिर भी वह सजीव है, ऐसा कथन कहाँ तक सहमत है क्या उसमें चेतना है ऐसा प्रमाण कोई दे सकता है ?

प्रिय..........

जिन्दा को जलाकार राख करने वाली आग खुद सजीव कैसे मानी जा सकती है ऐसा सवाल होना स्वाभाविक है । आज दिन तक अनेक धर्म परंपरा में जल और अग्नि को देवता मानकर पूजा तो जाता था पर उसकी हिंसा की ओर किसी का भी ध्यान नहीं जा सका । प्राचीनकाल से जल शुद्धि और पंचाग्नि तप प्रसिद्ध है । किन्तु परमात्मा महावीर ने अहिंसा की दृष्टि से जल और आग को भी सजीव माना है । अतः उस ओर उन्होंने सभी का ध्यान केन्द्रित किया है । साथ ही साथ इनकी सुरक्षा, इनकी हिंसा का निषेध और इनकी उपयोगिता की आवश्यकता का अवबोध भी कराया है ।

अग्नि की सजीवता ऐसे तो स्वयं सिद्ध है क्योंकि उसमें प्रकाश है, उष्णता का गुण है और ये दोनों चैतन्यता में सदैव विद्यमान हैं । अग्नि काष्ठ आदि का आहार करती है जिससे घट-बढ़ की अवस्था प्राप्त होती है, वायु के अभाव में नष्ट होती है अतः श्वासोश्वास भी लेती है इस प्रकार आग में चेतना है, ऐसा सिद्ध होता है ।

वैज्ञानिक गाल्वानि ने विजली के गोले से स्रवित आग द्वारा मेढक के स्नायुओं को संकुचित होते हुए देखा । बड़ी देर तक वह देखता ही रहा तब उसके दिमाग में एक प्रयोग उपस्थित हुआ । उसने धातु के दो श्लाका लेकर मेढक के स्नायु पर रखा और स्नायु संकुचित होने लगे जैसे ही स्नायुओं का घर्षण हुआ तो भीतर से बिजली पैदा हुयी । इस नये विद्युत का उसने प्राणिजविद्युत नाम रखा । इसी प्राणिजविद्युत के आधार पर वोल्टा ने रासायनिक कोष की रचना की ।

केटफिश नाम की मछली अपने शरीर में से ३४० वोल्ट के विद्युत प्रवाह से दूसरों को करंट दे सकती है । प्रयोगशाला में अनेक रासायनिक प्रक्रिया

द्वारा विद्युत प्राप्त होने पर भी वैज्ञानिकों की दृष्टि में स्पर्श मात्र से ही जबरदस्त झटका (शॉक) देती हुयी मत्स्य की ओर से विशेष आकर्षण रहा क्योंकि इससे प्रामाणित होता है कि प्राणी के शरीर में जो करंट देने की शक्ति है, वह भीतर की आग है । आग सजीव है इसलिए झटका देती है, इससे बड़ी सत्यता और क्या हो सकती है । ऐसे तो हर प्राणी में ऊष्मा का तत्व विद्यमान है, किन्तु हमें तो बाहर की आग के जीवों की ओर ध्यान देना है । इसको भी हम आज के युग के अनुसार जीव विद्युत कोष के माध्यम से ही देखेंगे । जो ऊर्जा जीवों में प्राप्त होती है, उसके प्रयोग द्वारा यह भी सिद्ध हुआ है कि बेक्टेरिया में जो प्रकाश या गर्मी पैदा होती है, वह भी सजीवता के कारण ही होती है । इसके साथ-साथ बेक्टेरिया एक साथ अनेक बेक्टेरिया को भी पैदा करता है । यह बेक्टेरिया का समूह ही आग, ऊर्जा, विद्युत का रूप कहा जाता है । इससे निर्णय हुआ कि जीव ही दूसरे जीव को पैदा कर सकता है, अतः अग्नि में सजीवता है, यह सिद्ध हो रहा है । बेक्टेरिया दीप्ति भी पैदा कर सकते हैं । ऐसा भी वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है । अतः इन बेक्टेरियाओं के रासायनिक शक्तियों का दूसरे रासायनिक शक्ति में परिवर्तन होने पर विविध प्रकार की ऊर्जाओं का प्रयोग सिद्ध हो रहा है ।

डॉ. फ्रेडरिक सिस्ल ने कहा है कि जीव-विद्युत के लिए सर्करा का उपयोग एवं बेक्टेरिया युक्त समुन्दर का जल उपयुक्त होता है । उन्होंने धातु के धनध्रुव के सामने बेक्टेरिया का उपयोग और समुन्दर का नमकिला जल का उपयोग किया तथा ऋण ध्रुव के सामने समुन्दर का जल और ऑक्सीजन का उपयोग किया था जिसके फलस्वरूप जीव-विद्युत का अत्यधिक मात्रा में उपार्जन हुआ था । पानी में हरिकाय पैदा होती है । इस काय द्वारा सौर शक्ति का विद्युत के रूप में परिवर्तन होता है । बेक्टेरिया को धन ध्रुव और हरिकाय को ऋण ध्रुव के सामने रखने से एक विशेष प्रकार की सजीव बैटरी जो सौर द्वारा निर्मित होती है उसका निर्माण होता है ।

जीव कोष में ऑक्सीजन और हाइड्रोजन मिलने पर उसमें से आग पानी उत्पन्न होते हैं अर्थात् दोनों रूपान्तरण होकर भिन्न होते हैं । उनकी ऐसी मान्यता है कि बेक्टेरिया पानी पैदा करते हैं और हरिकाय आक्सीजन पैदा करता है जिसमें आग अर्थात् विद्युत उत्पन्न हो सकती है । १९६२ में इसका प्रथम प्रयोग रेडियो आदि के लिए किया गया था । बेक्टेरिया और काय

जैसी सजीव कोष से वर्तमान में अनेक स्थान उपयोगी उर्जा उत्पन्न करने का कार्य विज्ञान जगत को प्राप्त हुआ है । इस प्रकार सजीव अग्नि में से सूर्य प्रकाश की सहायता से सजीव पदार्थ (Bio-mass) में से जो ऊर्जा प्राप्त होती है वही जीव ऊर्जा (Bio-energy) है ।

प्रिय आत्मस्वरूप अनु !

संसार में आग द्वारा निर्मित सजीव बिजली का उपयोग इतना व्यापक हो गया है कि बिना विद्युत हमारे इस संसार की कल्पना भी नहीं हो सकती है । हर स्थान पर बल्ब, ट्यूब, पंखा, टी.वी., वीडियो केसेट, वी.सी.आर., हीटर, ए.सी., फ्रिज, गीजर, फोन, लिफ्ट किसी न किसी रूप में विद्यमान है ।

भौतिक सुखों की प्राप्ति के लिए मानव ने न केवल अपने आपको बल्कि समस्त प्राणी जगत को खतरे में डाल दिया है । जनसंख्या बढ़ने से अग्नि, जल, वायु, आदि के माध्यम से उद्योगों का क्षेत्र विस्तृत हुआ है । औद्योगिक विस्तार से वायुमण्डल में दूषित रूप से कार्बनडाईआक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड, नाइट्रोजन के विभिन्न ऑक्साइड तथा अधजले हाइड्रो-क्लोरीन के कणों से पर्यावरण दूषित होता जा रहा है । आग से पानी की भाप बनती है और भाप से बादल छा जाते हैं । बादल का घर्षण पुनः बिजली का रूप धारण करता है । और वही भाप पुनः पानी का रूप धारण करता है । इस प्रकार पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति में घनिष्ठ संबंध है और एक दूसरे से एक दूसरे जीवित हैं ।

हमारा शरीर इन पांचों तत्वों से निर्मित हुआ है । आत्मा शरीर को धारण करता है और यथा समय उस पुराने शरीर को छोड़ देता है, आत्मा रहित यह मृत देह जब होता है तो पुनः पुद्‌गल में मिल जाता है । आत्मा शरीर को धारण करता है उसमें भी तेजस् शरीर का माध्यम होता है यह तेजस् शरीर अग्नि तत्व है जिसके माध्यम से हमारा खाना हजम होता है । हमारे पूरे शरीर में दीप्ति और तेजस्विता उत्पन्न करता है । विद्युत, प्रकाश और ताप ये तीनों शक्तियाँ उसमें विद्यमान होती हैं । हमारा तात्विक जगत न केवल चैतन्य का जगत है और न केवल परमाणु-पुद्‌गल का यह दोनों के संयोग का जगत है । जहाँ आग है वहाँ उष्णता है, जहाँ उष्णता है वहाँ चैतन्य है । इस प्रकार आग की सजीवता सिद्ध होती है । अति सूक्ष्म होने

से अग्नि के जीव दृष्टिगोचर नहीं होते हैं तो क्या दृष्टिगोचर न होने से उसकी सजीवता ही स्वीकार न हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता । हमारे सूक्ष्म शरीर के भीतर अनेक सूक्ष्म तत्व पड़े हैं । डॉक्टरों ने इस शरीर में चप्पा-चप्पा देख रखा है । सूक्ष्म निरीक्षण और परीक्षण किया है फिर भी योगियों ने योग साधना द्वारा जो खोजें प्राप्त की हैं वह अन्य नहीं कर पाते हैं । इसी प्रकार ज्ञानी के ज्ञान में जो सूक्ष्म जीवों का बोध होता है वह बोध अज्ञानियों को नहीं हो सकता है । अतः अज्ञानता होने से हम सूक्ष्म जीवों को देख नहीं सकते किन्तु वे हैं ही नहीं, ऐसा भी नहीं कह सकते ।

चिन्तन

१. अग्नि मंद है तो भोजन पचेगा नहीं अतः भोजन के पश्चात् सूर्य का ध्यान करो ।
२. सूर्य की, अग्नि की या तेजस की कल्पना करने से मन तेजोमय हो जाता है ।
३. आग पानी को बदल सकती है भाप के रूप में, और पानी आग को बुझा सकता है, खाक के रूप में ।
४. जैसे जंगल में दावाग्नि प्रज्वलित होती है वैसे हमारे भीतर ईर्ष्या की आग प्रज्वलित होती है ।
५. पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति सभी तत्व सजीव हैं सभी में अपनी अपनी स्वतंत्र सत्ता है ।

३
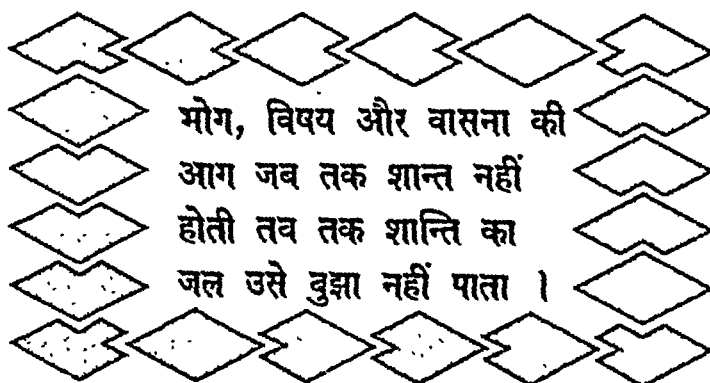
आधुनिक युग को संस्कार निर्माण की चुनौती

- पदार्थ में जीवित प्रियता
  पशुओं की तड़पन
  प्राणीज आँसुओं का मूल्यांकन
  सौंदर्य प्रसाधन में प्राणीज सिसक
  खुशबू की खुशियों में प्राणियों का बलिदान
- उलझनों की परंपरा
  विनाश का पतझड़
  निर्दोष जान की हानि
  चिकित्सा विज्ञान की खोज
  तनाव विसर्जन का उपाय
- शक्ति स्रोत की क्षमता
  विषमता की अवस्था
  मानसिक अशान्ति का बोझ
  भौतिक पदार्थों का आकर्षण
  शक्ति का विकास क्रम
- शरीर का मूल्यांकन
  विक्षिप्त मन से हानि
  विध्वंशात्मक वृत्ति
  संस्कृति पर आक्रमण
  महासत्ता का सूर्यास्त

⌘
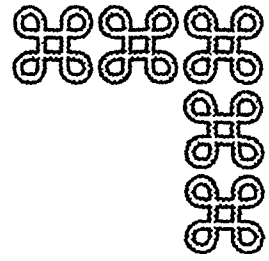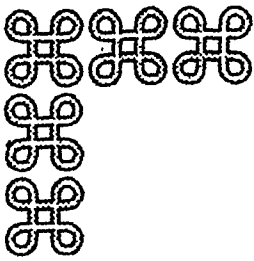
८. "चिट्ठं कूरेहिं कम्मेहिं, चिट्ठं परिचिट्ठति
अचिट्ठं कूरेहिं कम्मेहिं, णो चिट्ठं परिचिट्ठति ।"

अर्थ—जो भी मानव क्रूर कर्म में प्रवृत्त होते हैं वे प्रगाढ़ वेदना वाले स्थान में उत्पन्न होते हैं । पदार्थों का उपयोग किया जाता है उपभोग नहीं, और वह भी अहिंसक पदार्थों का । अपने आपको रूपांतरित करने की सर्वोत्कृष्ट साधना है, प्राणियों के प्राण की सुरक्षा । उनके कल्याण की कामना एवं प्रार्थना ।
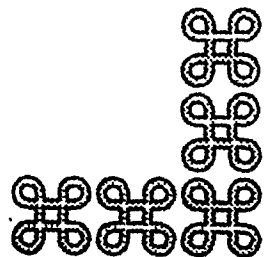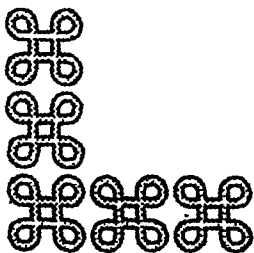
उपयोग और उपभोग का मूल्यांकन

६. शॉपिंग में तरह-तरह के आकर्षक भौतिक साधन होते हैं हम उन्हें खरीदें न खरीदें वे तो मिलते ही हैं। खाने पीने के पदार्थ न बनवाते हैं, न देखने को जाते हैं, फिर भी वस्तु खरीदने में या उपभोग करने में क्यों पाप लगता है ? किसी को मारा नहीं फिर भी कर्म के भागीदार होते हैं, ऐसा क्यों ?

प्रिय..........

जब तक अनित्य क्षण:भंगुर पदार्थों के प्रति प्रियता जीवित है तब तक पदार्थों का आकर्षण होता ही रहेगा। पदार्थों को सुख का साधन समझना ही परम मूर्खता है। क्योंकि पदार्थों के उपभोग में ही वासना और अहं का बीज बोया जाता है। काम, क्रोध, मद, लोभ में अंध मानव प्राणियों के प्राण की क्या परवाह करने वाला है। वह क्या जाने उन निर्दोष प्राणियों की तड़पन को। बाप मर जाता है साल भर उसे याद करता हुआ रोता है, वही बाप का जीव मछली बनता है तो बड़े चाव से उसे खाता है। बन्दर, मेढक, खरगोश, गाय, भैंस, भेड़, बकरे का मांस खाने वालों को और उनसे बनने वाले पदार्थों के उपभोग करने वालों को उनकी चीत्कार कहां सुनायी देती है।

हमारी त्वचा को मुलायम बनाने के लिए अनेक प्राणी पीसे जाते हैं, उबाले जाते हैं, सेके जाते हैं, और उसमें से तेल निकाल कर लोशन बनाया जाता है।

त्वचा की चमकाहट के लिए जो क्रीम बनाया जाता है उसमें कितने जीवधारियों की आहें और आंसू हैं क्रीम में एस्ट्रोजन और प्रोजेस्ट्रोजन जैसे हार्मोन्स के लिए प्रेगनेन्ट (गर्भधारी) पशुओं का प्राण खतरे में डाला जाता है। उन पशुओं के मूत्र में जो हार्मोन्स बनता है उससे त्वचा की चमक बढ़ती है। यूरिन की मात्रा बढ़ाने के लिए उन गर्भ वाले पशुओं को छः महीनों तक लोहे के छोटे से पिंजड़े में बाँधा जाता है। जहाँ वे न तो

हिल सकते हैं ना डुल सकते हैं । फलतः पेशाब अधिक मात्रा में होता है । इस मात्रा को बढ़ाने के लिए उन प्राणियों को डंडों से प्रहार किया जाता है, विषैले पदार्थ खिलाये जाते हैं और उनमें भय पैदा करवाया जाता है । यूरिन की मात्रा अधिक होने से वे पशु शक्ति विहीन हो जाते हैं, भयंकर वेदना से ग्रसित हो जाते हैं, वे वेदना के कारण चीखते हैं; कराहते हैं, आँसू बहाते हैं और बुरी तरह तड़पते हैं । विज्ञान के व्यवसायी उन पशुओं को किसी हद तक मरने नहीं देते हैं किन्तु तड़पन से मुक्त भी नहीं होने देते ।

हमारे शरीर को टॉनिक दवाइयों की आवश्यकता है अतः लाखों की संख्या में व्हेल, शार्क और कॉड जाति की मछलियों की जान खतम करके तेल को टॉनिक के रूप में लिया जाता है । शरीर की पुष्टि, खून की वृद्धि और हड्डियों की मजबूती के लिए प्राणियों के लिवर का पाउडर दूध के साथ पिलाया जाता है । एटलांटिक समुन्दर के अनेक जलचर प्राणियों को जीवित धूप में सुखाया जाता है उन प्राणियों का पानी भीतर से सूख जाता है तब उन्हें चीरकर भीतर केमिकल डालकर कुछ सेका जाता है, और भीतर से तैलीय पदार्थ निकालकर मानव शरीर पर मसाज (मालिश) के लिए उपयोग किया जाता है ।

यूरोप, अमरीका आदि में ये तैलीय पदार्थों के साबुन अत्यधिक प्रसिद्ध हैं । साबुन का उपयोग विशेष होने से रोज इन प्राणियों की लाखों की संख्या में हत्या होती है । इन प्राणियों में सगर्भा प्राणियों के गर्भ में से जो बच्चा निकाला जाता है उसका मुरब्बा बनाया जाता है और पार्टियों में, होटलों में तथा शादियों में इसका विशेष उपयोग करवाया जाता है ।

शरीर को सुगंधित बनाने के लिए सेन्ट, इत्र, परफ्यूम का उपयोग किया जाता है । परफ्यूम के लिए समुन्दर में पैदा होने वाले प्राणियों में स्पर्म व्हेल मच्छ के आंतों में ऐसा सुगन्धी पदार्थ होता है अतः इन निर्दोष मच्छ के आंतों को निकाला जाता है और मानव के शरीर को सुगन्धित बनाया जाता है ।

स्पर्म व्हेल मच्छ से भी अधिक बुरे हाल तो सीवेट प्राणी के होते हैं । सीवेट की एड्रिनल ग्रंथी जब उत्तेजित होती है तब जननेन्द्रिय से सुगन्धित द्रव्य का स्राव होता है, इस द्रव्य की अधिक उत्पत्ति के लिए इसी विभाग पर हार्मोन्स के इन्जेक्शन देकर क्रूरता का कार्य किया जाता है । खुशबू की

खुशियाँ मनाने के लिए कोस्टोरियम का उपयोग भी देखा गया है । इस द्रव्य के लिए लाखों भालुओं की जान से खिलवाड़ रोज किया जाता है । कस्तूरी के लिए मृग, मोती के लिए सीप, रेशमी वस्त्र के लिए कीड़ों का बलिदान किसी से छिपा हुआ नहीं है ।

शॉपिंग सेन्टर में मुलायम पर्स, चप्पल, फर का कोट या भालू के बालों के हेट आदि सौन्दर्य प्रसाधन के पीछे अनेक प्राणियों के प्राण सिसक रहे हैं । जीवित्त सर्पों की त्वचा उतारी जाती है और जब तक प्राण नहीं निकलते हैं तब तक उन्हें यातना देकर तड़पाया जाता है । मुलायम त्वचा ही सांप के लिए खतरा है । मिंक नाम के प्राणी के रोंगटे अत्यंत मुलायम होने से और उसमें से फर के कीमती कोट होने से इन प्राणियों के प्राण लिये जाते हैं ।

प्रिय आत्म स्वरूप अनु !

मार्केट में आने वाले भोज्य पदार्थ न तो हम बनाते हैं और न ही हम बनवाते हैं किन्तु उपभोग हमीं करते हैं । इसलिए करोडों रुपयों का व्यापार इन पशुओं के प्राणों से होता है । इन निर्दोष पशुओं की आहों और आँसुओं से बनी हुई चीजों द्वारा हम अपना सौन्दर्य निखारते हैं । कहने को तो हमने किसी जीव को डायरेक्ट मारा नहीं किन्तु उन्हें मारकर उनसे बने हुए पदार्थों का उपभोग छोड़ा नहीं ।

अभी-अभी दिनांक २०-१२-९३ सोमवार को पंजाब केसरी पत्रिका में "निर्वस्त्र महिलाओं द्वारा विरोध प्रदर्शन" वाला हेडिंग पढ़ा उसमें लिखा था—"म्यूनिख १९ दिसम्बर (डी. पी. ए.) आठ महिलाओं ने कल निर्वस्त्र होकर कड़ी सर्दी में जर्मनी के म्यूनिख शहर की सड़कों पर दौड़ लगाई । इन महिलाओं ने फरों के लिए पशुओं के होने वाले संहार की तरफ लोगों का ध्यान आकृष्ट करने के लिए विरोध प्रदर्शन का यह अद्भुत तरीका अपनाया । ये महिलायें एक बैनर लिए हुई थीं जिस पर लिखा था, "हम फर के कपड़े पहनने की बजाय नंगे रहना पसंद करेंगी ।" कड़ाके की सर्दी के बावजूद निर्वस्त्र होकर निर्दोष पशुओं के हक में आवाज उठाने निकली इन महिलाओं के स्वागत में वहाँ से गुजर रहे कुछ लोगों ने तालियां बजायीं तो कुछ ने सीटियां ।

हम उपभोग करते हैं इसलिए पदार्थों का निर्माण होता है । इसे न

भूलो अतः आज से ही हिंसक पदार्थो का परित्याग कर लो । आकर्षित पदार्थो के प्रति मोह होने पर भी उससे परे हो जाओ । आवश्यकता में भी कम हिंसक पदार्थो का उपयोग करो । जीवों की रक्षा हमारी रक्षा है, किसी भी जीव को अभय देने से हमें भी अभयदान मिलता है, इसे समझो । किसी भी जीव को सुख और शान्ति देने से हमें भी सुख और शान्ति मिलती है । इसे जानो ! दूसरों के हित में ही हमारा हित है, दूसरों की शान्ति में ही हमारी शान्ति है । इसे मानो ! हमारे जो भी कर्म दूसरों (या दूसरे जीवधारियों) को उत्पीड़ित करें वे ही अर्धम हैं । हम सोचें कि यह अधर्म हमारे किसी व्यवहार में या किसी विचार में हो रहा है या नहीं ? इसे सोचो !

अपने शरीर के समस्त अंगोपांग संसार के समस्त जीवों की सुरक्षा का उपहार बन जाय, ऐसे प्यार का तू स्वामी बन जा । प्राणी मात्र सुख चाहता है । तेरे द्वारा सुख न मिले तो न सही किन्तु किसी का दिल तो न दुखे ! हमारा अन्तःकरण प्राणी मात्र को आत्मवत् समझे तो हमारा हृदय कभी निर्दय नहीं हो सकता । हमारा चित्त विक्षिप्त नहीं हो जाता, हमारी परिणिति विकृत नहीं हो जाती, यह हमें हर वक्त देखते रहना है । अपने अंतःकरण की चौकसी करते रहना है और इसके लिए प्राणी मात्र से प्यार करना है । शस्त्रों के घाव मिट सकते हैं पर, वाणी का घाव सदा के लिए ताजा रहता है । मन, वचन और कायिक योग से किसी के प्राण समाप्त न हो जायँ, इसके लिए जागृत हो जाओ । समूचे विश्व का कल्याण हो ।

सारे संसार के दुश्मनों को तो हम उसका मित्र नहीं बना सकते किन्तु मेरा इस संसार में कोई दुश्मन न हो, इतना तो हम कर सकते हैं । सारे संसार के दुःख को हम मिटा नहीं सकते किन्तु किसी जीव को हमसे दुःख न पहुँचे यह संकल्प तो ले ही सकते हैं । सभी सुखी हों सबका जीवन निरापद रहे, सबके चारों और कल्याण की वर्षा हो, यह कामना तो हम कर ही सकते हैं । आओ हम सब यह कामना करें ।

चिन्तन

१. प्राणी मात्र को सुख प्रिय है और दुःख अप्रिय है तो क्यों न हम सबको सुखी बनाने का प्रयास करें ।

२. चित्त की प्रसन्नता जीवन का वरदान है क्योंकि न हम खुद प्रसन्न रहें और दूसरों को प्रसन्न रखें ।
३. दूसरों को दुःख देने वाला मानव स्वयं के प्रति किए गए अपकार और उससे पैदा होने वाली वेदना को बरदाश्त क्यों नहीं करता ?
४. जीवन जीने का जन्मसिद्ध अधिकार प्राणी मात्र को है । उनके इस अधिकार को छीनना सबसे बड़ा पाप है ।
५. दुःखी का दुःख अंधेरे की तरह घेरे हुए है, सुखी उस दुर्भाग्य पर हँस रहा है, दुःख की हँसी उड़ाना पाप है दुःखी के दुःख को दूर करना पुण्य है ।

प्राणी के प्राण लेना सरल है, किन्तु मक्खी जैसे तुच्छ प्राणी के पंख का भी निर्माण करना दुष्कर है अतः प्राण का मूल्यांकन करें ।

⌘
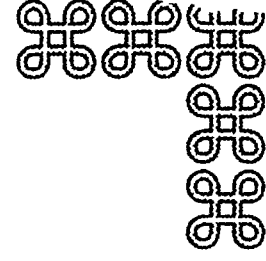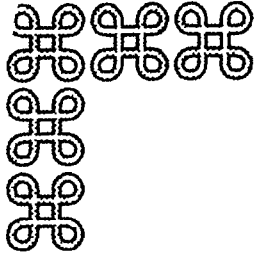
६. "सव्वे पाणा सव्वे भूता सव्वे जीवा सव्वे सत्ता
ण हंतव्वा, ण अज्ञावेयव्वा, ण परिघेतव्वा,
ण परितावेयव्वा, ण उद्दवेयव्वा ।"

अर्थ—किसी भी प्राणी, भूत, जीव और सत्व का हनन नहीं करना चाहिए; उन पर शासन नहीं करना चाहिए; उन्हें दास नहीं बनाना चाहिए; उन्हें परिताप नहीं देना चाहिए; उनका प्राण वियोजन नहीं करना चाहिए ।
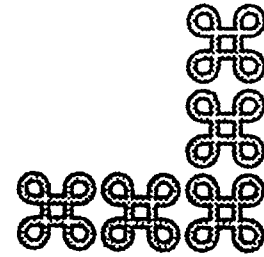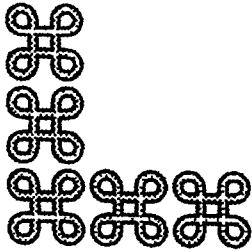
साधन का अभाव अभाव नहीं

१०. जीवन विकास के लिए विज्ञान का शोधन विश्व भर में सराहनीय है, साधन का अभाव नहीं फिर भी शान्ति का अभाव अवश्य खलता है । क्या शान्ति का सूर्योदय कभी होगा ?

प्रिय..........

ज्वार और भाटे की तरह मानव जीवन में हानि और लाभ, विकास और विनाश, प्रकाश और अंधकार, सुख और दुःख, एक न एक आते ही हैं । यदि मानव समुन्दर के दोनों तट को पार कर लेता है तो अवश्य सफलता और समृद्धि के शिखर तक पहुंच जाता है इसमें कोई शक नहीं । किन्तु वैज्ञानिकों द्वारा अनेक भौतिक साधनों का निर्माण होने पर भी उन पदार्थों द्वारा कभी तो शान्ति मिलेगी ही ऐसी आशा में मानव इन्तजार करता हुआ जीवन समाप्ति की तलहटी तक पहुँच जाता है । इच्छा होने पर भी जीवन विकास का कोई नजारा कहीं दृश्यमान नहीं होता है और विनाश का पतझड़ कभी समाप्त नहीं होता है । ऐसी स्थिति में केवल तड़प-तड़पकर ही वह मर जाता है अतः वैज्ञानिकों का शोधन ही जीवन विकास है ऐसी मान्यता ही गलत है ।

ज्ञान का स्रोत एक बार भीतर से प्रस्फुटित करलो, क्रिया परिवर्तनशील है, परिवर्तन संसार का स्वभाव है, शरीर और संसार को जोड़ने वाला, तोड़ने वाला, और भेद-अभेद का आनंद लूटने वाला यदि कोई है तो वह अज्ञात शक्ति आत्म तत्व ही है । अतः आत्मतत्व तथा आस्तिक भाव ही जीवन का विकास है । शरीर के ममत्व का त्याग आत्म-विश्वास उत्पन्न करता है । किन्तु भोगों में आसक्त मानव विषयों का स्मरण, चिन्तन और मनन करता है । सोया हुआ मानव मूर्च्छावस्था में होने से विषयों का सुख ही सुख मान बैठा है । अपने सुख को भोगने के लिए, अपने स्वाद की पूर्ति के लिए, ऐशो-आराम के लिए वह अनेक प्राणियों के प्राण लेता है । चिकन मसाला, चिकन फ्राय, चिकन बटर, केक, आमलेट इत्यादि डिलिशियस के लिए रोज

कितने मुर्गों की जान ली जा रही है । केवल स्पोर्ट्स के लिए, खेल खेलने के लिए कितने निरपराध पशुओं की हिंसा होती है ।

अनेक वैज्ञानिकों ने अपनी प्रयोगशाला (लेबोरेट्री) में अनेक प्राणियों—खरगोश, चूहे, मेढक, छिपकली के प्राण ले लिए हैं, वे वैज्ञानिक शोधों के लिए भूखे प्यासे तड़पाये जाते हैं, विद्युत करंट के झटके झेलते हैं, गरम पानी में जिन्दा उबाले जाते हैं, विषैले इन्जेक्शन झेलते हैं । अग्नि में उनके अनेक अवयव जलाये जाते हैं ।

चिकित्सा-विज्ञान के कॉलेजों में आज कितने प्राणियों को मार कर उनके हार्ट, किडनी, लिवर, आँख, कान, जिह्वा आदि अंगोपांगों का शोधन किया जाता है । अनेक प्राणियों पर जलद तेजाब और एसिटिलोन ज्योति से स्किन जलाने के प्रयोग भी किये जाते हैं । अनेक प्राणियों को घायल करके घाव को पकाया जाता है । और उसका प्रभाव दूसरे प्राणियों पर कैसा होता है, ये सोचा जाता है । सिफलीस, कैन्सर, एड्स जैसे रोगों के निदान के लिए अनेक प्राणियों के शरीर में रोग के कीटाणु पैदा करते हैं । उन कीटाणुओं को मारने के लिए विषैली दवाओं का उन निर्दोष निरोगी प्राणियों पर प्रयोग किया जाता है ।

कॉस्मेटिक आइटम के लिए भी अनेक प्राणियों की हत्या करने में मानव हिचकिचाता नहीं । प्राणी विच्छेद जैसे क्रूरता के प्रयोग करोड़ों की संख्या में हर साल परीक्षण हेतु होते रहते हैं, जिसमें कॉस्मेटिक के प्रसाधन अपनी खुशिया मनाने के लिए ही विशेष होता है । हेयरडाइ, लिपस्टिक, लोशन आदि सौन्दर्य के अनेक प्रसाधन अनेक प्राणियों के प्राण ही तो हैं ।

अमरीका में मेडिकल इन्ट्यूशन प्रयोगशाला में करोड़ों की संख्या में बंदरों पर प्रयोग किये जाते हैं, मनोवैज्ञानिक रोबर्ट बेडफोर्ड द्वारा निर्मित फिल्म में तड़पते हुए प्राणियों को देखकर अनेक महिलाओं का हार्ट फेल हो गया, अनेक लोगों का दिमाग अपसेट हो गया । अनेक लोगों का खाना और नींद हराम हो गये । कई लोग बीमार हो गये । दूसरी ओर देखा जाए तो बिल्ली चूहे को पकड़ती है, बगुले मछलियों को पकड़ते हैं, सिंह, व्याघ्र और चीता जैसे क्रूर प्राणी जन्मजात हिंस्र ही होते हैं किन्तु मानव तो हिंस्र प्राणी नहीं है । फिर भी मानव की असात्त्विक, अमानवीय, अवैधानिक क्रूरता चरम सीमा पर पहुँची हुयी है उसका प्रत्यक्ष उदाहरण है—बड़े-बड़े बोर्ड पर लिखा हुआ

मिलता है बन्दरों के कलेजे और हृदय का सूप । ये सूप बड़ा प्रसिद्ध होने से सुबह से शाम तक लोग लाइन में खड़े रहते हैं तो भी अनेक बार बिना पीयें ही खाली लौटना पड़ता था ।

प्रिय आत्म स्वरूप अनु !

आज का मानव अपने उत्तरदायित्वों से मुंह मोड़ रहा है, क्योंकि भौतिकवाद और औद्योगीकरण ने उसे स्वार्थी बना दिया है । जीवन विकास हेतु प्रत्येक प्राणी को शान्ति से जीने का प्राकृतिक अधिकार है किन्तु भोग विलास और ऐच्छिक पूर्ति के लिए किसी के प्राणों का सत्व छीन लेना कितनी बड़ी हत्या है ।

विकास के क्षेत्रों में और जीवन की उन्नति में कहाँ और कैसे हम सहयोगी हो सकते हैं, यह मानव मात्र का उत्तरदायित्व है । क्योंकि जीवन विकास यह प्राणी मात्र के लिए एक चुनौती है । विकास एक रचनात्मक गतिविधि है, शान्ति नहीं । गतिविधि का सहयोग वैज्ञानिक खोज के विभिन्न पहलू—आध्यात्मिक, जैविक और मनोवैज्ञानिक तक बढ़ाया जा सकता है । किन्तु शान्ति साधना के लिए तो साधना ही चाहिए । यदि शान्ति का नजारा पाना है तो उठो और अपने पाप, ताप और संताप समाप्त करो । अपने साढ़े तीन करोड़ रोम में जलती हुई वासना की आग पर सर्व प्रथम पानी बरसादो । असंख्य आत्म प्रदेशों से रागात्मक विकारों को मटियामेट कर दो । सारे शरीर में अरबों और खरबों की संख्या में वासनात्मक रोल बैटरीचार्ज की तरह तरंगित हो रहे हैं, उन्हें बुझा दो । भीतर से प्रसन्नता का वरदान मिलेगा ।

अस्त-व्यस्त जीवन में होने वाले एक्सिडेन्टों से बचने के लिए, टेन्सन से मुक्त होने के लिए, संपत्ति के पीछे जो पागलपन है, व्यक्ति के प्रति जो ममत्व या तिरस्कार है, भयभीत मनोदशा है, अनेकों के प्रति ईर्ष्या-द्वेष के भाव हैं, वैर, विरोध और अशान्ति के तार झनझना रहे हैं, सारे समाप्त हो जायेंगे और घोर आंधी और तूफान में भी तू शान्ति, शान्ति और शान्ति ही पायेगा ।

प्रतिक्षण शोध और परीक्षण करते हुए अपनी सुख सुविधा के लिए कितने ही निर्दोष प्राणियों की घात हुयी है । उन पर बलात् शासन किया है । उनको दास के रूप में देखा है । उन्हें परिताप पहुँचाया है । उसका निरीक्षण

करो । यदि पहुंचाया है तो लाख विकास के योग की तमन्ना होगी फिर भी विनाश ही विनाश है, तड़पन ही तड़पन है ।

चिन्तन

१. कांटों पर चलने पर दर्द तो होगा ही, विषय और कषाय के सेवन से अशान्ति तो होगी ही ।
२. शान्ति का अनुभव विषय वासना की विरक्ति और विवेक की उपलब्धि से होता है ।
३. जिसका आरंभ है उसका अंत अवश्य है जिसका अंत है उसका कहीं न कहीं निर्माण अवश्य है ।
४. जो मन निजानंद के लिए मिला है उस मन को वासना से विकृत क्यों किया जाय ।
५. जीवित शरीर को मृतक के समान समझने वाला चिन्तक होता है ।

दूसरों की गलती को माफ करना सरल है किन्तु, अपनी गलती निकालने वाले को माफ करना अत्याधिक मुश्किल है ।

⌘
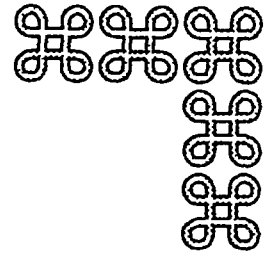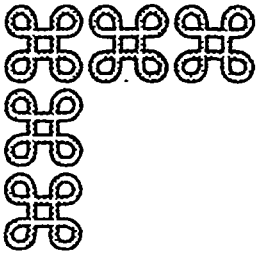
१०. "इति से परस्स अट्ठाए कुराइं कम्माइं बाले
पकुव्वामाणे तेण दुक्खेण मूढे विप्परियासुवेइ ।"

अर्थ—अज्ञानी मानव दूसरों के लिए क्रूर कर्म करता है, भौतिक शक्ति का स्रोत बहाता हुआ उसी दुःख से वेदना भोगता हुआ । सुख को भी दुःख मानकर दुःखी होता रहता है ।
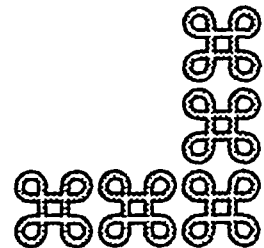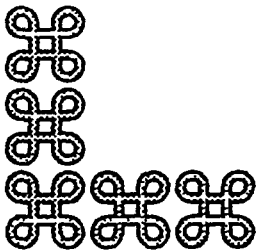
भोगोपभोग के रहस्यों का स्रोत

११. विज्ञान के क्षेत्रों में वैज्ञानिकों ने, दर्शन के क्षेत्रों में दार्शनिकों ने, और मन के क्षेत्रों में मनोवैज्ञानिकों ने अनेक रासायनिक प्रयोगों द्वारा भोगोपभोग के रहस्यों का उद्‌घाटन किया है । यह प्रत्यक्ष है, फिर भी मानव प्राचीन युग से आधुनिक युग में अधिक सुखी है ऐसा नजर नहीं आता । कोई भी शक्ति का स्रोत-विकास में रहस्यों का उद्‌घाटन तो करना ही पड़ता है तो हमें कौन-सी शक्ति का स्रोत विकसित करना चाहिए ?

प्रिय.........

शक्ति के स्रोत के विषय में एक भेद रेखा अंकित करना अत्यधिक आवश्यक है । संसार में दृश्य और अदृश्य, प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों प्रकार के प्रयोगों द्वारा भौतिक और आध्यात्मिक स्रोत प्रवाहमान होता है ।

भौतिक शक्ति ने इस संसार में अनेक प्रकार के भोगोपभोग के साधनों का निर्माण किया । साधनों का निर्माण तो हुआ किन्तु साथ ही साथ हिंसा, बलात्कार, भुखमरी और महँगाई की व्यापकता ने संसार को घेर लिया और प्यार की दीवारों को तोड़ दिया ।

पन्द्रह से पच्चीस, साल की युवा पीढ़ी को देखो । रजिस्टरों में उनके नाम पढ़ो जिनके पास रिवाल्वर, बम, पिस्तौल, रायफल जैसे शस्त्र मिलते हैं ।

आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, क्षेत्रों में एक सी ऐसी हवा फैली है जो पुरातन विभाग है उसको हटाया जाय और पुनरुत्थान (रेनेसां) की स्थापना स्थापित की जाय (रीफोर्मेशन) सुधारवादी की मांग पूरी होनी चाहिए ।

हमारे विचार, अरमान, मूल्यांकन, रहन-सहन, हाव-भाव, रीति-रिवाज, हालचाल, जातीय संबंध, जातीय व्यवहार इत्यादि सब कुछ बदल गये । कुसंस्कारों ने तो पहाड़ों का रूप धारण कर लिया । नीति, न्याय और प्रामाणिकता का तो छज्जा ही उड़ गया है । काजल ही काजल बरसता हो वहाँ जीवन को निदाग कैसे रखा जाय । जहाँ आग ही आग बरसती हो

वहाँ घी को सलामत कैसे रखा जाय । चारों और बीभत्स और अश्लील पोस्टरों से आँखों को कैसे बचाया जाय । ड्रग्स, डिस्को, टी. वी., वीडियो, ब्ल्यु फिल्म, वीडियो गेम्स का जुगार, स्वादिष्ट मीट का भोजन, ब्युटी पार्लरों के कौभांड, ब्लेकमेल, स्मगलिंग आदि का व्यवसाय । फाइवस्टार होटल, क्लब और पार्टियां आदि स्थानों पर भौतिकता का वातावरण आसमान तक चढ़ चुका है ।

आधुनिक युग में सिन्थेटिक पदार्थों का ही उपयोग होता है । फलतः प्रदूषण-पोल्यूशन विशेष रूप से दूषित होने से टेक्नोलोजीओं द्वारा जो पोल्यूशन दूषित हुआ उससे तो आरोग्य का ही नहीं, जिन्दगी का ही सत्यानाश हो गया है ।

अमरीका में रासायनिक फैक्टरियों में काम करने वाले मजदूरों में सौ में पच्चीस परसेंट कैन्सर के रोग से ग्रसित होते हैं ।

न्यूयार्क में टैक्सी ड्रायवरों के खून में कार्बन मोनोक्साइड का परिणाम अधिक होने से हार्ट ट्रबल का रोग अधिक मात्रा में पाया जाता है । भौतिक पदार्थों के निर्माण हेतु औद्योगिक कर्मचारियों में विशेष रूप में ओक्युपेशनल डिसीज अर्थात् कार्य के साथ संयुक्त रोग के द्वारा विकलांग के शिकारी वनते हैं । रसायनों (केमिकलों) के माध्यम से या पेट्रोकेमिकल के उद्योग से साल में तीस लाख से अधिक ऑपरेशन होते हैं । उनमें से दस पंद्रह लाख केस तो ऑफ भी हो जाते हैं । इस प्रकार वैज्ञानिक खोजों के पीछे मानव हिंसा, प्राणिज हिंसा आदि की बौछार हो रही है ।

दर्शन के क्षेत्र में दार्शनिकों ने रहस्यों की खोज की है किन्तु दर्शन का जन्म ही तर्क की भूमिका पर हुआ है । इस पुरुष ने कहा है इसलिए हम सत्य मानें ऐसा क्यों ? जब तक वास्तविकता हाथ नहीं आती तब तक विरोधी तत्वों से हमारा समाधान नहीं होता । यदि सत्य को सत्य की दृष्टि से न देखा जाय तो संघर्ष होगा ही होगा । अपने अपने मान्य पुरुषों द्वारा प्रतिपादित तत्व ही सत्य है, युक्ति संगत है अन्य नहीं, ऐसी मान्यता ने दर्शन को दुर्बल बना दिया है । फलतः जो सत्य है वही मान्य है उसके स्थान पर मुझे मान्य वह सत्य है, इस प्रकार अपनी धारणाओं के अनुसार सत्य को ढाला जाता है, यही विकृति है ।

आज हर व्यक्ति के जीवन में समस्या है । अतः मन को समझना जरूरी

है । मन बहुत बार बैचेन हो जाता है, तनाव से ग्रसित हो जाता है, बार-बार डिप्रेसन हो जाता है, मानसिक कमजोरियाँ आती रहती हैं, उससे अनेक प्रकार का भय उत्पन्न होता है ।

मानसिक शुभ या अशुभ क्रिया की प्रतिक्रियाएँ आक्रमण करती रहती हैं और मानसिक संतुलन को असंतुलित बनाती रहती हैं अतः मानसिक उलझनों को सुलझाने के लिए अनेक प्रक्रिया का सामना करना पड़ता है । इस संक्रमण और प्रदूषण के वातावरण में जीने वाला मन भी अशान्त हो जाता है । अग्नि के प्रभाव से ठंडा पानी गरम हो जाता है । वैसे ही अशुद्ध भाव से शुद्ध मन विकृत हो जाता है । फलतः काम, क्रोध, मद, माया आदि संवेग उत्तेजित हो जाते हैं ।

प्रिय आत्म स्वरूप अनु !

रासायनिक प्रयोगों द्वारा अनेक रहस्यों का उद्‌घाटन करना सहज है किन्तु उन सहस्यों में वास्तविकता की प्राथमिकता को निभाना उतना ही दुष्कर है । द्वंद्वात्मक परिस्थिति स्वाभाविक गुणों को मिटा देती है और हिंसात्मक स्थिति को उभारती है । वस्तु, व्यक्ति, अवस्था और परिस्थिति परिणाम चाहती है ।

अपने अधिकार की रक्षा, पदार्थो की पूर्ति की इच्छा और प्यार भरे संबंधों की शिक्षा यदि प्राणी मात्र प्राप्त करले तो हमें प्यार और अहिंसा का ही नजारा मिलता रहेगा, यह निर्विवाद है । किन्तु अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए मानव मानव की हिंसा करता है और सारे संसार में आतंक फैलाता है ।

अपनी बुराई, मूर्खता, तुच्छता इत्यादि का अनुभव करने पर ही वृत्तियों में शैथिल्य आता है । जिनका हृदय कठोर होता है, जिनकी वृत्ति क्रूर होती है, जो सिर से पैर तक स्वार्थ में निमग्न रहता है उसे न तो अपनी परवाह होती है और न दूसरों की परवाह होती है ।

दिया बुझाकर भागने वाला यदि समझता है कि दूसरे उसे देख नहीं सकते, तो उसे यह भी समझ रखना चाहिए कि वह ठोकर खा कर गिर भी सकता है । अपने दोष, अपराध या बुराई में जिसे दुराव या छिपाव की प्रवृत्ति नहीं रहती वही दोष को दोष रूप का अनुभव, अपने अपराध का स्वीकार आंतरिक अस्वस्थता का उपचार तथा सच्चे सुधार द्वार खोल सकता है । हम बुरे हैं, जब तक यह न समझेंगे तब तक अच्छे नहीं हो सकते ।

बुराई से बचाने वाले तीन मनोविकार हैं—सात्विक वृत्ति वालों के लिए ग्लानि, राजसी वृत्ति वालों के लिए लज्जा और तामसी वृत्ति वालों के लिए भय । जिन्हें अपने किये पर ग्लानि नहीं हो सकती वे लोक लज्जा से, जिन्हें लोक की परवाह नहीं होती वे भय से बहुत से कार्यों को करने में हिचकते हैं ।

उठो ! निरर्थक प्रवृत्तियों में भी सार्थक वृत्तियाँ छिपी हुई हैं, असार में भी सार तत्व छिपा पड़ा है, मलीन में भी शुभ्रता के दर्शन होते हैं । युग प्राचीन हो या आधुनिक शक्ति का स्रोत तो हमारे भीतर है । सुख और दुख हमारी उपज है । दोनों में सम रहना ही विकास है ।

चिन्तन

१. परिस्थिति के परिवर्तनों से परिणाम में परिवर्तन हो सकता है किन्तु परमतत्व में परिवर्तन नहीं हो सकता ।
२. मन को निरंतर नये की तड़पन है किन्तु समय उसी क्षण नये को पुराने में परिवर्तन कर देता है ।
३. धन की मूर्च्छा ने इस संसार में पुत्र के हाथ से पिता का और पिता के हाथ से पुत्र का खून करवाया है ।
४. खून का, प्यार का और परिजनों का मात्र रिश्ता ही है या संवेदना भी है । यदि रिश्ता है और संवेदना नहीं तो संघर्ष निश्चित है ।
५. पानी खतम होते ही शरीर में चक्कर आने लगते हैं । वैसे ही प्यार खतम होते ही दिमाग अपसेट होने लगता है ।
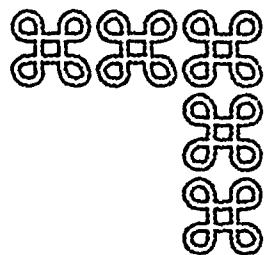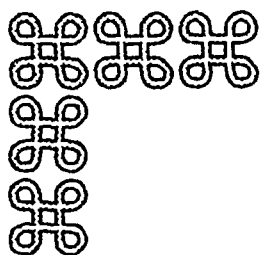
११. "से पुव्वं पेयं पच्छा पेयं भेउर-धम्मं, विद्धंसण-धम्मं, अध्रुवं, अणितियं असासयं चयावचइयं, विपरिणाम-धम्मं, पासह एयं रुवं !"

अर्थ—शरीर नाशवान है, विनाश और विध्वंश इसका स्वभाव है। अध्रुव, अनित्य और अशाश्वत होने से हानि और वृद्धि से ग्रसित होता है और विविध अवस्थाओं में रूपान्तरित होता है।
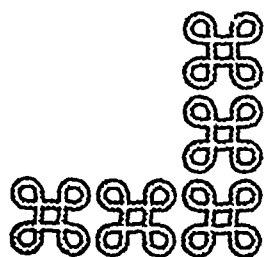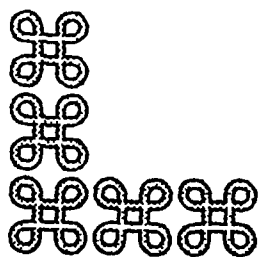
देहिक अस्तित्व का अविवेक

१२. जो चोला हमने धारण किया है उसकी मांग तो हमें पूरी करनी ही चाहिए । हमारे पास धन संपत्ति है तो उसका उपभोग होगा ही, मान सम्मान मिलेगा ही, सत्ता और अधिकार रहेगा ही, किन्तु संपत्ति, सत्ता और अधिकार मेरी शान्ति और प्रसन्नता को खिन्नता और नीरसता की ओर ले जाता है, ऐसा क्यों ?

प्रिय..........

आग में जलना, पानी में डूबना, पहाड़ों से गिरना, या वनखंडों में रहना सरल है किन्तु देहाध्यास से विरक्त होना दुसाध्य है । अपने को देह से अलग मानकर आपको कौन से अधिकार चाहिए ?

हमने आज दिन तक इस चोले की ही मांग पूरी की है । कुमकुम की लालिमा से इस सत्ता और अधिकार की ही भांग भरी है । मुखाकृति पर छाया हुआ अहं लाखों लोगों के तिरस्कार से सुशोभित हो रहा है । यह चोला मान का भूखा है, पदार्थों के उपभोग का पुजारी है, व्यक्ति, वस्तु और परिस्थिति का दास है । मान सम्मान मिल गया तो फूला नहीं समाता, सत्ता और अधिकार भोग रहा है फिर भी तृष्णा शान्त नहीं होती ।

शरीर को अपना निजी अस्तित्व मानना तो अविवेक है । हमारी बुद्धि ने भले ही इस देह को प्यार किया हो; इस देह के अस्तित्व को सिद्ध किया हो, किन्तु हमें अपने अस्तित्व के लिए देह की अपेक्षा नहीं । भले ही पार्थिव शरीर दृश्यमान हो किन्तु उसकी नित्यता स्वीकार करना ही पागलपन है । हम राग के शिकारी हैं; भोग के भिखारी हैं, वासना के दास हैं । हमारी संपत्ति और अधिकार का अहं तभी तक जिन्दा है, जब तक हमारी वासना जिन्दा है । जब तक राग की दृष्टि खुली है तब तक शरीर के अस्तित्व पर हमारा अस्तित्व निर्भर है । भौतिकता के स्टीमरोल में वाह्य वास्तविकता का भी ह्रास हो गया है । फलतः ड्रग्स, ड्रिंक्स, ब्ल्यू फिल्म, ब्ल्यू बुक्स, क्लब

और होटलों के संस्कार ने इस देहधारी को भ्रष्टाचारी, दुराचारी और व्याभिचारी का मालिक बनाते हुए भी नहीं छोड़ा ।

बलात्कार और हत्या सत्ताधारी और अधिकारियों के लिए बायें हाथ का खेल हो गया है । आज लाखों युवा बेकार बैठे हैं । उन्हें काम नहीं मिलता, जिनको काम मिलता है वे शराब, ड्रग्स, ब्राउन सुगर, आदि व्यसनों के दास बने हैं । आज बेकारी, बीमारी, महँगाई, गरीबी तो आसमान पर चढ़ गई हैं । लंच और रिश्वत मिलने पर और न मिलने पर गुंडागर्दी का व्यसन तो सब देहधारियों के लिए सहज हो गया है । देहाशक्ति की आग के लिए नियंत्रण का कोई तार नहीं । इस विद्युत ने घर-घर में अत्याचार का साम्राज्य बसाया है । भाई भाई से लड़ता है क्यों ? बसें जलाता है क्यों ? पूरी मार्केट को लूटता है क्यों ? घर-घर में आतंकवाद का बोलबाला है, मार्केट में, बसों में ट्रेनों में, प्लेनों में बम छोड़े जाते हैं । स्थान-स्थान पर टाइम बम रखे मिलते हैं, हजारों मानवों की जान हमारे देखते-देखते चली जाती है । कौन रोकेगा विध्वंसात्मक वृत्ति को ? क्योंकि हमें सत्ता चाहिए, संपत्ति चाहिए, अधिकार चाहिए । सब इसी दौड़ में तो शामिल हैं । हमें सोचना है—दूसरों को दुःख देकर इस संसार में आज तक कौन सुखी बना है ? धन, संपत्ति, जमीन, जायदाद या सत्ता को छीनकर कौन सुखी रहा है ? दूसरों को मारकर कौन जिन्दा रहा है ? भारतीय संस्कृति का ऐसा ह्रास देखने पर भी पाश्चात्य संस्कृति का विकास हो रहा है क्यों ? प्यासे को पानी के स्थान पर खून पिलाया जा रहा है । कब तक हमारी शान्ति और प्रसन्नता बनी रहेगी । तीसरे विश्वयुद्ध के नगाड़े तो कब से बज रहे हैं । मानव को मानव का ही संहार क्यों पसंद है । दूसरों पर आक्रमण करना ही क्यों उसका उत्थान बनता जा रहा है । रोज-रोज नये शस्त्रों का निर्माण करना ही क्यों बुद्धिमानी है ? क्या उसे पता नहीं कि इस महासत्ता का सूर्यास्त होने वाला है । एटमबम, अणुबम, बोरमीसाइल्स जैसे भयानक शस्त्रों ने सभी की जान खतरे में डाल रखी है । हर राष्ट्र में सड़ाँध पैदा हो गई है । स्ट्राइक, सत्याग्रह, बलिदान या सुरक्षा के लिए आक्रमण की अब आवश्यकता ही खतम हो गई है । 'मारो-काटो पर अपना स्वार्थ पूरा करो' यही नारा परांकाष्ठा तक पहुँच चुका है । अनेक स्थानों में बूचड़खाने खुलते जा रहे हैं । करोड़ों रुपयों का माँस-निकास होता है । मत्स्योद्योग की व्यापकता तो सारे संसार

में फैली हुयी है । "सेक्स" के प्रचार प्रसार के लिए आज घर-घर में टी.वी. वैठ चुका है । कौन किसको रोक सकता है ?

जनंम-जनम से हमारे भीतर आक्रमण की कल्पना के संस्कार जमे हुए हैं । दूसरों के सत्व को हड़प करने में इस मन ने जितना श्रम किया है शायद दूसरे काम में इतना नहीं किया होगा । दूसरों का सत्व छीना जाता है, उस पर अपना अधिकार माना जाता है और उसके लिए संघर्ष द्वारा लाखों मानव का खून वहाया जाता है । आक्रमण का एक दूषण लाखों करोड़ों मानवों की हत्या का हेतु वन जाता है । कितने-कितने लोगों का सुख छीनने का हेतु वन जाता है । कितने लोगों का घर वेघरवार वन जाने का हेतु वन जाता है । संघर्ष से दुःख और अशान्त मानव सुख मिलने पर भी सुख का उपभोग नहीं कर पाता है अतः चोले की मांग पूरी करने के लिए तो अशान्त मन को शान्त और विषम भाव को समभाव में लाना ही होगा । शारीरिक ममत्व से मुक्त होना ही होगा । कर्म विवर को देखता हुआ एक आयतन में लीन होना ही होगा ।

प्रिय आत्म स्वरूप अनु !

आज विश्व में शस्त्रों की कोई कमी नहीं । अपनी सुरक्षा के लिए एक से एक राष्ट्र शस्त्र निर्माण हेतु सफल प्रयास कर रहा है कि शान्ति वनी रहे । फिर भी शान्ति निष्फल हो रही है किन्तु शान्ति शस्त्रों से नहीं होती, हिंसा से विजय नहीं होती—विजय और शान्ति के लिए तो साधना के द्वार ही खोलने पड़ेंगे । उठो, तुम्हारे जीवन में साधना के योग का जन्म हो रहा है । वोरमिसाइलों के स्थान पर पीस-मिसाइलों को पैदा करने का अवसर आ गया है । परमात्मा के द्वार पर देर है, अंधेर नहीं । हताश, निराश और हीनता के भावों ने ही हमको और आपको दुर्वल वनाया है । भीतर की शान्ति का द्वार खोलो । दीर्घदर्शी वनो । अपने परिवार का, समाज का, राष्ट्र का यदि हित चाहते हो तो साधना का पथ प्राकर्षित करो । नहीं तो अभी भी मानव की क्रूर विकराल खोपड़ी रही सही नैतिकता, प्रामाणिकता और प्यार का सत्यानाश कर वैठेगी । जिनके विचारों में विनाश लीला छायी हुयी है, जिनके मानस को स्वार्थों ने घेर रखा है, जिनके शरीर को रोगों या भोगों ने घेरा है, उनकी क्या हालत होती है, सोचो ? सूखे पत्ते के महल

में हम कब तक बचे रह सकते हैं, हवा का झोंका आयेगा और महल धराशायी हो उठेगा । एक चिनगारी सब कुछ जला देगी । मानव सब कुछ खो बैठेगा, तब खून के आँसू बहाओगे तो भी कौन पोंछेगा आकर ? तिल भर जितनी जमीन के लिए कौरवों और पांडवों ने युद्ध किया । एक स्त्री के रूप पर मुग्ध होकर रावण ने अपना सर्वनाश कर डाला । धन प्राप्ति के लिए तो रोज का युद्ध ही है । क्या कोई कागज की नौका में बैठकर समुंदर पार कर सकता है ? चित्र की आग में खाना पका सकता है ? फाइव-स्टार होटलों में महफिल मनाने वाले, क्लब और पार्टियों में घूमने वाले शान्ति और प्रसन्नता की भीख मांगेंगे तो भी नहीं मिलेगी ।

शान्ति के लिए तो साधना का मार्ग अपनाना ही पड़ेगा । उनके जलते हृदय और बरसती आँखें एक दिन साधना-पथ को अवश्य स्वीकारेंगी । जीवन को बदलने के लिए, शान्ति और प्रसन्नता पाने के लिए साधना ही एक जीवन-मंत्र है । साधना द्वारा संपत्ति, सत्ता या अधिकार मिलने पर भी उसका अहं नहीं होता । खिन्नता और नीरसता की कभी मुलाकात नहीं होती । बस आनंद ही आनंद मिलता है । एक बार भीतर से प्रसन्नता के रोज दर्शन करलो । प्रसन्नता ही वरदान बनेगी ।

चिन्तन

१. शरीर रोग ग्रस्त है, अतः रोग से मुक्त होने के लिए अन्य की वेदना को जानो, देखो, और समझो !
२. निष्प्राण शरीर को जलते हुए देखने पर भी उसके प्रति ममत्व जीवित है यही सबसे बड़ा धोखा है ।
३. शरीर के सौन्दर्य से अहं का जन्म होता है और मानवता का विनाश होता है, और मानवता के सौन्दर्य से अहं का विनाश होता है, और शरीर का सदुपयोग होता है ।
४. क्रोध आने पर प्रथम खुद दुःखी होता है, बाद में दूसरा, प्रसन्नता होने पर प्रथम खुद सुखी होता है बाद में दूसरा ।
५. विश्वास ही तो हमारा श्वास है फिर अनित्य श्वास का विश्वास क्या जो चलते-चलते कभी भी रुक जाता है ।

अपने से भिन्न इस नश्वर शरीर को
भौतिक सुख का साधन मानना भूल है ।
इसी भूल में वासना तथा अहं भाव की
उत्पत्ति होती है जो सर्व दुःखों का मूल है ।

⌘

४

आर्थिक विषमता वासना ही नहीं विचार और आधार भी

- दशम ग्रह की पीड़ा

  पशु संहार और उपज

  अंगोपांग का व्यापार

  महिलाओं की दुर्दशा

  उपयोग और उपभोग

- समय का तकाजा

  अभक्ष का प्रचार प्रसार

  अश्लिष्ट व्यवहार

  बदलते हारमोन्स

  बिम्ब और प्रतिबिम्ब

- भौतिक आकर्षण की सार्थकता

  जान-माल की बरबादी

  युद्ध की झलक

  शस्त्र और शान्ति

  संस्कृति की हिंसा
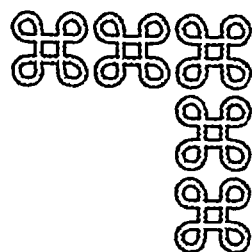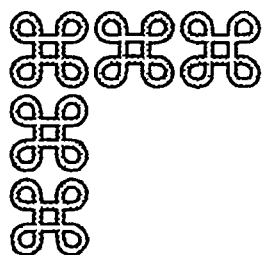
१२. "आवंती के आवंती लोगंसी परिग्गहावंती-से अप्पंवा, बहुंवा, अणुंवा, थूलं वा, चित्तमंतं वा, अचित्तमंतं वा, एतेसु चेव परिग्गहावंती ।"

अर्थ—अल्प या बहुत, सूक्ष्म या स्थूल, सचित्त या अचित्त पदार्थों का परिग्रह करने वाले तथा उसमें मूर्च्छा (आसक्ति) रखने वाले परिग्रही कहे जाते हैं ।
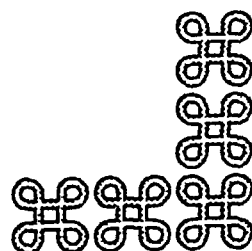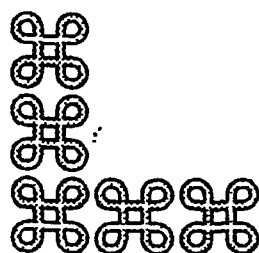
स्वार्थ-पूर्ति की तड़पन

१३. भोगी धन और सत्ता के अभाव में तड़पता है, पदार्थों के प्रति आकर्षण में खूनाखोरी करता है, स्वार्थ की पूर्ति न होने से अधम से अधम पाप करता है, क्या सत्ता और सम्पत्ति से ही सुख और दुःख मिलता है ?

प्रिय..........

नवग्रहों से भी अधिक भयानक दसवां ग्रह परिग्रह है । इस ग्रह की पीड़ा में जो जकड़ जाता है, वह अवश्य तनाव से ग्रसित रहता है । परिग्रह के रोग का भोग बना हुआ मानव मृत्यु-शैय्या पर भी तड़पता रहता है । तृष्णा के तार इतने लम्बे होते हैं कि अपने बच्चों को भी धन सम्पत्ति के बदले में बेचे जाते हैं, जिन्दा बच्चों को काटकर उनके अंगोपांग विदेशों में निकास किये जाते हैं ।

भारत के बच्चे जापान के साइन्स कॉलेजों में, यूनीवर्सिटियों में ट्रेनिंग हेतु बेचे जाते हैं, बदले में भारत को एक मस्तिष्क का २१,००० हजार रुपये मिलते हैं । दोनों हाथ ढाई हजार में बिक जाते हैं । सारा शरीर पचास हजार में मिलता है । धन के लिए मानव लाखों निर्दोष बच्चों की जान ले लेता है ।

भोली भाली भूखी प्यासी तड़पती ग्रामीण जनता को शिक्षित जनता लूटती है और बदले में उस धन द्वारा टी. वी., वीडियो, ब्ल्यू फिल्म, कर चोरी (ब्लेकमनी) ड्रग्स, मीट, अण्डे, पार्टियाँ अटेंड करना, क्लबों में घूमना, होटलों में खाना इत्यादि भोगोपयोग के साधन जुटाती है ।

घूमने फिरने के क्षेत्र बढ़ गये, खाने-पीने के पदार्थ बढ़ गये, लूटपाट और चोरी डकैती के कार्य बढ़ गये, डिस्को डांस, पॉप म्यूजिक और खेल-कूद के साधन बढ़ गये, इन सब भौतिक भोगों को भोगने के लिए मानव, मानव को मारता है, काटता है, पीसता है, और अपने स्वार्थ को पूरा करता है ।

भौतिक साधनों का उपभोग करने के लिए मानव ने प्राणीज उद्योग द्वारा करोड़ों रुपयों की आमदनी पैदा की है । मींकफर के एक कोट की कीमत

६०,००० रुपये होती है, अतः लाखों की संख्या में मींक पशुओं का संहार होता है और कोट का व्यापार होता है ।

भेड़ों के बच्चों के बाल मुलायम होते हैं । अतः उन बच्चों की त्वचा खींचकर बड़ी बुरी हालत से निकाली जाती है और उनमें से सौन्दर्य प्रसाधन का निर्माण किया जाता है । इन मुलायम पदार्थों की कीमत अधिक मिलने से वे लोग इन पशुओं का संहार करने में हरकत नहीं समझते ।

रासायनिक क्रिया से पैदा हुए मुर्गी के अण्डे सरकार को करोड़ों की उपज कराते हैं । मल्टिनेशनल कम्पनी वालों की करोड़ों रुपयों की दवाइयों का व्यापार पोल्ट्रीफॉर्म वालों द्वारा होता है । बंगाल, बिहार, असम आदि स्थानों से लाखों की संख्या में धन के लोभ में बच्चे बेचे जाते हैं और उनके शरीर में से आँखें, किडनी, हड्डियाँ, हार्ट, मेनेबेरो, खून, वीर्य आदि का व्यापार होता है । २० हजार का बच्चा २ लाख में बेचा जाता है ।

सम्पत्ति के लोभ में भेड़-बकरियों की तरह कुवारी कन्याएँ बेची जाती हैं । दहेज प्रथा ने कितनी स्त्रियों की जान ले ली है । कितनी महिलाएँ जिन्दा जलाई जाती हैं । कितनी महिलाओं को तलाक दे दिया जाता है ।

वकील वकालत में धन लूटता है, न्यायाधीश धन के ममत्व में अन्याय की ओर चुकादा देता है । डोनेशन मिलेगा तो बच्चे को एडमिशन मिलेगा । मरीज मरता है या जिन्दा रहता है डॉक्टर को क्या ? वह तो ऑपरेशन करेगा और इच्छानुसार फीस लेगा । रोग का डाइग्नोसिस करवाने के लिए दस स्थानों में घुमाते हैं, रोग का निदान होवे या ना होवे हजारों रुपये लूटे जाते हैं ।

कई भक्त मंदिरों में दान देते हैं तो कोई भक्त दिये हुए दान को लूट लेता है । देवी, देवता और भगवान की प्रतिमाओं पर लगे हुए वस्त्राभूषण भी लूटे जाते हैं, बेचे जाते हैं और विनष्ट किये जाते हैं । दो नम्बर का व्यापार होता है, रेड पड़ती है, स्मगलिंग, ब्लेकमेल होता है । उनके पीछे धन का लोभ ही है ।

सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो परिग्रह या संग्रह वृत्ति एक प्रकार का द्वंद ही तो है । द्वंद से कभी सृजन होता है तो कभी विनाश, कभी पहाड़ बनते हैं तो कभी खाई । संग्रह के साथ लूट, चोरी और डकैती, वैभव के साथ

हीनता, गरीबी और निराशा जुड़ी हुई होती है । इसी द्वंद से कर्म शृंखला की सीमाएँ जन्म और मृत्यु से जुड़ी हुई हैं ।

हमने जिह्वा के अनुपयोग को मौन मान लिया । प्रजनन इन्द्रिय के अनुपयोग अर्थात् संभोग से दूर रहने को ब्रह्मचर्य व्रत मान लिया । युद्ध की अनुपस्थिति को शान्ति मान लिया, रोग की अनुपस्थिति को आरोग्य-निरोगी काया मान लिया किन्तु इन सब प्रकार की वृत्तियों की आग भीतर जल रही है उसे शान्त करने का उपाय कभी नहीं सोचा ।

प्रिय आत्म स्वरूप अनु !

उठो ! सावधान हो जाओ । देखो धन की तृष्णा से दुःख, संतोष से सुख और त्याग से आनन्द की अनुभूति होती है । संतोष ही जिसका धन है उसे पदार्थों को पाने की आशा, अपेक्षा और अभिलाषा नहीं रहती । तृष्णा से इच्छाओं की उत्पत्ति, भोग से इच्छाओं की पूर्ति और यथार्थ ज्ञान से इच्छाओं की निवृत्ति होती है । सम्पत्ति का अभाव दुःख का मूल है, सम्पत्ति की पूर्ति सुख का मूल है और सम्पत्ति का संतोष आनन्द का मूल है । धन के उपभोग से धन घटता है और धन के सदुपयोग से धन वर्धमान होता है । मोह ममता से अपने को ऊपर उठालो । स्वप्न निद्रा में आता है, जागृति में नहीं । संसार की मूर्च्छा, भोग, आसक्ति और राग ही तो स्वप्न है, इस स्वप्न से मुक्त होना ही जागृति है ।

देखो दूर-दूर से कोई चीखता है, कोई विलखता है, कहीं गोलियों की आवाज आ रही है, कहीं मारो काटो की आवाज सुनाई दे रही है । कोई तड़प रहा है, कोई भूखा प्यासा रो रहा है, न पलभर की शान्ति है, न आँसू के सिवा और कोई काम है । उत्तेजित वृत्तियों की आग में वह जल रहा है, संक्लेश और वैर के रस्से से वह बँध रहा है ।

कहीं दुष्काल है एक रोटी भी नसीब नहीं, कहीं पानी नहीं, कहीं बाढ़ में सारा ही बहा जा रहा है । कहीं भूकम्प में समाप्त हो रहा है । कहीं नींद नहीं आती है तो कहीं मच्छरों की भीड़ है, कहीं गर्मी से पंछी गिर कर मरे जा रहे हैं । कहीं सर्दी अधिक है पर तन पर वस्त्र नहीं, कहीं शरीर में रोग है पर निदान का उपाय नहीं । इसी का नाम संसार है ।

दुःख और पाप की दीवारों को तोड़ दें । समता है तो निर्धन भी सुखी

है और ममता है तो वही आदमी धन से दुःखी है । सुख और दुःख दोनों धन की परछाई हैं जो मानव के आगे और पीछे प्रतिबिम्बित होते रहते हैं । दो चार लोग, दो चार आँसू, दो चार दिन बहायेंगे और पुनः तुझे भूल जायेंगे । कौन किसको याद करता है । जहाँ मात्र स्वार्थ है परमार्थ नहीं, लालसा है धर्म नहीं, संसार है सार नहीं । वहाँ अल्प या बहुत, सूक्ष्म या स्थूल, सचित्त या अचित्त पदार्थों के प्रति मूर्च्छा है । अतः वे ही परिग्रही होते हैं ।

चिन्तन

१. भारतीय संविधान की नींव धर्म संस्कृति पर खड़ी है किन्तु उसकी दीवारें अधर्म की ईंटों से चुनी हैं ।
२. जमीन, जायदाद, सत्ता, सम्पत्ति और अधिकार के मोह में युग-युग से युद्ध होता आया है और होता रहेगा ।
३. पंजाबी को पंजाब की, बंगाली को बंगाल की, गुजराती को गुजरात की और मराठा को महाराष्ट्र की मालिकी चाहिए ।
४. व्यभिचार, भ्रष्टाचार, दुराचार, व्यसन, फैशन, विलास और आक्रमण के पीछे धन सम्पत्ति का ही हाथ है । उसने कितने को तबाह किया ।
५. आतंक, फायरिंग और बम्बबारी से भयभीत होने पर भी 'मारो काटो जलाओ पर अधिकार को न छोड़ो' का स्वर है ।

सम्पत्ति, संतति, सत्ता और सुन्दरी
चारों की प्रियता असत का संयोग
और सत का वियोग कराती है ।

⌘
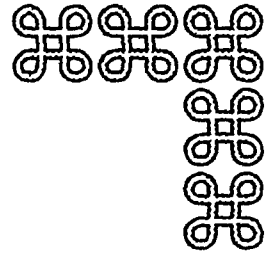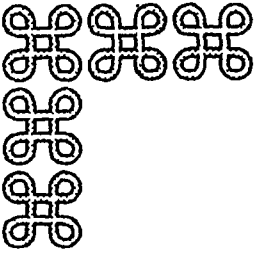
१३. "सत्ता कामेहिं माणवा । अवलेण वहं गच्छंति, इति बाले पगल्भइ । एते रोगे वहूणच्चा, आउरा परितावए ।"

अर्थ—कामनाओं में आसक्त मानव, जीवन की आशंसा के लिए, निःसार और क्षण-भंगुर शरीर के लिए, जीवों के वध की इच्छा करता है । रोगों की वेदना असह्य होने से चिकित्सा हेतु प्राणियों को क्लेश देता हुआ परिताप देता है ।
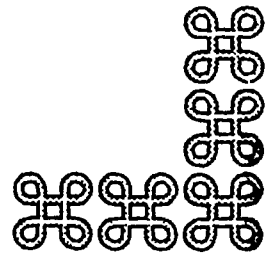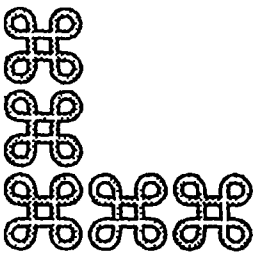
युग बदला या हम

१४. यंत्र युग का मानव अमर्यादित भोगों का शिकारी बन चुका है, अभावों से ग्रसित होने से जीवन हार चुका है, और नैतिक नियंत्रण खो चुका है। फिर भी आशावादी युग किसी विशेष ख्याल में बहा जा रहा है क्या इस अंधेरे में कोई उजाला नजर आता है जिससे युग बदल जाय ?

प्रिय..........

युग को बदलने वाले हम कौन ? युग तो अपने आप समय के अनुसार बदल जायेगा। देखते-देखते तेरे ही समय ने कितने रंग बदल दिये। प्राचीन युग में इतने साधन उपलब्ध नहीं थे जितने आज हैं। ट्रेन, प्लेन, बस, कार, लिफ्ट, पंखे, कूलर, ए.सी., हीटर, गैस, टी.वी., वी.सी.आर. जो भी यंत्र उपलब्ध हैं सारे ही आधुनिक युग की देन हैं।

साधन की उपलब्धि और उपयोग होना एक बात है और साधन का उपभोग होना दूसरी बात है। जब उपयोग के स्थान पर उपभोग का साम्राज्य स्थापित होता है तब साधन साधक मिटकर बाधक के रूप में परिवर्तित हो जाता है। अतः अमर्यादित भोगों में नैतिक नियंत्रण की आशा रखना कोरी कपोल कल्पना है। जहाँ भोग है वहाँ तनाव है ही और जहाँ तनाव ग्रस्त जीवन है वहाँ दुःख अवश्य है, फलतः दुःख को जन्म देने वाले हमारे भोग ही होते हैं। बाह्य दुःखों की अपेक्षा भीतर के दुःख भयंकर होते हैं, जैसे—धनाढ्य दुःखी हैं, अतृप्त वासना से। कामी दुःखी हैं अतृप्त कामना से, सत्ताधीश दुःखी हैं पद वासना से, अतृप्त वासना की पूर्ति न होने से भीतर की आग सुखी के सुख को जला देती है। आज मानव मान बैठता है पंच सितारा होटलों, क्लबों, कैबरे-डांस, जैसे भोग साधन ही सुख के साधन हैं। वह ऐसा भटक जाता है कि उसकी काम-वासना का कहीं भी शमन नहीं होता।

इस युग में धोखेबाज पूजे जाते हैं। स्वार्थी मानव सुख और चैन से आराम करते देखे जाते हैं। दगाबाज ही दावा कर सकते हैं। वकील

लड़ाता है, साथी मरवाता है, स्वार्थी लुटवाता है, चारों ओर तूफानों ने घेरा डाला है ।

स्त्रियों के अंगोपांग का खुलेआम प्रदर्शन होता है । अश्लील पोस्टरों से रोड के विशेष स्थान सजाये जाते हैं । भ्रष्टाचार, अत्याचार, अभक्ष आहार और अशिष्ट व्यवहार का बीजारोपण ही नहीं, बड़े-बड़े वृक्ष बन चुके हैं । जिसका अभाव है, उसी की लालसा है, जो है उसका उपभोग नहीं । इस प्रकार दुःख, हताश, निराश और अभाव को उभारता है, उत्तेजित करता है । फलतः धन की लालसा ने मटन-टेलो इम्पोर्ट करने के व्यापार मार्ग स्वीकार किये हैं । स्वादिष्ट चिकन वाली सैन्डविच के और ताजे सूअर के मीट के गरम-गरम पकौड़े वाले बोर्ड तूने पढ़े हैं । एग्स (अण्डे) वाली आमलेट का प्रचार और प्रसार किया जाता है । बड़े चाव से खाने वालों को पूछो तो सही कि इतने चाव से खाये गये गरम-गरम पकोड़े की यदि वोमिट हो जाय तो पुनः एक उँगलीभर भी वोमिट चाटोगे ?

आज अण्डे, मीट, व्हिस्की आदि का प्रचार टी. वी., रेडियो, फिल्म, पेपर तथा स्कूलों के माध्यम से अधिक हो रहा है, स्कूलों में बच्चों के दिमाग में थोपा जाता है कि अण्डे और मांस में प्रोटीन है, इसे इस्तेमाल करने से शक्ति मिलती है ।

अमरीका में हार्ट एटेक की मात्रा अधिक होने से वैज्ञानिकों ने खोज किया तो रिपोर्ट मिली मीट और अण्डे खाने से बच्चे मोटे-ताजे तो नजर आते हैं पर उनके शरीर में कोलस्ट्रोन अधिक मात्रा में बढ़ जाता है । हारमोन्स और मेम्बरीन सेल को पैदा करने वाला कोलस्ट्रोन ब्लड सरक्युलेट न होने से नाड़ी तंत्र में जमा होता रहता है । फलतः हार्ट ट्रबल हो जाता है । तो सुनो डॉक्टरों की सलाह है कि अण्डे और मीट का आहार करने से शरीर में "रीस्पेटरो" की संख्या कम हो जाती है । लोकेसीटी लियोप्रोटीन (एल. डी. एल.) तत्व कोलस्ट्रोन में मिल जाने से हृदय, किडनी, लिवर आदि के सेल में रीस्पेटर की मात्रा घट जाने से कोलस्ट्रोन बढ़ जाता है और विशेष मात्रा में हार्टफेल का भोगी बनना पड़ता है ।

कोलस्ट्रोन की मात्रा विशेष होने से उच्च रक्तचाप [B. P.] का वह शिकारी बनता है, बी. पी. से तनाव बढ़ता है और तनाव के संग्राम में उतरा हुआ मानव चारों ओर चिन्ताओं से ग्रसित रहता है । सुख, सुविधा और

साधन प्रचुर मात्रा में होने पर भी वह शान्ति के लिए तरसता ही रहेगा । अशान्त मानव को शारीरिक थकान, स्नायविक थकान और मानसिक थकान विशेष होती है । तनावग्रस्त मानव में चिड़चिड़ापन, व्याकुलता, असमाधि तथा द्वंद्वात्मक स्थिति रहती है । ऐसी स्थिति में हीनता, निराशा, अवसाद और विकलता छा जाती है फिर तो बस संघर्ष ही संघर्ष फैल जाता है । कहीं फायरिंग होती है तो कहीं वम-विस्फोट, कहीं प्लेन हाइजैक होता है तो कहीं मालिक का ही किडनैप हो जाता है, ऐसी स्थिति में नैतिकता की बातें तो हवा में ही रह जाती हैं ।

प्रिय आत्म स्वरूप अनु !

युग तो हनुमान की छलांग की तरह प्रतिक्षण वदलता है । हमें युग को नहीं बदलना है, हमें तो अपने आप को वदलना है । संसार की समस्त सम्पत्ति भी किसी को दे दी जाय तो भी उसे अभाव का दुःख वना ही रहेगा तृप्ति नहीं होगी । दृढ़ संकल्प करलो कि हम साधन का उपयोग करेंगे, उपभोग नहीं, रोग का मूल अकन्ट्रोल जिह्वा है, तो दोष का अकन्ट्रोल मन है । जिह्वा पर का कन्ट्रोल सरल है क्योंकि खाने के वाद डकार आते हैं किन्तु मन का कन्ट्रोल मुश्किल है क्योंकि संपत्ति के डकार नहीं आते । मेरी तो आन्तरिक इतनी ही प्रेरणा है कि लाइट है तो प्रकाश है ही, कदम वढ़ाया है तो मंजिल है ही, जीवन को बदला है तो आनन्द है ही ।

आनन्द की स्थिति मानव के भीतर ही उद्भूत होती है । जैसे शीशे पर पड़ी धूल हट जाती है तो प्रतिविम्ब अपने आप साफ नजर आने लगता है । फिर वह धिक्कार का पात्र नहीं बनता । फिर उसे कोई व्यक्ति दुर्वल, पापी या हीन कहकर उसके भीतर हीन भावना नहीं जगाता वरन् उत्साह दिलाता है कि तू स्वयं आनन्द का धाम है । उत्साह के योगदान से प्रशिक्षित दिशा में अविछिन्न गति से प्रवाहित होने की शक्ति प्राप्त होती है । इस भौतिक जगत के सभी क्रिया-कलाप करते हुए भी तुझे चुपचाप आनन्दपूर्वक उन प्रक्रियाओं को देखते रहना है । यही तेरी वास्तविक अवस्था है । जव व्यक्ति के अन्दर कर्त्ता भाव चला जाता है और निमित्त भाव रह जाता है तव वह हर प्रवृत्ति करने पर भी प्रवृत्ति से परे रहता है । इस स्थिति में आया हुआ साधक सहज ही इस विराट संसार में अपनी नगण्यता समझ लेता है और अपने कर्त्तव्य को निभाता रहता है । उसे सुख-दुःख का प्रभाव

प्रभावित नहीं करता क्योंकि वह उस हद तक पहुँच चुका है कि मैं उस आनन्दघन सच्चिदानन्द स्वरूप हूँ । जो भी करता हूँ वह मेरे लिए सारा क्रिया-कलाप एक नाटक में पात्र तुल्य है । अपने आपको प्रदत्त भूमिका का निर्वाह मात्र करके अलग हो जाना ही कर्त्तव्य शेष है ।

जैसे कोई बलशाली और सुदृढ़ युवक किसी ऊँची पर्वत की चोटी पर कभी इस मार्ग से तो कभी उस मार्ग से चढ़ने का हौसला व दमखम रखे तो अवश्य वह चोटी तक पहुँच सकता है और उसका आनन्द ले सकता है ।

घायल पंछी को देखकर या खून निकलते हुए मानव को देखकर हृदय करुणा से भर जाता है किन्तु करुणा इतनी सीमित नहीं है वैज्ञानिक स्तालिन ने कहा है कि मार्ग पर अकस्मात कोई मानव की मृत्यु ट्रेजेडी कही जाती है और युद्ध में हजारों मानवों की मृत्यु "स्टेटिस्टिक्स" कही जाती है अतः युद्ध ही नहीं युद्ध को जन्म देने वाले भौतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक बल का सामना करना होगा । अमर्यादित परिग्रह, सूक्ष्म वैरभाव, जोमयुक्त जातिवाद, निर्दयता और शोषणता कभी न कभी युद्ध को जन्म देगी ही इससे पूर्व हम संभल जायँ तो अच्छा है । जैसे दो टीम के द्वारा खेली जाने वाली क्रिकेट मैच में रन, विकेट और बॉलिंग का विश्लेषण किया जाता है वैसे ही दो देश के बीच होने वाले युद्ध की चर्चा कितनी जानमाल की हानि हुई, कितने विमान और टेंकों का विनाश हुआ । इसका गौरव होता है ।

चिन्तन

१. प्रसन्नता प्रकृति की देन है उसे विकृत कभी नहीं बनाना ।
२. विषय-राग तब तक जिन्दे हैं जब तक प्राणी अपने आप को धोखा देता है ।
३. पदार्थो का अभाव होना इतना खतरनाक नहीं जितना अभाव का अभाव खटकना खतरनाक है ।
४. दुःखी का दुःख जिन्दा है क्योंकि उसकी निगाह में सुखियों के स्वप्न छाये हैं ।
५. सच्चाई के लिए सफर की नहीं समत्व की आवश्यकता है ।

धर्म कवच से अपने और पर
के अधिकार सुरक्षित रहते हैं ।
अतः अधिकार का अपहरण
करना घोर पाप है ।
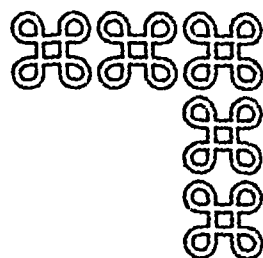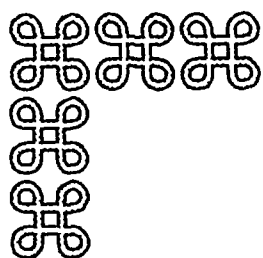
१४. "तुमंसि नाम सच्चेव जं "हंतव्वं" ति मन्नसि,
तुमंसि नाम सच्चेव जं अज्ञावेयव्वं ति मन्नसि,
तुमंसि नाम सच्चेव जं परितावेयव्वं ति मन्नसि,
तुमंसि नाम सच्चेव जं परिघेतव्वं ति मन्नसि,
तुमंसि नाम सच्चेव जं उद्दवेयव्वं ति मन्नसि"

अर्थात्

जिसे तू हनन योग्य मानता है वह तू ही है,
जिसे तू आज्ञा में रखना चाहता है वह तू ही है,
जिसे तू परिताप देने योग्य मानता है वह तू ही है,
जिसे तू दास बनाने योग्य मानता है वह तू ही है,
जिसे तू मारने योग्य मानता है वह तू ही है ।
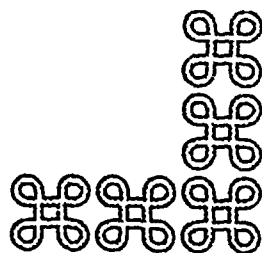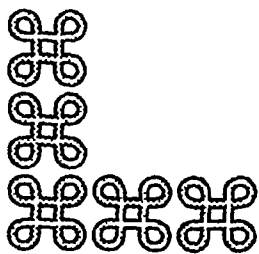
विकास या विनाश

१५. अशान्ति, भय और तनावग्रस्त जीवन में कौन किसका सहारा वन सकता है । प्रकृति भी रूठ जाती है । अनर्थ ही अनर्थ नजर आता है अतः जीवन को सार्थक वनाने का श्रेष्ठतम उपाय कौन-सा होता है ?

प्रिय..........

जीवन में अनर्थों के बम्व फूटने पर ही पता चलता है कि यह अनर्थ है अन्यथा सारे भौतिक आकर्षण सार्थक ही प्रतीत होते हैं । क्योंकि आज का मानव खाने-पीने की लालसा में भक्षाभक्ष को भूल गया । काम भोगों की लालसा में सदाचार को भूल गया । धन-दौलत की लालसा में अपने आदर्शों को भूल गया और स्वार्थ की लालसा में अपने आपको भूल गया । एतदर्थ अनर्थों ने हिंसात्मक खून खराबी की बागडोर अपने हाथों में ली । विषैले शव्दों के गोलों ने कोर्ट का स्थान पसन्द किया । लाखों रुपयों की हानि कोर्ट के लिए बरदास्त है पर भाई के लिए नहीं । भाग्यहीन मानवों की वासनात्मक चट्टानें इतनी लम्बी-चौड़ी हो गई हैं कि चारों ओर हत्या ही हत्या सुनाई देती है ।

प्रातःकाल होते ही समाचार पत्रों में आज यहाँ बम्ब विस्फोट हुआ इतने लोग मारे गये । आज यहाँ भूकम्प हुआ और लाखों मानवों की जान-माल की हानि हुई । आज यहाँ बाढ़ आयी और सारे गाँव के गाँव समाप्त हो गये । यहाँ का पुलिया टूट गया । बस अकस्मात्, ट्रेन अकस्मात्, प्लेन अकस्मात् वस जान माल की हानि पढ़ते ही रहो ।

आज एक देश वाणिज्य व्यापार के लिए दूसरे देश से समझौता करता है । एक देश दूसरे देश का संहार कैसे किया जाय यही द्वंदात्मक स्थिति को ही तो सोचता है । एक देश दूसरे देश से मिलाना भी चाहता है और लड़ाना भी चाहता है इसके पीछे मानव संहार ही नहीं विश्वयुद्ध की झलक छिपी हुई है ।

युनो, युनेस्को फाओ, व्हु आदि संस्थाओं की सहायता के पीछे अनेक प्रकार की विकास योजनाएँ खोजते रहते हैं और विनाश योजनाएँ जैसे कि

शस्त्र आदि और विकास योजना जैसे वाणिज्य व्यापार सम्बन्धी, खाद्य पदार्थ सम्बन्धी एवं उपभोग के प्रसाधन सम्बन्धी इत्यादि इसका निर्णय समय चाहता है । इन संस्थाओं द्वारा समाज की भलाई का दावा किया जाता है लेकिन ये अपने प्रयत्न में कहाँ तक फलीभूत हो पायी हैं । आज भी संसार में कुपोषण, भुखमरी से बिलखते बच्चे हैं । आतंकवादियों की गोलियों से खून से लथपथ लाशें हैं और उन लाशों पर बिलखते हुए बच्चे व विधवाओं की आहें हैं । हम किस शान्ति को पाने की बात करते हैं । क्या शान्ति के लिए हमें अस्त्र, शस्त्र, बारूद एकत्रित करने की आवश्यकता है ? शान्ति हेतु तो प्यार की एक नजर ही काफी है ।

इराक-कुवैत पर कब्जा करना चाहता है क्यों ? हिन्दू और मुस्लिम ने मंदिर और मस्जिद का विनाश किया क्यों ? अमरीका और रशिया विश्वयुद्ध के लिए शस्त्रबद्ध हैं क्यों ? इसका कारण यह है कि एक देश दूसरे देश पर विजय पाना चाहता है, आग से आग बुझायी नहीं जाती, आग को बुझाने के लिए पानी ही चाहिए । क्रोध से क्रोध शान्त नहीं होता, क्रोध को शान्त करने के लिए प्यार ही चाहिए, हिंसा से हिंसा बढ़ती है, वैर से वैर बढ़ता है, लड़ाई से लड़ाई होती है । इस प्रकार एक देश से दूसरे देश की बरबादी होती है । सत्ता, अधिकार और सम्पत्ति के लिए मानव, मानव का ही खून बहाना चाहता है ।

राजनीति बदल जाने से अपने ही देश में रहकर दूसरे देशों में शासन करने की नीति छा जाती है । जीव हिंसा से भी अधिक घायल संस्कृति की हिंसा हो रही है । यदि इस ओर भी हमारा ध्यान चला जाय तो बहुत बड़ा लाभ होगा ।

भारत को अल्ट्रामॉर्डन बनाना है । इस लालच से अनेक देशों से वाणिज्य व्यवहार बढ़ाया जाता है । सीमेण्ट, लोहा, मत्स्योद्योग, फर्टिलाइजर, फूड पैकेट, हाईब्रीड (अनाज की शंकर जाति) क्रॉस ब्रीडिंग के पशु, एलोपेथि औषधि आदि करोड़ों रुपयों का (आयात-निकास) बढ़ाया गया है । आग बुझाने के बदले आग लगाने का कार्य ही विशेष होता है । क्या आपको पता नहीं । विजयश्री को प्राप्त कर नादिरशाह ने दिल्ली में अपनी शोभायात्रा में सारे संसार में अपना आधिपत्य स्थापित करने के लिए, विश्व प्रशंसा पाने के लिए चार से बारह साल के पच्चीस हजार मासूम बच्चों के मस्तिष्क स्थान-स्थान पर लगाये थे, और अंगुलियाँ काट के उसके बंदिवार लगाये थे ।

चीन में जब पक्ष और विपक्ष में युद्ध हुआ और एक पक्ष पराजित हुआ तव पराजित पक्ष के मृत देह के मांस में से तरह-तरह की मिठाइयाँ वनवाकर खुशियाँ मनाने के लिए पार्टियाँ उड़ायी गई थीं ।

हिटलर ने अपने ही देश के लाखों मानवों की क्रूर हत्या करके वड़ा गौरव प्राप्त किया था ।

चीन के चाउ-एन-लाय ने अपने विरोधी का ही नहीं उसके घर के सभी सदस्यों के टुकड़े-टुकड़े कर सारे घर में फेंक दिया था और खून की नदियाँ बहाई थीं ।

स्टालीनो और मोनो जैसे देश विद्रोहियों ने अमानुषी व्यवहार से स्त्रियों पर बलात्कार करके अत्याचार किये थे । ऐसे अत्याचारों से अनेक राष्ट्र, देश, समाज और जातियाँ बरबाद हो गये हैं । कौन किसका जवाबदार है ?

प्रिय आत्म स्वरूप अनु !

ऐसे अशान्ति, भय और तनावग्रस्त जीवन में कहीं मार खानी पड़ती है तो कहीं गाली गलौच सुननी पड़ती हैं, कहीं मान मिलता है तो कहीं अपमान सहना पड़ता है, कहीं खुशामत करनी पड़ती है तो कहीं गम खाना पड़ता है, कभी आँसू बहाते हैं तो कभी प्रतिशोध की भावना में गुजरना पड़ता है, कभी रोग सताता है तो कभी उपेक्षा, तिरस्कार और धिक्कार मिलता है ।

जीवन में अनुकूल और प्रतिकूल वातावरण की अनगिनत चयनिकाएँ हैं । कोई भी मानव जीवन के प्रभात से जीवन की सन्ध्या तक एक रूप नहीं रहता । अपनी विस्मृति के क्षण दुर्घटना के क्षण होते हैं । मानवीय जीवन में जितनी दुर्घटनाएँ घटित होती हैं वे परिस्थिति का असंतुलन होने से होती हैं । घटित घटना का प्रभाव बहुत बड़ा आवर्त है । उसमें फँसने वाली कोई भी नौका हमें किनारे तक नहीं पहुँचायेगी, विषमता से व्यथित मानस को वर्षा की एक फुहार क्या कर सकती है ।

अभी भी यदि देश संभल जाय; प्राणी, मानव, राष्ट्र और संस्कृति की हिंसा से अपनी सुरक्षा करले तो देश में अशान्ति शान्ति की दूरी, भेद और भिन्नता मिट जाय ।

मानव स्वतन्त्र है, स्वाधीनता किसी वस्तु, अवस्था, परिस्थिति आदि पर आश्रित नहीं है अतः स्वाधीनता की जागृति ही वास्तव में धर्म है । जीवन को सार्थक बनाने के लिए श्रेष्ठतम उपाय है, कठोरता के स्थान पर कोमलता,

तिरस्कार के स्थान पर प्यार और संक्लेश (आक्रोश) के स्थान पर करुणा बरसती रहे । सारा संसार अपने लिए प्यार की श्वास लेगा, कम से कम उपकार करने वालों के प्रति तो हम उपकार करें उनके सहायक बनकर उनको तो दिल में स्थान दें, आवश्यकता है कि अपकार करने वालों का भी हम उपकार करें किन्तु यदि ऐसा नहीं होता तो कम से कम उपकार करने वालों का तो अपकार न करें । आज से ही, अभी से ही उठो ! सावधान हो जाओ और पूर्व गलती को स्वीकार करलो । भीतर से प्यार के प्रयोग को गति मिलेगी परिणाम मिलेगा ही मिलेगा निःसन्देह विवेक से सामर्थ्य, योग से अमरत्व और प्रेम से अनन्त रस की उपलब्धि होगी । इस विषय पर चिन्तन करना आवश्यक है ।

चिन्तन

१. जन्म और मृत्यु दोनों परिवर्तनशील जीवन की दो अवस्थाएँ हैं ।

२. आसक्ति का नाश विरक्ति की जन्म-स्थली है और विरक्ति का विकास आत्मानुभूति का प्रादुर्भाव है ।

३. अशान्ति, भय और तनावग्रस्त जीवन नीरसता, हीनता और पराधीनता की पीड़ा भोगता है ।

४. स्वाधीनता की उत्कृष्ट साधना साधक को निर्मलता, निष्कामता और निर्विकारता में ले जाती है ।

५. मन बुद्धि में, बुद्धि वाणी में और वाणी इन्द्रियों में विलीन होने से ही व्यक्त अव्यक्त की अभिव्यक्ति होती है ।

अन्तर

१. जिज्ञासु—प्रथम जानता है फिर मानता है

२. भक्त—प्रथम मानता है फिर जानता है

३. साधक—प्रथम करता है फिर जानता है और मानता है ।

⌘

५

संवेदनात्मक अनुभव और संवेगों की उत्तेजना का नियंत्रण

- वासना का विस्तार
  साधना में स्खलना
  आक्रमण और शमन
  प्रयोग और परिणाम
  गर्भ के बच्चों पर अत्याचार
- मोह की सघनता से आवृत्त
  अकृत कार्य में संलग्न
  अमर्यादित साधन
  विजय का सत्यानाश
  राग के दामन में छिपी साधना
- घर-घर में आतंक
  बच्चों पर आक्रमण
  हीन भावों में ग्रसित
  तासीर बदलो
  भोगोपभोग की फलश्रुति

⌘
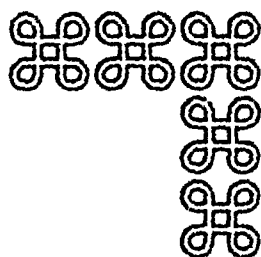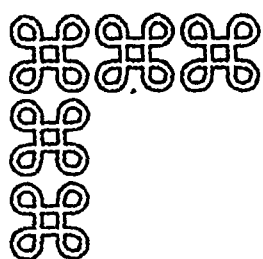
१५. "कामकामी खलु अयं पुरिसे, से सोयति जूरति तिप्पति पिड्डति परितप्पति ।"

अर्थ—कामी पुरुष काम भोगों की कामना ही नहीं करता किन्तु शोक करता है, शरीर को क्षीण करता है, आँखों से आँसू बहाता है और पीड़ा तथा परिताप का अनुभव करता है ।
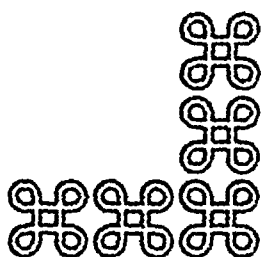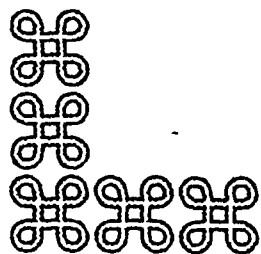
पानी में आग

१६. वासना के विषैले बीज आज वटवृक्ष बन गये हैं । इन वृक्षों ने संस्कृति के मूल्यांकन का ही नाश किया है; दसों दिशा में आग लगी है । पानी ने पेट्रोल का स्थान ग्रहण किया है; कौन आग बुझायेगा ?

प्रिय..........

काम का जन्म अविवेक और वासनात्मक वृत्ति से होता है । काम की पुष्टि आकर्षित पदार्थ-साधनों से होती है और काम का स्थायित्व अहं से होता है । अपने को देह मानना और देह को अपना मानना अविवेक है । अविवेक से वासना की उत्पत्ति होती है और वासनाओं से अहं फलित होता है ।

इतना तो तुझे भी पता है कि युग बदल गये, इतिहास पलट गये, काल ने करवट बदल ली, पर कामांधजन वासना के कारागृह से बाहर नहीं निकल पाये । स्त्री के पीछे तो राम और रावण का युद्ध हुआ था । स्त्री के लिए ही शिशुपाल का वध हुआ था । श्रीकृष्ण ने रुक्मणी का हरण किया था । महर्षि व्यास जैसे योगी भी एक बार तो मेनका पर मुग्ध हुए थे । तुलसीदास तो रत्नावली में ऐसे पागल हो गये थे कि सर्प को रस्सा समझ बैठे थे ।

वर्तमान युग में "फाइव-स्टार" होटलों में घूमने वालों की हालत देखो, नोनवेज-काउन्टर पर ही डेरा जमाते हैं । बीयर, व्हिसकी, एयर टाईट ड्रिंग्स के नशे में ही झूमते हैं । बीभत्स ब्ल्यू फिल्म देखते हैं फिर वासना के गुलाम तो होंगे ही । वासना का गुलाम मानव हिंसात्मक अपराधों को विशेष मात्रा में बार-बार दुहराता रहता है । शिकागो के दो जैव-रासायनिज्ञ विलियम वाल्श और रोनाल्ड आइसाकसन एक अनोखा प्रयोग कर रहे हैं । उन्होंने वासना के गुलाम व्यक्तियों के बाल के नमूने एकत्र कर उनका परीक्षण किया । व्यक्ति हिंसक और अपराधी क्यों बनता है । इन वैज्ञानिकों के प्रयोगों से ज्ञात हुआ कि उग्र स्वभाव के व्यक्तियों में जिंक, कॉपर, कोबाल्ट और मैंगनीज अधिक मात्रा में बढ़ जाते हैं ।

निराशा भरा बचपन, माँ-बाप के साथ मनमुटाव, हिंसक दृश्यों से भरपूर

फिल्में देखना, शस्त्रों का उपयोग करना, शस्त्रों से खेलना इत्यादि प्रकार के मानव भी हिंसात्मक वृत्ति वाले या अपराधियों की गिनती में आते हैं अतः फलस्वरूप सेक्स हार्मोन्स के असन्तुलन का विशेष योगदान होने से मानव को वासना की गुलामी भोगनी पड़ती है ।

वाशिंगटन विश्वविद्यालय के मनोवैज्ञानिक रोवर्ट क्लोनिजर ने १५०० व्यक्तियों पर एक दिलचस्प अध्ययन किया । उसमें महिलाओं की अपेक्षा पुरुष अधिक आक्रामक और उग्र होने से टेस्टोस्टेरोन हारमोन का विशेष मात्रा में रिकार्ड किया गया था । योरोप में एक विशेष परीक्षण ४० व्यक्तियों पर हुआ था उसमें सेस हारमोनों के असंतुलन से ३० प्रतिशत व्यक्तियों में टेस्टोस्टेरोन की मात्रा कम थी । इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि अति हर चीज की हानिकारक होती है ।

टी. वी., वीडियो में रोज फिल्म देखने से विकृति पर कंट्रोल करना असमर्थ-सा हो जाता है । वीभत्स दृश्यों ने छोटे-वड़े किसी को नहीं छोड़ा । एक्सीडेन्टली वह कभी भी किसी के साथ टकरा जाता है ।

कॉलेजों में गर्ल्स के बॉय फ्रेण्ड और बॉय के गर्ल्स फ्रेण्ड होते हैं । अपनी फ्रेण्डशिप में कहीं भी थोड़ी सी रुकावट आ जाय तो शस्त्रों से ही बातें करते हैं । न्यूयार्क और अमरीका यूनिवर्सिटी में लड़कों के पास से बम, राइफल, रिवाल्वर, छुरे जैसे शस्त्र मिले हैं ।

संतति नियमन के साधन तो आज फैशन बन गये हैं । अमेरिका-न्यूयार्क आदि देशों में तो एक मिनट भी ऐसा नहीं मिलेगा जिसमें स्त्री एबोर्सन तथा बलात्कार का किस्सा न बना हो । देहाती कुवारी कन्याएँ, हाई स्कूल और कॉलेज की कन्याएँ इत्यादि स्त्रियों के विषय में सोचा जाय तो लाखों की संख्या में एबोर्सन हो रहे हैं । न्यूयार्क और अमेरिका में सौ में से नब्बे परसेन्ट । इंग्लैण्ड और केनेडा में सौ में से सत्तर परसेन्ट । फ्राँस और यूरोप में पचास परसेन्ट बच्चियाँ एबोर्सन से घायल हैं ।

अपने भोग सुख के लिए बच्चे बाधक हैं ऐसा सोचकर या दो-तीन साल के पश्चात् बच्चा चाहिए ऐसे जवानों के लिए एबोर्सन केश सहज बन जाते हैं । वे अपने भोग सुख के लिए अपनी ही संतान का खून करने को तैयार हो जाते हैं ।

गायनेकोलोजीस्ट डॉक्टरों की मीटिंगों में ऐसे रिपोर्ट बनाये गये हैं कि डेढ़ महीने तक गर्भ के बच्चे में जीव नहीं होता है । अगर गर्भ का जीव बची है तो अनेक स्त्रियाँ एबोर्सन के लिए तैयार हो जाती हैं ।

'द सायलन्ट स्कीम' नाम की फिल्म जो अल्ट्रासाउण्ड टेकनिक से निर्मित हुई है, उसमें शस्त्रों द्वारा उस बच्चे को कैसे बुरी तरह काटा जाता है और उस जीव को कैसी संवेदनाएँ होती हैं यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है । गर्भपात से होने वाला प्रत्याघात क्या स्वरूप लाता है इत्यादि प्रक्रियाओं को देखने पर भी अपने सुख सुविधा और यौवन का आनन्द मनाने वाले मानव ऐसी क्रूर हत्या से बच नहीं सकता । अमेरिका, न्यूयार्क जैसे देशों में एबोर्सन के विषय में तरह-तरह के साहित्यों का निर्माण हुआ है । अनेक स्थानों पर संस्थाएँ स्थापित कीं गई हैं । स्थान-स्थान पर ऐसे क्लीनिकों की स्थापना भी करने में आयी हैं । जिससे हो सके उतने अधिक संख्या में एबोर्सन हो सकें ।

अमेरिका सुप्रीम कोर्ट के केस में इतनी हद तक रिपोर्ट मिलते हैं कि—टेकसासना एन्टी एबोर्सन लोझ अलीगल है ऐसी घोषणा करके एबोर्सन होना ही चाहिए ऐसा प्रचार-प्रसार करते हैं ।

इंग्लैण्ड में तो "डीप इन टू एबोर्सन" इस विषय पर आर्टिकल्स भी निकलते हैं ।

इस प्रकार आज सारे विश्व में अब जों भी संख्या में एबोर्सन होते हैं इसका मूल उद्देश्य वासनात्मक कामना पूर्ति ही है ।

प्रिय आत्म स्वरूप अनु !

वासना का वायरस इतना खतरनाक है जो प्राणी मात्र को घायल ही नहीं विनाश का निमन्त्रण देता है । अतः भयानक वासना के भस्म रोग से मुक्त हो जाओ ।

भूखे, निर्धन या बेकार मानव को तो भोजन का ही सवाल है किन्तु धन, सत्ता और सम्पत्ति के मालिक को तो भोग वासना सताती है । भोजन की भूख से भी अनेक गुना अधिक भोग-वासना की भूख होती है । बाह्य सौन्दर्य का आकर्षण हमें अवश्य है किन्तु भीतर जरा झाँक के देखो तो खून और हड्डी से भरा मांसपेशियों का पिण्ड कितना बदसूरत होता है ।

आज हमारे सामने एक बहुत बड़ी समस्या है इस भौतिक युग के वातावरण

की । इस वातावरण में पले हुए बच्चे, बूढ़े, मैरिड, अनमैरिड सारे ही टी.वी., वी.सी.आर. में एक साथ बैठकर फिल्म देखते हैं । उसका प्रभाव उम्र के अनुसार ही होगा किन्तु बच्चों में त्वरित गति से उसका प्रभाव रूपान्तरित होता है । ऐसे वातावरण द्वारा प्राप्त तथा फलस्वरूप होने वाले दुष्परिणामों द्वारा मानवीय मूलभूत आयामों पर जो चोट पहुँची है उसे कौन नहीं जानता है । एक देश का प्रदूषण दूसरे देशों को भी किसी न किसी हद तक प्रभावित किये बगैर नहीं छोड़ता है ।

जिसकी कामुकता भीतर से अत्यधिक उत्तेजित होती है वह कई वार रोग ग्रस्त हो जाता है और स्वयं में ही वह हीन-ग्रन्थि से पीड़ित होने लगता हैं । आपको अपने जीवन की ओर दृष्टिपात करना है । आप कभी भी वासनात्मक जीवन से घायल न बनो, ऐसा ध्यान रखना है । विषयुक्त लोहे के शस्त्र से भी अधिक तीक्ष्ण कामोत्तेजक वासना के शस्त्र होते हैं । ऐसे शस्त्रों का घाव होने से पूर्व ही सावधान हो जाओ । शरीर में रोग आने से पूर्व ही जागृत हो जाओ । वायरस से वचने के लिए हम कितने सावधान होते हैं । चारों ओर रेड पड़ती है तो हम कितने सावधान रहते हैं । बम्ब विस्फोट होते हैं तो हम कितने सावधान होते हैं । अच्छा तो आज से ही आप सावधान हो जाओ । समय आपका जरूर साथ देगा । जरा आइने में खुद को देखो और सोचो कि वक्त कितनी तेजी से गुजर रहा है, अपनी अतीत की स्मृति में खो जाओ और अपनी पिछली जिन्दगी के कुछ अच्छे-बुरे हालात को याद करो, आपके समक्ष बीते हुए दिन एक चित्र के रूप में सामने आते जाते रहेंगे ।

चिन्तन

१. उत्तेजित वासना का बम्ब आक्रमण करके ही रहेगा, अतः सावधान हो जाओ ।

२. वासनात्मक सुख का त्याग दुःख का विराम है, और शान्ति का धाम है ।

३. वासनात्मक वृत्ति प्राणी मात्र में छायी हुई है, वह तो त्याग से ही हटाई जाती है ।

४. वासनात्मक दुःख अनुभव जन्य दुःख है तथापि भोगी उससे विरक्त नहीं हो पाता ।

५. विषयों का राग अंकित होने पर उसे भोगना पड़ता है, फिर भी अनासक्त भाव आवश्यक है ।

केमरे के फोटो में और एक्स-रे के फोटो में जितना अन्तर है उतना ही अन्तर भोग और योग की वृत्ति और प्रवृत्ति में है ।

⌘
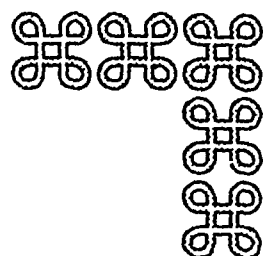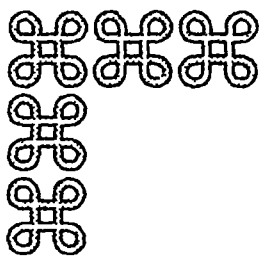
१६. "कूराणि कम्माणि वाले पकुव्वमाणे,
तेण दुक्खेण मूढे विप्परिया सुवेइ ।"

अर्थ—मानव कामना पूर्ति के लिए क्रूर कर्म करता हुआ दुःख को उपार्जन करता है, चाहता है सुख और पाता है बदले में दुःख ।
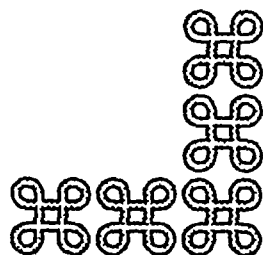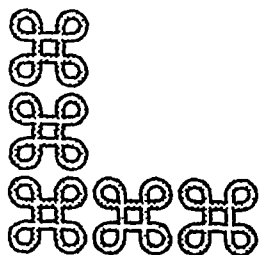
भीतर भी शस्त्र

१७. भोगेच्छा और कामेच्छा अन्तर में चुभने वाला शस्त्र है, क्या वाहर के शस्त्र में और अन्तर के शस्त्र में कोई अन्तर है । वाहर के शस्त्र से युद्ध होते देखे हैं क्या भीतर के शस्त्र से भी युद्ध होते हैं ?

प्रिय.........

मोह की सघनता से आवृत मानव आशा और तृष्णा की भोगेच्छा पूर्ण नहीं कर पाता है । इसलिए लूट, चोरी, उपद्रव आदि प्रवृत्तियों में वह प्रवृत्त रहता है जो आज तक किसी ने नहीं किया ऐसा अहं होने से अकृत कार्य में संलग्न रहता है । प्रतिदिन लाखों पशुओं की हत्या कत्लखाने में हो रही हैं । लाखों टन मछलियाँ पैक करके विदेश निकास के लिए भेजी जा रही हैं । संख्यातीत अण्डों के पोल्टीफार्म का व्यापार हो रहा है । शराव की बोतलें विना रोक थाम उधेली जा रहीं हैं । युवा और युवती जो भुखमरी के कारण मरे जा रहे हैं वे, जो ग्रामीण जीवन से त्रसित हो चुके हैं वे, ऐसे जवान भी आज ड्रग्स, ड्रींक्स आदि का उपभोग करने में मजा मानता है ।

संतति नियमन की एडवेटाइज एवं विविध साधनों का उपार्जन व्यापक मात्रा में हो रहा है । अतः परिणामस्वरूप आज का वच्चा भ्रष्टाचारी, निर्वल और निर्वीय (सौन्दर्य विहीन) पैदा हो रहा है । व्यभिचार, विलास, व्यसन, फैशन आदि चरमसीमा तक पहुँच गया है । वृक्ष के पत्ते तोड़े जाते हैं फिर भी वृक्ष सलामत रहता है किन्तु मूल ही नष्ट किया जाता है तो वृक्ष समाप्त होते क्या देर लग सकती है । आज अनेक महिलाओं ने व्यूटीपार्लर सेन्टर खड़े करके अनेक युवाओं को सौन्दर्य में फसाये हैं । अपने सौन्दर्य को समर्पित करके व्यवसाय वसाया है । अनेक स्त्रियाँ कॉल-गर्ल वनी हैं । अनेक वच्चियों का कौमार्य समाप्त हो चुका है, शील प्रेमी नारियों का शील लूटा गया । लज्जावंती नारियों की लज्जा बेची गई । मर्यादा विहीन वस्त्रों ने वेश्या का रूप धारण करवाया । गोपनीय अंगोपांग के फोटो और फिल्में तैयार होने लगीं ।

एवोर्सन की व्यवस्था ने तो आज के युग में सर्वत्र विनाश का वातावरण फैला दिया है । गर्भपात का अधम कार्य न तो मुस्लिम धर्मावलम्वी करते हैं न क्रिश्चियन करते हैं । दोनों धर्मों के धर्म गुरुओं, पोप आदि ने इन साधनों का जोर-शोर से विरोध किया है । रसिया जैसे देशों में भी इस विषय में सख्त विरोध होता है, और वहाँ का जनतंत्र विराट रूप में वर्धमान हो रहा है । जिनको वारह से पन्द्रह वच्चे हों उनके लिए अरवों रुपयों का दान दिया जाता है, सउदी अरेविया, लीविया और इराक से अनेक मुस्लिम प्रजा को सहायता दी जा रही है । जो आज तक किसी ने नहीं किया है । न्याय और नीति का ह्रास हुआ, व्यसन और फैशन का विकास हुआ, स्वार्थांधता की सघन तामसिकता पैदा हो उठी है और आक्रमण के प्रति आक्रमण वढ़ता गया है । अहं जव तक अपना स्थान जमाकर वैठा है, तव तक अकृत कार्य से पूर्ण विराम असंभव ही है ।

१६०४ में रसिया और जापान का युद्ध हुआ था और जिस अणु वम से हिरोशिमा का नाश हुआ था उस अणु वम का शोधक डॉ. चार्ल्स निकोलस था । अमेरिका के शांतिवादी रोवर्ट सिडनी और निकोलस की पत्नी मेरी ने अणु वम का उपयोग न करने हेतु विशेष समझाया था । किन्तु ४० साल का प्रयास निकोलस त्यागने के लिए कतई तैयार नहीं था । फिर तो क्या एक अभागे क्षण ने हिरोशिमा का विनाश कर ही दिया । दूध पीते वच्चे दूध पीते ही रह गये, लाखों और करोड़ों मानव का संहार हुआ वहाँ केवल जलती हुई राख का ढेर शेष था ।

हिटलर तो जर्मन को छोड़कर सम्पूर्ण विश्व का सत्यानाश करना चाहता था, किन्तु जर्मन जापान पर विजय प्राप्त न कर सका हिटलर का अहं टूट गया और संसार का विनाश वच गया ।

हिन्दू और मुस्लिम का युद्ध, भारत और चीन का युद्ध, भारत और पाक का युद्ध, दिव, दमन और गोआ की समस्या, वंगला देश की समस्या, आज पंजाब एवं जम्मू कश्मीर की समस्या प्रत्यक्ष प्रमाण है । रोज अखबारों में बम विस्फोट और फायरिंग में इतने मर गये, इतने घायल हुए का समाचार मिलता ही रहता है । आज एक देश दूसरे देश को लड़ाने में ही आनन्द का अनुभव करता है । रसिया, अमरीका, ब्रिटेन आदि शक्तिशाली देश एक दूसरों के सहयोगी होते हैं और फिर मजे से लड़ते हैं । ईरान, इराक के

साथ अमरीका को लड़ना नहीं था किन्तु बड़ी सत्ता का मालिक तो उसे बनना ही था । कुवैत के अफगानिस्तान, मिश्र आदि पर सत्ता जमाना था, कुवैत के पेट्रोल के कुओं के द्वारा देश आबाद बनाना था । आज इराक इराक के साथ लड़ रहा है, भारत भारत के साथ लड़ रहा है ! (जैसे—हिन्दुस्तान, पाकिस्तान, पंजाब, कश्मीर, बंगलादेश आदि) जर्मनी, जर्मनी के साथ । एक ही जर्मन के चार विभाग हो गये । ऐसे तो लड़ाने वाले अमरीका, फ्रान्स, ब्रिटेन और रसिया ही थे । एक देश दूसरे देश को लड़ाता है और तोड़ता-जोड़ता भी है, सिर्फ अपने स्वार्थ के लिए !

१४ जनवरी, १९८१ को अमेरिका के राष्ट्रप्रधान जिमी कार्टर ने एक भाषण में एक गम्भीर सुझाव दिया था कि इस पृथ्वी पर अणुयुद्ध होगा तो द्वितीय विश्वयुद्ध में जितना विनाश हुआ उतना विनाश प्रति सेकण्ड में होगा । इस प्रकार प्रत्येक सेकण्ड में सेकण्ड वर्ल्ड वार होगा । आज तक के इतिहास में जितने युद्ध हुए और जितने मानव मरे उतने मानव एक ही घण्टे में समाप्त हो जायेंगे ।

जब हिरोशिमा पर प्रथम अणुबम्ब गिरा था तब से मानवजात भय से निरन्तर भयभीत रहते हैं । इस भय से मुक्त होने का मात्र एक ही उपाय है और वह है साधना । साधना के माध्यम से ही हिंसा का स्थान अहिंसा ग्रहण कर सकती है । क्रोध का स्थान अक्रोध ग्रहण कर सकता है और बाह्यबल का स्थान आत्मबल ले सकता है । एक स्थिति में कष्ट को सहर्ष स्वीकारा जाता है और दूसरी स्थिति में कष्ट के सामने पराजय स्वीकारा जाता है । अतः भोग से मुक्त होकर योग की दिशा में चरण बढ़ाओ भीतर की शक्ति जाग जायेगी और आनन्द प्रगट हो जायेगा ।

प्रिय आत्म स्वरूप अनु !

राग के दामन में छिपा हुआ वह मानव फुटबॉल की तरह दोनों ओर से मार खाता है । बैटिंग करने वाला बैट्समैन बोलर की हर बॉल की ओर ध्यान रखता है । बॉल जैसे टर्न लेता है लेग में, ओन में, या कट में बैट्समैन स्ट्रोक मारता है, यदि बम्पर बॉल आवे तो सिक्सर भी ठोकता है ।

क्रिकेटर और साधक दोनों में साम्य हैं । साधक की साधना एकाग्रता युक्त होती है जैसे प्रतिक्षण बैट्समैन बोलर की ओर ताकता रहता है और बॉल का ध्यान रखता है । वैसे ही साधक अपने भीतर जो विकल्प पैदा

होते हैं उस ओर ध्यान देता है कि कहाँ से विकल्प आते हैं, कहाँ जुड़ जाते हैं, कौनसी घटना में घटित होते हैं, इत्यादि दुःख और सुख प्रत्येक साधक का अपना-अपना होता है ऐसा जानवर इन्द्रिय और मन पर विजय प्राप्त करना है । लाखों साधकों में से कोई एक साधक अप्रमत्त, अनासक्त या समत्व योगी होता है, किन्तु साधना हर साधक के लिए अपेक्षित है । लॉटरी में लाख रुपये का प्रथम प्राइज एक व्यक्ति को ही मिलता है फिर भी करोड़ों आदमी टिकिट तो खरीदते ही हैं । स्कूल में पढ़ने वाले विद्यार्थी में हर क्लास का एक ही बच्चा फर्स्ट डिविजन प्राप्त करता है, किन्तु आशा, अपेक्षा और कामना तो सभी बच्चों में होती है । साधक अपनी साधना से खिन्न नहीं होता किन्तु काम वासना भयंकर है ऐसा सोचता हुआ कषाय पर विजय प्राप्त करे और निन्दा और स्तुति में सम रहे । अन्यथा फुटबॉल की तरह दोनों ओर से पिटाई पड़ेगी । जो आज अनुकूल है, वही हो सकता है कल न भी हो । दोनों स्थिति में सम रहना ही साधना है ।

चिन्तन

१. टैक्सी वालो को, कुली, नौकर, सब्जीवाले को दो रुपये देने हैं तो नहीं देंगे । लेकिन हार्ट स्पेश्यिालिस्ट को दो हजार भी बड़े प्रेम से दे आते हैं ।

२. पत्नी, माँ, भाई सलाह देते हैं हम क्रोध करते हैं । कोर्ट में जज वकील को लाख रुपये भी दे सकते हैं ।

३. सब्जी वाले के यहाँ से दो मिरच उठा लेते हैं, एक दो बेर मुँह में डाल लेते हैं, और कम पैसे में अच्छा माल लेना चाहते हैं ।

४. भय के आवरण में जीना, चिंता का बोझ लिए घूमना, दुश्मनों से भिड़ना, विश्वासघात करना, खतरा है पीछे मंदमति 'मानव मोह में आवृत्त रहता है ।

५. रसास्वाद का कंट्रोल सहज है किन्तु अज्ञानी मानव के लिए सम्पत्ति का कंट्रोल करना दुर्लभ है ।

भोग और हिंसा दोनों एक ही केन्द्र के दो विन्दु हैं; जहाँ भोग है, वहाँ हिंसा है, जहाँ हिंसा है, वहाँ दुःख है ।

⌘
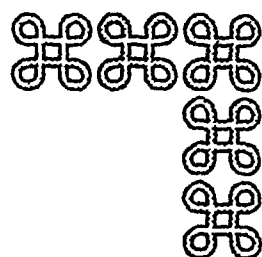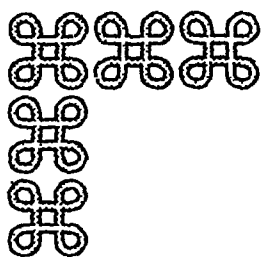
१७. "आयंकदंसी अहियं ति नच्चा"

अर्थ—हिंसा से चारों और "आतंक" छा जाता है, आतंक से उपद्रव, विघ्न, भय, वेदना और अहित होता है।

४०११
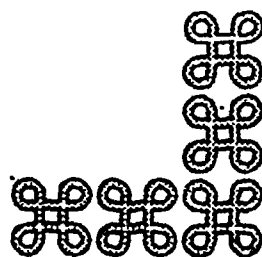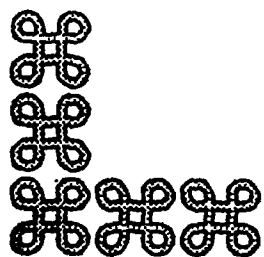
बदनामी क्यों

१८. भ्रष्टाचार तो युगयुगों से होता हैं तो फिर इस युग के भ्रष्टाचार की इतनी बदनामी क्यों ? क्या हम इसमें कोई परिवर्तन ला सकते हैं ?

प्रिय..........

राम, कृष्ण, पाण्डव आदि के समय में रावण, कंस और कौरवों का अत्याचार सुना था । वर्तमान में शीलवती नारियों के शील भ्रष्ट होते हुए देखे हैं । न्याय नीति और प्रामाणिक व्यापारियों की अनीति और अत्याचार होते हुए देखे हैं । योगियों की तेजस्वी साधना को स्खलित होते देखा है । लज्जा का स्रोत बहने वाली कन्या की शर्मीली आँखों में उच्छृंखलता देखी है । यौवन की मस्ती में मस्त बने युवा की वासनात्मक कमजोरियाँ देखी हैं, किन्तु घर-घर में जो आतंक छाया है उसका तांडव नृत्य देखने का सौभाग्य तो इसी युग को मिला है।

आज घर-घर में एबोर्सन की व्यापकता ने "माँ" द्वारा ही अपने मासूम बच्चों की हत्या करवायी है, इससे कौन अनभिज्ञ है । संतति नियमन की व्यापकता ने विविध प्रकार के साधनों का निर्माण किया और स्त्री एवं बच्चों की कायरता बढ़ाने का रास्ता बनाया । कॉलेजों में प्राप्त विधाओं द्वारा होने वाले विकृति जन्य कुसंस्कार की शिक्षा ने क्लब, होटल, पिक्चर, ब्ल्यू साहित्य, ब्ल्यू फिल्म आदि को पल्लवित करने में भरसक सफलता पाई है । तलाक देकर कितनी स्त्रियों का बलिदान दिया जाता है । सुरापान, भक्ष, अभक्ष, मीट, अण्डे, सुगरकेन्द्र, १२० मावा, व्हिस्की, बीयर, मछलियों का आटा पशुओं की चरबी का घी आदि में करोड़ों रुपयों की आय इत्यादि आतंक सम्पूर्ण राष्ट्र में फैला है ।

बलात्कार प्राचीन युग की देन है किन्तु छः सात साल की बच्चियों का बलात्कार, पिता द्वारा पुत्री का, भाई द्वारा बहन का, माँ बेटे का इत्यादि बलात्कार आधुनिक युग में अनेक रूप में बढ़ रहा है । अनिष्ट संयोग के प्रति द्वेष बुद्धि होना खतरा है किन्तु इष्ट संयोग में रागात्मक बुद्धि होना भी खतरा है. क्योंकि डायरेक्ट करन्ट (D.C.) कितना भयावना होता है यह तो

आप जानते हो । यदि वह चिपक गया तो खतम करके ही रहेगा और यदि उसने फेंक दिया तो ऐसा फेंकेगा की हड्डियाँ चूर-चूर हो जायेंगी ।

भोगोपभोग की कामनाओं में भी ऐसा ही करन्ट का प्रवाह विद्यमान होता रहता है । जन्म के वाद मृत्यु और मृत्यु के वाद जन्म, दिन के वाद रात और रात के वाद दिन, आता ही रहता है; कहीं धूप कहीं छाँव, कहीं हँसना कहीं रोना चलता ही रहता है फिर भी सुसुप्त अवस्था प्रवुद्ध नहीं होती । विपयों का दास कामना पूर्ति के अभाव में अतृप्ति की आग में जलता रहता है । परिजन सम्वन्धी या स्वजन सम्वन्धी ममत्व में आसक्त होता हुआ कामनाओं में अँधा रहता है । इस प्रकार कामना की अपूर्ति में या अहं के प्रत्याघात पर हीन भावना में ग्रसित मानव क्रोध में आग ववूला हो जाता है, और अनाचार (दुराचार) कर वैठता है । आसक्त इन्सान शैतान वन जाता है । योगी होने पर भी भोगी बन जाता है । संत होने पर डाकू बन जाता है, वैरागी होने पर भी रागी वन जाता है ।

भोग भोगता मानव यदि इच्छाओं का दमन भी करे तो पुनः उसी भोग का शिकारी हो सकता है । हमें वासनाओं का दमन नहीं करना है, विशोधन करना है । भोग उपभोग की प्रवृत्तियों का रूपान्तरण करना है । जिसके शरीर में मेद वढ़ता है वह तो दूध भी पियेगा घी भी खायेगा तो ही वढ़ेगा ऐसा नहीं पानी पियेगा तो भी वढ़ेगा क्योंकि मेद होने की तासीर है । हमें तो अपने चेतन की तासीर वदलनी है । हमारा स्वयं का तो चाय गरम न मिलने पर, टी.वी. का एरीयल या ऐन्टीना टूटने पर, स्वादिष्ट भोजन न होने पर, आकर्पित पदार्थों की पूर्ति न होने पर, नौकर या मैनेजर के नियंत्रण में न रहने पर तनाव बढ़ जाता है किन्तु खुद के आचरण की ओर हमारा ध्यान कभी नहीं जाता । दूसरों को देखने वाला खुद को कभी नहीं देखता । वह भूल जाता है कि मैं अकेला आया हूँ और अकेला जाने वाला हूँ । न कोई तेरा शरण्य है न तू किसी का शरण्य है । आज का राजा कल का भिखारी हो सकता है । हिटलर लकड़हारा था और हो गया बड़ा अनुशासक; नेपोलियन चित्रकार था और हो गया फ्रान्स का सम्राट । बाली बहुत बड़ा डाकू था और हो गया बहुत बड़ा संत । मानव संहार करके अंगुलियों को काटकर उनकी माला पहनने वाला अंगुलीमाल को मुनि मिले और संहार को छोड़कर साधक बन गये ।

जैसे मच्छरों के लिए डी. डी. टी. का प्रयोग किया जाता है किन्तु **वर्तमान**

के मच्छरों पर उसका कोई प्रभाव नहीं होता है, वे डी. डी. टी. प्रूफ हो गये हैं उसी तरह अनेक मानव भी डी. डी. टी. प्रूफ हो गये हैं । हम सदाचारी हैं ऐसा दावा करने पर भी वे विषयों में मुग्ध होते रहते हैं और अनाचरण का जीवन जीते रहते हैं ।

प्रिय आत्म स्वरूप अनु !

विशुद्ध आचरण ही तो जीवन है । जहाँ आचरण ही नहीं वहाँ सच्चा जीवन और आनन्द कहाँ । इन अनाचार से तो बड़े-बड़े बौद्धिक लोग भी आत्महत्या कर अपनी प्रखर बौद्धिक जीवन-लीला समाप्त कर बैठते हैं । आपसी द्वन्द्व और कलह एक बहुत बड़ी समस्या है । वासना का आवेग आते ही भीतर स्नायविक तरंगें उठती हैं और अनेक प्रकार की उत्तेजना पैदा हो जाती है । जिससे एड्रीनल ग्रंथि स्रवित होने लगती है । उसके कारण न करने जैसा आचरण उससे हो जाता है । जैसे—पंखे से रस्सा बांधकर लटक जाना, गले को कपड़े का फाँसा लगाना, विषैले पदार्थ खाना, किसी शस्त्र का प्रहार करना, किसी मंत्र का प्रयोग करना इत्यादि अनाचार ही तो हैं ।

आवेग की आग तीव्र होती है, अनेक आकांक्षाओं की वह प्यास होती है और ऐसी प्यास बुझती नहीं, जैसे-जैसे वासना भोगी जाती है वैसे-वैसे प्यास और प्रज्वलित होती जाती है । आवेग की यह ग्रन्थि ऐसी स्रवित होती है जो प्यास बुझने के स्थान पर अवरोध करती है । हमारे भीतर जो संस्कार सत्ता का रूप धारण करके बैठे हैं वही अच्छे और बुरे के रूप में स्थायी होते हैं । हमारे बुरे संस्कार को ही वासना कहते हैं । वासना प्रत्यात्मक और अप्रत्यात्मक दोनों स्वरूप में उभरती है । वासना की प्रत्यात्मक उत्तेजना मान सन्मान और मायावी रूप धारण करती है, वह दूसरों को ठगा कैसे जाता है । वंचनात्मक प्रक्रिया से दूसरों को प्रत्याघात कैसे पहुँचाया जाता है उसमें कुशल होता है । माया और प्रपंच से दूसरों के अधिकारों को छीनना, दूसरों की अर्थ व्यवस्था में बाधा डालना या सामाजिक, पारिवारिक या मैत्राचारी में अस्त व्यस्तता करना इत्यादि भ्रष्टाचार ही तो है । इस प्रकार भ्रष्टाचार का वलय व्यापक है । इसमें सारी परिस्थितियाँ पलती रहती हैं । वासना के बीज फलते रहते हैं । जैसी प्रवृत्ति वैसा परिणाम ।

बड़ी गहरी दृष्टि से सोचो बड़ी दीर्घ दृष्टि से देखो । तनाव ग्रस्त मानव भीतर ही भीतर उत्तप्त रहता है । कामना पूर्ति के लिए प्रियजनों की हत्या का दुस्साहस कर बैठता है । अकस्मात आक्रमण मोल लेता है या सर्वनाश

जैसी तीव्र प्रवृत्ति कर बैठता है । वैर की परम्परा ऐसे ही तो होती है । जन्म-जन्म तक भोगने पर भी परम्परा टूटती नहीं अज्ञानवस आत्मा उस परम्परा का संवर्धन करता है । ध्यान रखो जीवन में ऐसी परम्परा की शृंखला कहीं बंध न जाय बस सबसे प्यार ही प्यार करो । वैरी को भी गले लगाओ, अनाचार सदाचार का रूप धारण करेगा । मैं सवका हूँ सव मेरे हैं ऐसी मैत्री भावना को भावन करो, आनन्द ही आनन्द हो जायेगा ।

चिन्तन

१. नाव समुन्दर में है तव तो तैरने का चान्स है किन्तु समुन्दर ही नाव में प्रविष्ट होने लगा फिर तो तैरने के स्थान पर डूवना ही डूवना है ।

२. ड्रायवर जागृत है तो मालिक आराम से सो सकता है । मालिक जागृत है और ड्रायवर सोता है, तो दोनों की जान खतरे में है ।

३. आग लगेगी, डकैती होगी या भूंकप आयेगा ऐसा पता होने पर भी अपना धन बैंक में जमा किया जाता है कितना-विश्वास ।

४. क्रोधी, मायावी, लालची, लड़ाकू है ऐसा पता हैं फिर भी धन के मोह में पुत्रवधू को पसंद करता है, कैसा खतरा ।

५. जहाँ व्यवहार है वहां द्वंद्व है—इस द्वंद्व ने ही व्यक्तिगत और सामाजिक में भेद रेखा खींची है ।

सर्व प्राणियों को स्वरक्षा हेतु नाखून, खाने के लिए दांत, देखने के लिए आँख, सूँघने के लिए नाक, स्वाद के लिए जिह्वा मिली है अतः हिंसा द्वारा इन अंगों को नाश करने का किसी को अधिकार नहीं तथापि हिंसा क्यों ?

६

प्रियता और अप्रियता की अभिव्यक्ति-आहार, भय, निद्रा और अहं

- रसायन तत्वों की सक्रियता
  विटामिन प्रयोग और प्रक्रिया
  दूषित आहार का प्रभाव
  असंतुलित आहार
- भय का भ्रम
  गहरे घाव की पीड़ा
  भय-सीमित-असीम
  राजनैतिक भय
  सामाजिक भय
  धार्मिक भय
  पारिवारिक भय
  भय के कीटाणु से सावधान
  भय विसर्जन का उपाय
- आवेगों का सम्राट अहं
  अहं का परिणाम
  युद्ध की पृष्ठभूमि अहं
  अहं का उपशमन—विवेक
  आवेगों की पहचान
- चुम्बकीय शक्ति
  थकान विसर्जन का उपाय—निद्रा
  रोग विसर्जन का उपाय—निद्रा
  सुप्त-निद्रा
  स्वप्न-निद्रा
  जागृत-निद्रा

⌘
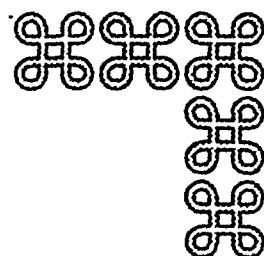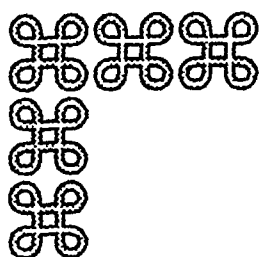
१८. "सव्वामगंधं परिण्णाय, णिरामगंधो परिव्वए ।"

अर्थ—सर्व प्रकार का अशुद्ध भोजन का परित्याग कर शुद्ध भोजी रहता हुआ आहार आदि का संतुलन करने से नियंत्रण और व्यवस्था अपने आप हो जाती है ।
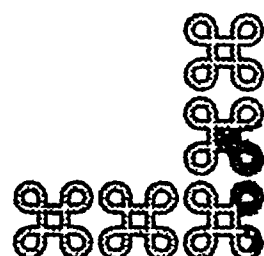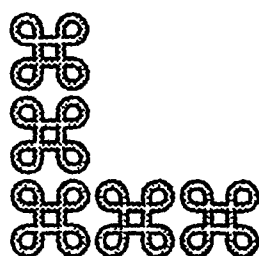
आहार का संतुलन

१६. समूचे शरीर का संचालन, नियंत्रण और व्यवस्था होने पर भी आहार, विचार और विहार में असंतुलन हो जाता है, ऐसा क्यों ?

प्रिय.........

प्राकृतिक विधान के अनुसार शरीर की संरचना एक बहुत बड़ी सुझ-बूझ का विधान है । इस विधान के अनेक स्त्रोत है । हरेक स्त्रोत की ऊर्जा अपने आप में प्रमुख स्थान रखती है । क्योंकि तंत्रों के संचालन के लिए समस्त चेतन शरीर को ऊर्जा की आवश्यकता होती है । कार्वनिक भोज्य पदार्थों के ऑक्सीकरण से विद्युत ऊर्जा निकलती हैं । ऊर्जाओं का उपयोग शरीर के विभिन्न तंत्रों की प्रक्रियाओं का ज्ञान प्राप्त करना है । मानव शरीर और अंगोपांग का उपयोग एक बहुत बड़ा महत्व रखता है ।

हमारे भीतर रही हुई जीवित कोशिकाएँ विभिन्न प्रकार के रसायन तत्वों से सक्रिय रहती हैं । भोजन के तत्व, कार्बोज, वसा, प्रोटीन, पानी, खनिज लवण तथा विटामिन हैं । शारीरिक संपूर्ण प्रवृत्ति, प्राण ऊर्जा या विद्युत ऊर्जा द्वारा होती है । जैसे मस्तिष्क को अपनी क्रिया करने के लिए २० वोल्ट ऊर्जा चाहिए, वैसे ही किडनी को, हृदय को और लिवर को भी अपने-अपने अनुरूप ऊर्जा चाहिए । इसके साथ-साथ पाचन संस्थान में भी विद्युत-ऊर्जा की मात्रा प्रमाण से अधिक उपयोग में रहती है तो ही पाचनतंत्र ठीक ढंग से चलता है । अन्यथा शरीर तंत्र अस्तव्यस्त होने की संभावना रहती है ।

कार्बोज—(Carbohydrates)-C, H, O, के यौगिकों से ऊर्जा प्राप्त होती है । एक ग्राम कार्बोज से ४.२ किलो कैलरी ऊर्जा प्राप्त होती है ।

वसा—(Lipid) में भी C, H, O, के यौगिकों से ही ऊर्जा प्राप्त होती हैं । किन्तु इसमें O, की मात्रा कम होती है । एक ग्राम वसा ९.४ किलो कैलरी ऊर्जा देती हैं ।

प्रोटीन—(Protein) ये C, H, O, N और P के यौगिक से होता है । प्रोटीन की इकाई एमिनो एसिड है । शरीर में प्रोटीन का संश्लेषण तथा

विघटन लगातार होता रहता है । सोडियम, पोटेशियम, क्लोरीन, शक्कर, आयोडीन, मैगनीशियम, फॉस्फोरस तथा लोहा अकार्बनिक तत्व प्राणीज शरीर के लिए आवश्यक खनिज हैं ।

१९१२ में फंक ने सर्वप्रथम विटामिन शब्द का प्रयोग किया था । शरीर में इन विटामिनों की भी आवश्यकता होती हैं । ये सभी तत्व हमारे आहार पर ही आधारित हैं । अतः आहार हितकारी हो, मितकारी हो, पथ्ययुक्त हो और साथ-साथ संतुलित हो सभी प्रकार अपने आप में महत्व रखते हैं । यदि प्राण-ऊर्जा सशक्त है तो अंतःस्रावी ग्रंथियाँ यथासमय विकसित होती रहती हैं । उनका स्राव पूरे शरीर में प्रवाहित होता है, जिससे शरीर तंत्र का नियंत्रण सुचारु रूप से चलता है ।

नाड़ी-तन्त्र का भी शरीर तंत्र के नियंत्रण एवं संयोजन करने में तथा आहार तंत्र का नियंत्रण करने में महत्वपूर्ण योगदान है । डॉक्टर ग्रांट सेल्फीज ने अनेक रोगों का मूल कारण जो शारीरिक हो या मानसिक हो दोषपूर्ण आहार है, ऐसा प्रस्तुत किया है । विटामिन रहित आहार से भी शरीर तंत्र अस्त-व्यस्त हो जाता है ।

डॉक्टर जोसेफ लोबेले ने आहार के असंतुलन से अनिन्द्रा, अतिनिन्द्रा, असंयमित मैथुन आदि दोष पैदा होने से रुग्णावस्था होती है, ऐसा प्रमाणित किया है ।

शरीर शास्त्रियों के अनुसार काम, क्रोध, मद, लोभ, आवेश स्वभाव का चिड़चिड़ापन, विक्षोभ ये शरीर के रोग हैं । शरीर में जब यूरिक एसिड की मात्रा प्रमाण से अधिक हो जाती है और एंजाइम की मात्रा प्रमाण से अधिक घट जाती है तब मानव का स्वभाव बदल जाता हैं । हर खुशी, गम, प्रशंसा, सहानुभूति, निंदा, नाराजगी, निमंत्रण आदि के पीछे भी आहार, विचार और भावों की शक्ति विशेष काम करती है । सुख, दुःख, हर्ष, विषाद, आकर्षण, उत्कर्षण आदि का भाव केवल भावावेग ही नहीं होता उसको जन्म देने वाली ऊर्जा शारीरिक और मानसिक परिस्थिति का रूप भी होती है ।

आहार केवल खाना ही मात्र नहीं है उसकी मुख्यता प्राणवायु भी है । श्वास के साथ प्राण तत्व भीतर जाता है और ऊर्जा के रूप में परिणमन होता है । बोलना, चलना, देखना, इन्द्रिय मन और बुद्धि का क्रियाशील होना इत्यादि हर प्रवृत्तिओं में प्राण ऊर्जा का सातत्य रहता है । संतुलित, दीर्घ

और विशुद्ध श्वास से रक्त कोशिकाओं का प्रमाण बढ़ता है । जो हीमोग्लोवीन से मिलकर ऑक्सी हीमोग्लोविन बनाती हैं । कार्बनिक पदार्थों के जैविक ऑक्सीकरण द्वारा ऊर्जा प्राप्त करने को श्वसन कहते हैं ।

अधिकांश मानव अनियमित आहार करते हैं, स्वादिष्ट भोजन है तो अत्यधिक आहार कर लेते हैं । अस्वादिष्ट आहार है तो कम आहार करते हैं, कभी शुद्ध आहार कर लेते हैं तो कभी विकृत । अतः असंतुलित आहार होने से स्वास्थ्य में भी असंतुलन ही रहता है । आमाशय अपनी शक्ति के अनुरूप ही भोजन की मात्रा स्वीकार करता है क्योंकि असंतुलन आहार से कच्चा आम रह जाता है । आम का संचय होने से, उदर में गैस भरने से अनेक रोगों का शिकार होना पड़ता है ।

अति भोजन निद्रा का भी कारण हैं । शरीर के अस्तित्व के लिए भोजन सर्वाधिक महत्वपूर्ण है किन्तु अति भोजन होने से उसे पचाने के लिए सारे शरीर की ऊर्जा वहाँ खपत हो जाती है इसलिए मस्तिष्क की ऊर्जा पेट में पाचन-तंत्र में चली जाने से निद्रा प्रारंभ हो जाती है । अतः अति आहार निद्रा दोष भी माना जाता है ।

प्रिय आत्म स्वरूप अनु !

आहार शरीर के लिए ही नहीं, हमारे जीवन के लिए, हमारी साधना के लिए भी अत्यधिक उपयुक्त है । मन को आहार के साथ एकाग्र करके केवल आहार करना आहार योग है । जीवन व्यवहार में अनेक प्रवृत्तियां, संपर्क, चर्चा, वार्ता, विचारणा, लेन-देन के संबंध इत्यादि हर स्थान पर खाने पीने का सवाल होता ही है । पारिवारिक, सामाजिक और व्यावहारिक क्षेत्रों में हर स्थान पर कुछ न कुछ ठंडा गरम खाना ही पड़ता है । ऐसे स्थान पर हम न तो एकाग्र हो सकते हैं और न ही साधना कर सकते हैं । अतः ऐसी परिस्थिति में केवल आपको इतना ही स्मरण रखना है कि खाने के पदार्थों के प्रति हम जुड़ न जाय, जोड़ना ही योग है । हम खाना खायेंगे तो टेस्ट तो होगा ही, मन को खबर मिलेगी ही, स्वाद की संवेदना होगी ही । जैसे कहीं कोलाहल होता है तो कान पे आवाज टकरायेंगी ही ! नाक में अच्छी या बुरी स्मेल आयेगी ही, मन उसका अनुभव करता ही है । यह सारी प्रवृत्ति होने पर भी हमें भीतर से भिन्न रहना हैं । जैसे गरम-गरम बादाम का हलवा है, खाने को दिल चाहता है पर डॉक्टर ने मना किया है

कि हेवी डायबिटीस है । यदि खाओगे तो मर जाओगे, क्या हलुवा खा पाओगे ? यदि डायबिटीस नहीं हैं, हलवा खाने को बैठे हो और पुत्र के एक्सिडेन्ट के समाचार मिले तो हलवा स्वादिष्ट लगेगा ? यदि हलवा खाने को बैठे हो और मील में आग लगी है, ऐसा फोन आये तो हलवा कैसा है, उसका जवाव मिल सकता है ?

आपको कड़ाके की भूख लगी हो, खाने की सामग्री आपके साथ हो, लेकिन कोई मानव छुरा लेकर सामने खड़ा है, स्वादिष्ट भोजन होने पर भी, खाने की इच्छा होने पर भी आप खा नहीं पाओगे ! मतलव यह नहीं कि भूख मिट गई है । आपके सामने मृत्यु खड़ी है, टेन्सन वढ़ गया है अतः खा नहीं पा रहे हो, इसका मतलव भूख नहीं है, स्वाद नहीं है, ऐसा नहीं ! जीभ में अभी भी सेन्सेटीविटी है । स्वाद करने की क्षमता है । पर चिंतित मन पदार्थों से जुड़ा हुआ नहीं है उससे परे है, अतः मन अन्यस्थ होने से जैसे खाना वेस्वाद या निरर्थक प्रतीत होता है, वैसे ही हमें हमेशा आहार करना है, पदार्थ और स्वाद के वीच जिह्वा का संवंध है । हमारी भोगेच्छा इस संवंध में रुचिकर वन जाती है । रस में कोई फरक नहीं, जैसे करेले का स्वभाव कडुवा है फिर भी हमें स्वादिष्ट लगता है । किन्तु वादाम का स्वभाव मीठा है, कड़वी वादाम हमें अच्छी नहीं लगती है । अतः स्वाद मन और भाव से जुड़ी हुयी जिह्वा में हैं । पदार्थों में नहीं । वैसे ही विचार और विहार का असंतुलन हमारा संचालन, नियंत्रण और व्यवस्था होने पर भी आनंददायक नहीं रहता हैं । अतः आहार, विचार और विहार का संतुलन ही शरीर का संतुलन है ।

चिन्तन

१. अंतस्रावी ग्रंथियों का मानव की अच्छी-बुरी भावना और संस्कार के साथ गहरा संवंध है ।

२. वुद्धि एक प्राकृतिक यंत्र है जो अपने में वाह्य विवेक तथा विश्लेषण करने की शक्ति प्रदान करती है ।

३. हवा के प्रवाह को वांसुरी के छिद्रों से नियंत्रित किया जाता है वैसे ही मन के प्रवाह को नियंत्रित करो ।

४. शरीर बीमार होता है क्योंकि असंतुलित आहार का विष उसमें जमा हुआ है ।

५. स्थूल शरीर की अपेक्षा सूक्ष्म शरीर, सूक्ष्म शरीर की अपेक्षा मन, और मन की अपेक्षा आत्मा की शक्ति असीम है ।

⌘
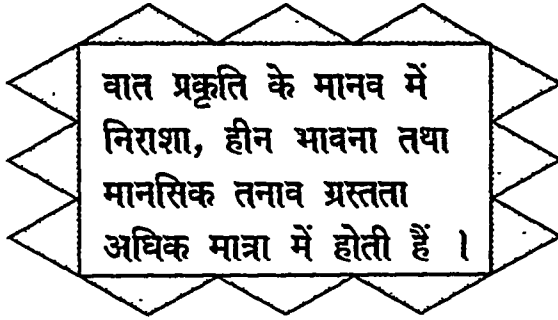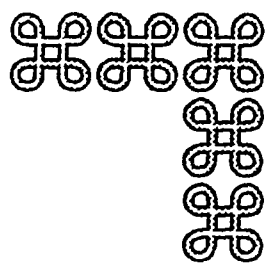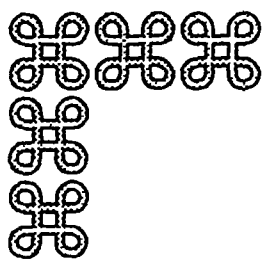
१६. लोगं च आणाए अभिसमेच्चा अकुत्तोभयं

अर्थ—आज्ञा में स्थिति साधक कषाय मुक्ति उपाय को जानकर निर्भय हो जाता है उसे किसी भी प्रकार का भय नहीं होता है ।
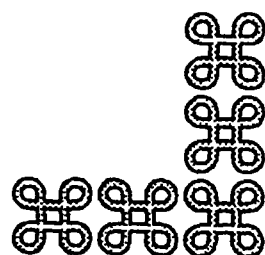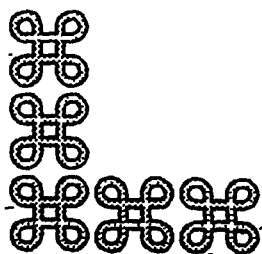
भय का आवरण-खतरा

२०. हमारी चेतना पर जनम-जनम से भय वृत्ति का आवरण है । वड़ी परेशानी है इस भय के दर्द की ! क्या हम इस आवरण से अनावरण हो सकते हैं ?

प्रिय..........

हम भय से मुक्त होने पर भी सबसे अधिक भयभीत भय के भ्रम से होते हैं इसलिए सर्व प्रथम हमें भय के भ्रम को ही तोड़ना है । पर भ्रम को हम समझें तब न ! हम भय से भयभीत होते हैं किन्तु भय के भ्रम से मुक्त नहीं हो पाते हैं, आवश्यकता है सर्व प्रथम भय के भ्रम को जानने की !

हमने तो हमारा सारा जीवन भय को पुष्ट करने में ही व्यतीत किया, यदि उतना समय उसे विसर्जित करने में किया होता पर अफसोस हमने तो उसे सुदृढ़ ही किया अब वह हमारी हमेशा की पीड़ा बन गया । हम हमारे ही घाव को गहरा करते हैं जो हमारे लिए दुःखदायी होता जाता है । हम हमारी ही बीमारी मोल लेते हैं, जो हमारी ही हानि को निमंत्रण देती है । जब तक हमारी नाव इस भय की खूंटी से बंधी है तब तक सफलता का वरण हम कभी नहीं कर सकते ! कहाँ नहीं है इस भय का साम्राज्य ! राजकीय क्षेत्र में, सामाजिक क्षेत्र में, धार्मिक क्षेत्र में, शैक्षणिक क्षेत्र में, बच्चे-बूढ़े, जवान, स्त्री कोई भी क्षेत्र उठाओ सारा संसार भय से, चिन्ता से, दुःख से और पीड़ा से अक्रान्त है ।

राजकीय क्षेत्र का भय हर एक राष्ट्र में छाया हुआ है । एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर अपनी सत्ता और अधिकार पाना चाहता है । इसलिए वह युद्ध छेड़ देता है, खून की नदियाँ बहाता है, बम से धमाके करता है । हमारी फौजें भयभीत हो जाती हैं, हमारी देशभक्ति भयभीत हो जाती है, हमारी नैतिकता डावाँडोल हो जाती है । एक कौम दूसरी कौम से भयभीत हो जाती है । क्योंकि हम भय से जुड़े हुए हैं । सरकार द्वारा हमारे सामान का, हमारे वस्त्रों का, हमारे वाहनों का, हमारे साधनों का चेकिंग होता है, क्योंकि हमें भय है ।

हम रोज टी.वी. में सुनते हैं, पाकिस्तान का खतरा है, जम्मू कश्मीर में इतने उग्रवादी मारे गये हैं । कुवैत अपनी तेल की सुरक्षा हेतु फौजी घिराव में रहता है । दुनिया के सारे लीडर भयभीत हैं । उसे कहीं जाना है तो भय, कहीं खाना है तो भय, कहीं सोना है तो भय, कहीं बोलना है तो भय, कहीं स्वागत है तो भय, कोई माला पहनावे तो भय ! राजीव गाँधी की जान माला पहनाने से ही गई थी । लाल बहादुर शास्त्री का निधन तास्कंद में खाने से हुआ था । इन्दिरा गाँधी का निधन कवच न धारण करने से हुआ था । आज राजनीति का न मूल्य रहा, न प्रतिष्ठा रही, न अनुशासन रहा । यदि कुछ रहा है तो जिसका एक छत्र साम्राज्य छाया है, और वह है भय !

हमें भय को तोड़ना है । जब तक भय के घने बादलों को हम बिखेर नहीं देते तब तक भारत का सूर्योदय तेजस्वी नहीं हो पायेगा । भारत में क्या-क्या नहीं हुआ नादिरशाह, सिकन्दर, तैमूर, हिटलर, सीजर, चंगेज खान ने इसी भूमि पर कितनी बार खून बहाया है । कितने वर्षों तक इनके नाम से मानव भयभीत रहे हैं । महमूद गजनी ने तो सत्रह बार लूटकर इस भूमि का सत्यानाश किया है । भय से त्रसित और शोषित प्रजा के आंसुओं का ही नहीं खून से लिखा हुआ इतिहास आज भी भय की गवाही दे रहा है । सारे ही संसार में ऐसी ही हिंसा और भय जीवित है, जो कभी भी विश्व-युद्ध का स्वप्न साकार कर सकता है ।

सामाजिक क्षेत्र में एक समाज दूसरे समाज से भयभीत है । मानव मात्र सामाजिक प्राणी है व समाज में रहता है । समाज का नियन्त्रण, उत्तरदायित्व और कुछ शर्तें हर व्यक्ति का अपना कर्त्तव्य बन जाता है । यदि मानव सामाजिक रीति-रिवाज को अपनाता नहीं है तो उसे सामाजिक भय अवश्य रहता है ।

खान-पान, रहन-सहन, व्यवहार सभी में समाज का भय व्यापक रूप से छाया हुआ है । मानव अपनी प्रतिष्ठा से, अपनी धन सम्पत्ति से दूसरे को भयभीत करता है । वह सोचता है मेरे से सारे ही भयभीत होने चाहिए, मैं एक आवाज लगाऊँ और सारे ही काँपने चाहिए । मेरी आवाज के सामने किसी की बोलने की हिम्मत नहीं होनी चाहिए ।

धार्मिक क्षेत्र का भय

पीढ़ी दर पीढ़ी से हर आदमी देवी, देवता, तपस्वी, योगी, मंत्रवादी,

तंत्रवादी आदि से भयभीत होते हैं । भयभीत आदमी अपने से कमजोर आदमी को भयभीत करके खुश होता है । वह मन्दिर में जाता है भय से मुक्त होने के लिए । वह माला, तप, जप करता है रेड पड़ने वाली है इसलिए ! वह कोर्ट के केस से भयभीत है, अतः गुरु दर्शन करता है । वह धन, सत्ता और वैभव चाहता है, इसलिए परमात्मा का स्मरण करता है ।

इस प्रकार पत्नी भयभीत है क्योंकि पति क्रोधी है, बेटा भयभीत है अपने पिता से क्योंकि न पढ़ने पर रोज गाल पर चांटा पड़ता है । नौकर भयभीत है सेठ नौकरी से छुट्टी कर देगा । मिल मालिक को भय है स्ट्राइक होने की, एक मार्किट वाले को भय है तेजी मंदी का; इस प्रकार सारे संसार में भय व्यापक रूप में फैला हुआ है ।

प्रिय आत्म स्वरूप अनु !

धन, वैभव, अहं, ईर्ष्या, सत्ता, अधिकार, क्रोध, काम, मद, लोभ ये भय के प्रमुख द्वार हैं । जो भी भय के द्वार पर पहुँच जाता है वह भय के भीतर पहुँच जाता है । भय उसे दबोच लेता है । अपनी विध्वंसात्मक सत्ता से उसे घेर लेता है । अपने बदले की भावना से उसे पीड़ित करता है । भय के कीटाणु भीतर फैल गये बस फिर तो एक दूसरे के साथ विद्रोह होता रहेगा । एक दूसरे का विरोध का गठन होता जायेगा । मानव द्वारा मानव का ही तिरस्कार, घृणा और वैमनस्य जागेगा । अतः सर्व प्रथम भय के उत्पत्ति स्थान का निरीक्षण करो ? भय पैदा क्यों हुआ ? कहाँ से हुआ ? पैदा होने का कारण क्या ? क्या हम भय से मुक्त हो सकते हैं ? इत्यादि चिंतन की ओर हमारा ध्यान पहुँचना अत्यन्त आवश्यक है ।

जिस भय ने हमारी नैतिकता का पतन किया है । जिस भय ने हमारे साथ विश्वासघात किया है । जिस भय ने भाई-भाई को मारा है । जिस भय ने अत्याचार करवाया है, जिस भय ने मानव को जिन्दा जलाया है और जिस भय ने योगियों को भोगी बना दिया है उस भय से अलविदा लेने के लिए सर्व प्रथम अपने आप को देखो । भीतर में पड़े हुए भय को देखो । जब तक भय पैदा होने के द्वार बन्द नहीं होंगे तब तक भय का अवरोध हम नहीं कर पायेंगे । वृत्तियों में आवेग भय से होता है । उस आवेग को उत्तेजित करने के लिए भय का विष घोला जाता है । भय का विष यदि बूँद मात्र है फिर भी पूरे जीवन को नष्ट कर देगा । पूरे परिवार का, पूरे समाज का, पूरे देश का, पूरे राष्ट्र का विध्वंश कर देगा ।

प्राण शक्ति के प्रयोगों द्वारा, भावात्मक प्रयोगों द्वारा, मानसिक प्रक्रियाओं के द्वारा, एकाग्रता के द्वारा, हम भयात्मक वृत्तियों का रूपान्तरण करने में सफल हो सकते हैं, भीतर रासायनिक परिवर्तन करने पर भयभीत होने के भाव से हम मुक्त हो जाते हैं । यदि भीतर भय है तो वह रोग से ग्रसित होगा ही क्योंकि भय का शिकारी मानसिक रोग से व्यथित होता है । भय से मुक्त होने के लिए ग्रंथियों के स्राव वदलने होंगे । जिससे जैविक-रासायनिक परिवर्तन होगा और मानव भय से मुक्त होकर अभय वन जायेगा । हम अभय के पुजारी हैं । शान्ति और आनन्द के पुजारी हैं, भय के नहीं ! आज से ही भय से मुक्त होने का अभ्यास करो ।

चिन्तन

१. भय से पुरानी आदतें, पुरानी आस्थाएँ और पुराने संस्कार पुष्ट होते हैं और नये का जन्म होता है ।

२. भय से मन की, वुद्धि की, वाणी की और शरीर की दुर्वलता होती है और मानसिक व्यथा व्यापक होती हैं ।

३. प्रियता और अप्रियता के कवच में आवृत्त मानव भीतर से वज्रमय होने पर भी भयभीत रहता है ।

४. विकल्प के जाल में फँसा हुआ मानव एक भी ऐसा नहीं मिलेगा जो भय से घिरा हुआ न हो ।

५. भय से तनावग्रस्त मानव अभय की भीख माँगेगा तो भी नहीं मिल पायेगी वह भीख से वंचित रहेगा ।

प्राणी मात्र को भय से मुक्त करो
अभय का अधिकार मिलेगा
क्योंकि भय से भय और
अभय से अभय मिलता ही है ।

ॐ
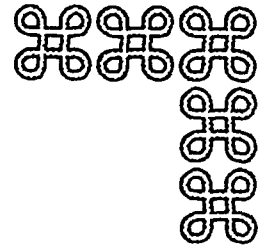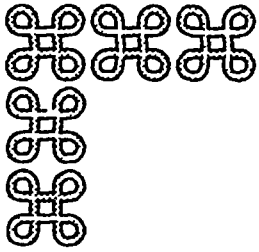
२०. "अकडं करिस्सामित्ति मण्ण माणे"

अर्थ—'मैं वह करूंगा, जो आज तक किसी ने नहीं किया ।'
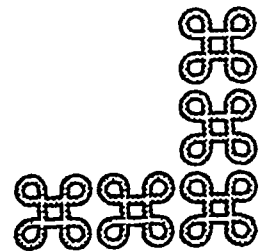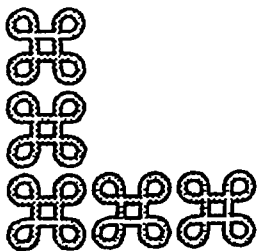
अहं का परिणाम

२१. अहं की मंजिल पर खड़ा मानव निर्मल परिधान के पीछे छिपे दोषों का भार ढोने पर भी उसकी दुर्बलता का अनुमान लगा नहीं पाता तो क्या सत और असत का मानदंड ढोता ही रहेगा कभी समझ भी पायेगा !

प्रिय.........

आवेग और उत्तेजना का संसार जितना व्यापक है उतना रहस्यमय भी है । सही अर्थ में उनकी दुनिया में प्रवेश पाना सरल नहीं । क्योंकि जितने भी आवेग हैं वे सबी मानव जीवन की अस्वाभाविक उत्तेजनाएँ हैं; फिर भी भिन्न-भिन्न आवेगों की पेचीदगियाँ भिन्न-भिन्न रूप में प्रभावित बनती रहती है । इन आवेगों में एक आवेग है मान का । मान अहंकार में परिणमन होता है । इसलिए अहं की सर्वशक्तिमान ध्वनि आज चारों ओर तरंगित हो रही है । किसी को वैभव का अहं है, किसी को सत्ता का, किसी को अधिकार का, किसी को ज्ञान का, किसी को रूप का, किसी को पत्नी का, किसी को पति का, किसी को संतान का इस प्रकार अहं की दुनिया बहुत व्यापक है ।

आज के समाज का दृश्य बड़ा ही विचित्र है । अहं से सभी पदार्थों का अवमूल्यन तो हो ही रहा है, साथ ही साथ मानवीय मूल्यों का साहित्य सर्जनात्मक उपहारों का, कलात्मक कृतियों का भी मूल्य उसने समाप्त कर दिया है । जिसके माध्यम से हमारी सभ्यता का भी तीव्र गति से अवमूल्यन हो रहा है । अहं की भावना से तथा उससे निकलती आवाज से सारा संसार ग्रसित है । इसे रोकने की क्षमता किसी में नहीं है ।

मानवीय कल्पना ने अपने आपके जीवन को ऊँचा उठाने के लिए एक ऐसी दस्तक महसूस की है कि वह अपने जीवन में कुछ कर गुजरे, किन्तु इस अहं के बावजूद वह कुछ भी नहीं कर पाता । उसका सारा जीवन उधेड़बुन, उहापोह, व्यग्रता तथा मानसिक अशान्ति में व्यतीत होता है । एक समझदार मानव के लिए परिणाम या निष्पत्ति का चिंतन विशेष महत्व रखता है । वह

सर्व प्रथम सोचता है कि अहं का परिणाम क्या है ? इस परिणाम के माध्यम से शारीरिक और मानसिक व्यथा और उसका हाल क्या होगा ?

अहं का आवेग मानसिक संतुलन को उत्तेजित करता है । जिससे दिमाग गरम हो जाता है । दिमाग मानव शरीर का जटिलतम तंत्र है । यह शरीर के अन्य तंत्रों का नियंत्रण एवं संयोजन करता है । यदि मस्तिष्क किसी भी कारण विशेष से विफल हो जाय तो सारा शारीरिक व्यवहार अस्त-व्यस्त हो जाता है । हमारी आँखें कितना धोका खा जाती हैं । हमारे शरीर के आवरण में छिपा अहं अपने आपको देखने ही नहीं देता । वह अपनी अपेक्षा के आँचल में सबको लपेटता रहता है । वह सोचता है कि सिन्धु ही सब दृष्टि से सरिताओं को समाहित करने में समर्थ होता है, अन्यथा सरिताओं का कोई मूल्य ही नहीं । सहजता और अहं में प्राकृतिक बैर है । दोनों एक साथ नहीं रह सकते । किन्तु अहं अर्हं बन जाता है तो दोनों एक हो जाते हैं ।

रत्नावली के अहं की उत्तेजना ने तुलसीदास के प्यार को ठुकरा दिया था । तुलसीदास का तो जीवन बदल गया किन्तु रत्नावली को वियोग सहना पड़ा । इसी प्रकार सौतेली माँ का अहं जागने पर ध्रुव जंगल में चला गया ध्रुव की तो साधना हो गई, किन्तु माँ को विषाद में रहना पड़ा । दशारण भद्र को वैभव का अहं था, पर देवों से परास्त हो गया । कैकेयी को भरत जैसे पुत्र का अहं था पर वह दशरथ को खो बैठी । रावण को अपनी सत्ता और अधिकार का अहं था किन्तु अपने प्राण गँवा बैठा ।

अहं ने देश और जाति के बैर को भी बढ़ाया है । सन् १९१८ में प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् इग्लैंड और जर्मनी ने अहं का ही आदर्श रखा ! दोनों की संधि दोनों के लिए खतरनाक थी । इग्लैंड ने जर्मन के उत्थान का सारा व्यवहार बंद करवा दिया था । जर्मन निवासी हमेशा के लिए उनके प्रति प्रतिशोध की भावना रखते थे । फलतः सारे राष्ट्र में एक हंगामा मच गया । अहं फूट पड़ा और एक दिन द्वितीय विश्वयुद्ध इसी पृष्ठभूमि में प्रारम्भ हुआ । हिटलर ने शक्यतानुसार बदला लेने की भावना का प्रयास किया और करीब-करीब उसमें सफल भी रहा । फिर भी युद्ध के अंत में जर्मन हार गया लाखों मानव की खून की नदियाँ इस अहं ने बहायीं, फिर भी अहं जिन्दा रहा । विकराल रूप में प्रकट होकर अहं ने पूर्ण विनाश धारण किया ।

सारे राजनीतिज्ञ दुनिया में युद्ध लाने का ही कार्य करते हैं लेकिन कहते हैं हम शान्ति के लिए लड़ रहे हैं । क्या किसी ने ऐसा कहा है कि हम सत्ता और अधिकार के लिए युद्ध करते हैं । विज्ञान ने हमारी ताकत असीम बनादी है । आज लाखों की संख्या में बम तैयार हो रहे हैं । बम के विस्फोट से इतनी गर्मी पैदा होगी जितनी सूर्य की गर्मी है । सौ डिग्री पर पानी उबलकर भाप बन जायेगा, पन्द्रह सौ डिग्री पर लोहा पिघलकर पानी बन जायेगा । पच्चीस सौ डिग्री पर लोहा भाप बनकर उड़ जायेगा । किन्तु यह तो उद्जन बम के विस्फोट की गर्मी है । इस बम विस्फोट की गर्मी है दस करोड़ डिग्री की ! इतनी गर्मी में क्या बच सकता है । सारी सृष्टि का संहार इस अहं वाले दिमाग में भरा है और राजनीतिज्ञ का दिमाग जब तक खराब नहीं है तब तक सब सही सलामत है जिस दिन अहं ने सत्ता हाथ में ले ली मामला बिगड़ जायेगा । फिर उसे कौन रोक पाएगा ?

प्रिय आत्म स्वरूप अनु !

संसार में विशेष रूप से मानव अहंकार के रोग से बीमार है । इसलिए संघर्ष होता ही रहेगा । राष्ट्रीय अहंकार, जातीय अहंकार, धार्मिक अहंकार, सांप्रदायिक अहंकार, कुल का अहंकार, बल का अहंकार एक पार्टी का दूसरी पार्टी पर विजय पाने का अहंकार । कोई भी अहंकार हो अहंकार ही है । जो भूल में हैं, जो अंधकार में हैं, वे सच्चाई को नहीं जान पाते हैं । अहं से अहं का नाश नहीं होता है किन्तु हर एक अहं के पीछे अनेक अहं के संस्कार होते हैं । जो एक पूर्ण होने पर अनेक पैदा कर देता है ।

अहंकार द्वारा शारीरिक क्रियाओं में परिवर्तन, रासायनिक स्राव में परिवर्तन, शारीरिक लक्षणों में परिवर्तन, मानसिक चिंतन में परिवर्तन, पारिवारिक प्यार में परिवर्तन, और समाज में जातीय परिवर्तन पाया जाता है । इस प्रकार अहं का संस्थान बहुत व्यापक है । अहं हमारे स्थूल व्यक्तित्व का एक पुर्जा है, जिसके परमाणु सारे शरीर में फैले हुए हैं । हमें उन परमाणुओं का संप्रेषण करना है । अहं के स्रावों को मिटाना है । कई बार आदमी नियंत्रण करना चाहता है किन्तु अहं उसके लिए बाधक बन जाता है ।

आज वैज्ञानिक युग में ऐसे यंत्रों का निर्माण हुआ है जिनके द्वारा व्यक्ति के अंतरमन को तोला जाता है । चोर की चोरी पकड़ी जाती है, झूठ बोला

जा रहा है या सच व्यक्ति छिपाना चाहता है किन्तु यंत्र की सुई घूमती है और पाप प्रगट हो जाता है । प्राचीन काल में ऐसे कोई साधन नहीं थे फिर भी साधक साधना के माध्यम से शिष्यों में रही वृत्तियों की पहचान, योग्यता आदि की परख कर लेते थे ।

अहं हमारे भावों में, विचारों में और प्रवृत्तियों में प्रदर्शित होता है । प्रवृत्ति स्थूल है, विचार प्रवृत्ति से सूक्ष्म हैं और भाव विचारों से सूक्ष्म हैं । अतः अहं प्रवृत्ति तक रहता है, अहं विचारों तक रहता है, तब तक सीमित है । किन्तु भावों में उत्तेजित हो जाता है, तब किसी के मन को तोड़ देता है, किसी के प्यार को ठुकरा देता है, किसी की जान को खतरे में डाल देता है, किसी को जिन्दा जला देता है और किसी को प्राण दंड दिला देता है ।

अपने जीवन को सुखद और संपूर्ण बनाने के लिए अहं बुद्धि का परित्याग अद्भुत योगदान है । इसी में मानव का उत्थान होगा । अन्यथा अधःपतन या अवनति तो है ही । समाज का प्रबुद्ध वर्ग भी इस अहं के योग से विवेक शून्य हो रहा है । उन्हें अंतःस्थल तक पहुँचना नितांत आवश्यक है । अहं की ग्रन्थियों को तोड़ना जटिल है । योगी ऋषि और महर्षियों ने इसे तोड़ने का प्रयास किया है और सफलता भी पायी । आप भी आज से अहं ग्रन्थि से मुक्त होने का प्रयास प्रारंभ कर लो मुक्ति आपका वरण करेगी !

चिन्तन

१. अहं के विसर्जन से हजारों हजारों साल का भीतर का अंधेरा उजाले में बदल जाता है ।
२. साधक अहंकार के प्रति जागृत हो जाता है तो जनम-जनम की मूर्च्छा समाप्त हो जाती है ।
३. अहंकारी सदा का अंधा होता है वह कभी भी सत्य को स्वीकार नहीं कर सकता !
४. यदि आप अधिक परेशान हों तो जरा भीतर झांक लो आपका अहं कहाँ-कहाँ जिन्दा है ।
५. जितना अहं बोलता है उतना सोचता नहीं, जितना सोचता है उतना पाता नहीं !
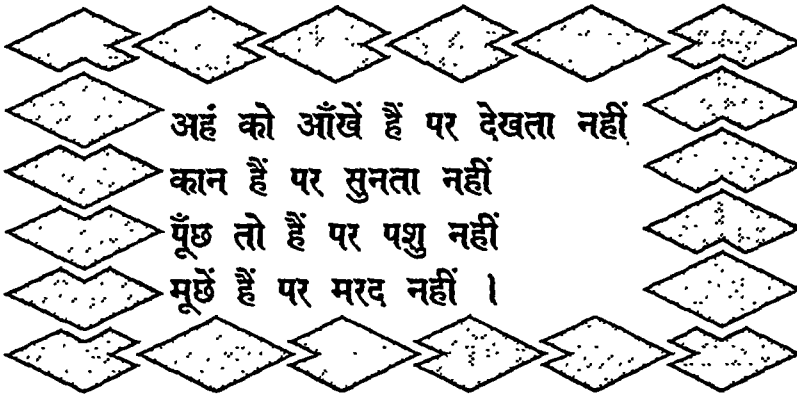
अहं को आँखें हैं पर देखता नहीं
कान हैं पर सुनता नहीं
पूँछ तो हैं पर पशु नहीं
मूछें हैं पर मरद नहीं ।

⌘
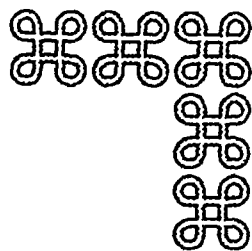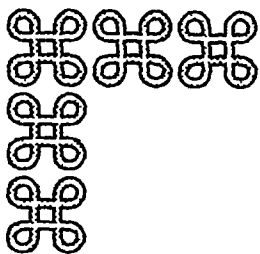
२१. "सुत्ता अमुणि सया, मुणिणो सया जागरंति ।"

अर्थ—अज्ञानी सदा सोते हैं । ज्ञानी सदा जागते हैं ।
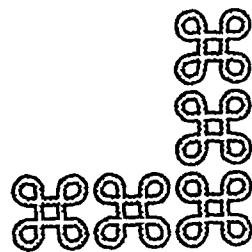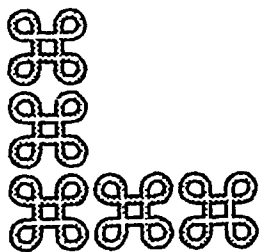
सुप्त-असुप्त अवस्था

२२. जो गहरी नींद में सोता है उसका जीवन भी सोया है क्या उसे ऊपर उठने की भी संभावना है ? ऐसा कोई प्रयोग है जिससे जागृति हो जाय ?

प्रिय..........

विएना विश्वविद्यालय में कार्य करते हुए जर्मनी के चिकित्सक फ्रेंज एंटाना ने ऐसी खोज की कि हर इन्सान जाग्रत निद्रा के माध्यम से एक सफल साधक हो सकता है अतः उन्होंने सफलता पाने के लिए मानवीय चेतना पर प्रयोग किया और निर्णय पाया कि हर इन्सान में एक तरह की चुम्बकीय शक्ति होती है जो यथा समय मानव को सुला देती है और यथा समय मानव को जगा भी देती है । इसे जैविक चुंबकत्व का नाम देते हुए उन्होंने कहा कि यह गुण सभी जीवित प्राणियों में होता है ।

मैस्पर के शब्दों में—इस चुम्बकत्व का निरंतर प्रवाह शरीर में निद्रा द्वारा थकान को दूर करके स्वस्थता बनाये रखना हैं । यदि चुम्बकत्व का प्रवाह प्रतिकूल है तो उसमें व्यवधान आने लगेंगे जिससे अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं ।

साइकोलोजिस्ट ने रोग मुक्ति के उपाय के लिए भी चुम्बकीय निद्रा का प्रयोग किया है जैसे—बैचेनी, भय से चीखना, हवाई यात्रा का भय, हिल स्टेशन पर पहुँचने का भय, चिड़चिड़ाहट, आत्महत्या के विचार, नशाखोरी, हीन भावना, प्रतिशोध की भावना, ईर्ष्या-द्वेष की भावना, मोटापा, धूम्रपान, सैक्स में तीव्र रुचि इत्यादि है तो उसका उपचार चुम्बकीय निद्रा के माध्यम से किया है । चुम्बकत्व न केवल शरीर की ही स्वस्थता बनाये रखता है वल्कि साथ ही साथ हमारे सारे व्यक्तित्व को भी नव निर्मित करता है । उसे अपने प्रयोग द्वारा ऐसी भी अनुभूति हुई है कि एक व्यक्ति अपने चुम्बकत्व से जहाँ दूसरों को प्रभावित कर सकता है, वहीं दूसरा इसी के कारण लोगों को अपने से दूर हटा सकता है । इस प्रकार एक को जोड़ना और दूंसरे को

तोड़ना दोनों प्रकार का कार्य करने की क्षमता इस चुम्बकीय तत्व से जाग्रत निद्रा के रूप में पाया गया है ।

दूसरा प्रयोग ऐसा भी सफल हुआ है कि चुम्बकत्व को एक व्यक्ति के द्वारा दूसरे व्यक्ति के शरीर में प्रेरित और प्रेषित किया जा सकता है जिससे मस्तिष्क की सोयी हुई क्षमता जाग जाती है । सोयी हुई क्षमता को जाग्रत अवस्था में लाने के लिए निद्रा को हम तीन स्वरूप में देखेंगे ! सुप्त, सुप्त-जाग्रत और जाग्रत ।

सुप्त निद्रा में मानव मूर्च्छावस्था में पड़ा रहता है । गहरी नींद में सोया रहता है । नींद में उठकर कोई काम कर लेता है किन्तु कार्य करने का उसे पता तक नहीं होता है । उसे अपने जीवन का केवल आभास है कोई अनुभव नहीं, सचेत आत्मा होने पर भी यंत्रवत् कार्य करता रहता है । सत्ता, संपत्ति, संतति बढ़ाता है, पर संतोष नहीं प्राप्त कर सकता । अतृप्त वासना में भटकता रहता है पर शान्ति की सांस नहीं ले पाता !

आपको पता चला कि स्टेशन के पास बम विस्फोट हुआ है और आपका पुत्र कार से उसी समय वहाँ पहुँचा है । यदि कोई खबर दे कि आपकी कार खत्म हो गई तो आप दौड़ते भागते सर्व प्रथम वहीं पर पहुँचने का प्रयास करेंगे । उस समय न किसी की सुनेंगे, न किसी को देखेंगे ! कान हैं सुनाई देगा, आँखें हैं दिखाई देगा पर उस समय आपको होश नहीं है । आप केवल अपने पुत्र को ही देखना चाहते हो । केवल पुत्र के ही हाल सुनना चाहते हो कि क्या हुआ । मानव परिस्थिति के कारण होश खो देता है, सुप्त अवस्था वही अवस्था है जहाँ मानव होश में नहीं रह पाता है ।

दूसरी अवस्था है सुप्त-जागृत अवस्था—

इस अवस्था में मानव सोया है पर उसे कुछ बोध भी होता है, कि मुझे क्या करना चाहिए । मैं क्या कर रहा हूँ । लाभ-हानि, सुख-दुःख, प्रिय-अप्रिय, जन्म-मृत्यु, मान-अपमान, आदि का कुछ विवेक भी होता है ।

उस अवस्था में एक अवस्था है स्वप्नावस्था—

रात को जो स्वप्न देखा जाता है वही दिन में सोचा जाता है क्योंकि रात के स्वप्न हमारे भीतर चलते रहते हैं । हम आँखें मूंदकर जब भी भीतर झांकेंगे तो स्पप्नों का जाल विकल्पों के साथ कहीं से हमें जोड़ता है और

कहीं से तोड़ता भी है । इस प्रकार भीतर और बाहर स्वप्न (Dreams) चलते रहते हैं । स्वप्न में हम राष्ट्रपति हो जाते हैं, औरों पर हूकूमत चलाने लगते हैं । स्वप्न में हम अमरीका पहुँच जाते हैं और वहाँ के बहुत बड़े मिल-मालिक बन जाते हैं । हजारों लोग हमारे मिल में मजदूरी करते हैं । कभी स्ट्राइक होती है, कभी जाँच होती है, कभी मिल चलते हुए बन्द हो जाती है । कभी तनावग्रस्त हो जाते हैं, इस प्रकार आँखें खुलती हैं तो पाते हैं स्वप्न है—यह सोया हुआ स्वप्न है । इस अवस्था में मानव कोल्हू के बैल की तरह हजारों मील की यात्रा करता है, हजारों स्थानों में घूमता है किन्तु देखता है तो जहाँ का तहाँ है एक कदम भी आगे नहीं बढ़ पाया है ।

सोया हुआ मानव सोचता है, न जाने क्या-क्या हो जाऊंगा लेकिन कुछ नहीं हो पाता ! देखने पर उसके सारे सपने टूट जाते हैं । कभी-कभी तो स्वप्न का सुख जागने पर जीवन की विफलता से दुःख रूप में और विषाद रूप में परिणमन हो जाता है । कभी सोचा नहीं कभी देखा नहीं, मन ऐसे स्थान पर पहुँच जाता है । कितनी पार्टियाँ अटेण्ड कर लीं कितने होटलों पर पहुँच गये, कितनी चीजों का स्वाद चख लिया । कितने समय तक मैच खेले, कितनी बार जीत हुई, कितनी बार हार हुयी । हजार बार स्वप्न में जीत हुई तो क्या ! हार हुयी तो क्या ! उसका प्रभाव खुशी और न खुशी में बदलता रहे तो भी क्या स्वप्न स्वप्न है, सत्य नहीं ?

प्रिय आत्म स्वरूप अनु !

निद्रा की तीसरी अवस्था है जाग्रत !

इस अवस्था में न तो मूर्च्छा है और न स्वप्न किन्तु यह अवस्था है सत्य ! जब भीतर से मानव जाग जाता है, तो विवेक ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है, अंतः ग्रन्थियों का संतुलन हो जाता है । अवचेतन मन से संपर्क जुड़ जाता है, रासायनिक परिवर्तन से व्यक्तित्व का परिवर्तन हो जाता है तब भीतर से मानव जागृत हो गया है ऐसा माना जाता है ।

हमारी वृत्तियाँ—आवेग, काम, क्रोध, मद, लोभ आदि चेतना के आंतरिक स्तर हैं । डी. एम. डब्ल्यु, काय (एम. डी.) ने कहा कि हमारे भीतर जो संस्कार के कारण आवेग जागते हैं तब भीतर ग्रन्थियों का स्राव तीव्र हो जाता है और ये तीव्र स्राव समूचे शरीर में विकृतियाँ पैदा कर देता है । अतः

जाग्रत निद्रा के माध्यम से हम इस विकृति से मुक्त होने में सफल हो सकते हैं ।

अपने अस्तित्व के प्रति जाग्रत रहने का मात्र एक उपाय है, अप्रमत्त अवस्था ! हमें गहरी शून्यता में जाना नहीं है किन्तु विकल्पों से परे होना है, विचार रहित बनना है । आने वाले तथा जाने वाले विकल्पों को देखना है, जो जैसा होता है उसे वैसा ही होने देना है । उसके प्रति न राग है न द्वेष है और न जुड़ना है, न टूटना है किन्तु तटस्थ रहकर केवल देखना है । ज्ञाता दृष्टा भाव रखना ही जाग्रति है ।

चित्त वृत्ति का निरोध करना ही विकल्पों से मुक्त होना है । चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है । चैतन्य की अनुभूति निरंतर बनी रहे वही अवस्था जाग्रत अवस्था है । अतः भीतर जाने के लिए अनुभूति के स्तरों का क्रमशः उद्घाटन करो ।

आज से इतना तो अवश्य हो जाना चाहिए कि पांच मिनट के लिए भी जाग्रत अवस्था बनी रहे । निर्विकल्प और निर्विचार अवस्था की प्राप्ति का प्रयास बना रहे । कोई भी पुरुष महापुरुष कैसे बन सकता है, सिद्ध बुद्ध और मुक्त कैसे हो सकता है, यदि सीधा और सहज उपाय चाहिए तो जाग्रत निद्रा का उपाय ही श्रेष्ठ है । जाग्रत चेतना का निर्माण अनादि काल से सिद्ध है किन्तु प्रमादवश भोग और उपभोग में आसक्ति वश हम उसके ऊपर आवरण का स्तर जमाते रहे और गहरी नींद में सोते रहे ।

उठो ! निद्रा को तोड़ो सदा के लिए जाग्रत हो जाओगे ।

चिन्तन

१. जागृति की भूमिका पर चरण रखते ही मूर्च्छा की दीवारें टूटने लगेंगी ।
२. परदे के पीछे पड़ा हुआ सत्य सोया हुआ है सोया हुआ मानव कभी भी नहीं उठ पायेगा । उसे उठाने के लिए तो जगना ही पड़ेगा !
३. जाग्रत अवस्था एक ऐसी अवस्था है जो चेतना की पदार्थ-प्रतिवद्धता को समाप्त कर देती है ।

४. जागृति के माध्यम से हम उस शिखर को छू सकते हैं जहाँ संयोग और वियोग में सम अवस्था प्राप्त हो !

५. जाग्रत मानव को न तो घटना का संवेदन होता है और न ही घटना का प्रभाव होता है ।

मूर्च्छा मिटती नहीं
बनी रहती है उसे
मिटाने के लिए चेतना
की जागृति चाहिए !

⌘

७

उभरती समस्याओं का समाधान-भीतर की आवाज

- भीतर का खोखलापन

  समय के बदलते परिवेश

  शंखनाद की ध्वनि

  रक्षक ही भक्षक

  दुष्चक्र का दुष्परिणाम
- रासायनों का आकार-इन्द्रिय जन्य बोध

  चुम्बकीय तरंगों का प्रत्यक्ष अनुभव

  प्रकंपन शक्ति का परिमाण

  एन्टीना से रेन्ज का रूपान्तरण

  उत्तेजित आवेगों का नियंत्रण
- अस्राव्य ध्वनि—अस्तित्व और अनुभव अतीन्द्रिय चेतना की जाग्रत क्षणों में

  वैखरी,

  मध्यमा,

  पश्यंती,

  परा,

  मौन—साधना की आवाज है ।

  परावाणी—टेलीपेथी का प्रयोग है ।

  करोकोल—नया आविष्कार ।
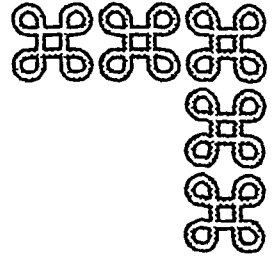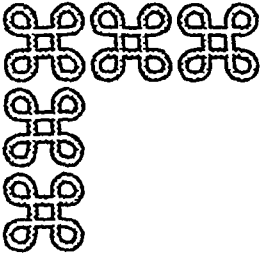
२२. "इणमेव णावबुज्झंति जे जणा मोहपाउडा ।"

अर्थ—मोह में आवृत मानव भोगोपभोग से अनावृत होना चाहिए ऐसा नहीं समझ पाते ।
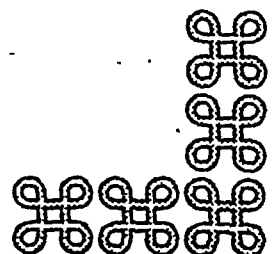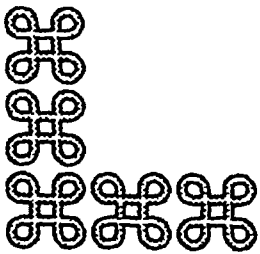
नैतिकता का नजारा

२३. प्रगति के युग में प्यार तो है पर स्वार्थ से संयुक्त है । क्योंकि बुनियाद में रखा हुआ प्यार जो भवन तो खड़ा करता है पर वह मन्दिर नहीं होता । एक फिल्मी थियेटर बनता है, क्या मानवता के लिए कहीं नैतिकता का नजारा है ।

प्रिय..........

समय की बदलती धारा ने अपने साथ न जाने कितने नये परिवर्तनों को जन्म दिया होगा । जीवन के कण-कण में बदलते आयाम, मानवीय चेतना में भौतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, सामाजिक और राष्ट्रीय स्तर पर संस्कृति और सभ्यता के प्रभाव से पनपते रहे । अपनी आज की दिनचर्या में हम देखते हैं कि चारों ओर असीम भौतिक प्रगति हुई है, पर अफसोस भीतर झाँक के देखो तो हम खोखले हो चुके हैं । हमारे समस्त नैतिक मूल्यों का, समस्त आचार और विचारों का, समस्त प्रवृत्ति और उन्नति का विकास के स्थान पर ह्रास हो रहा है । समय के बदलते परिवेश में सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक क्रांति का भार लोगों के कंधों पर ही आता है ।

प्रत्येक राष्ट्र में अर्थ व्यवस्था के शोषण स्वरूप मानव अपने को निस्सहाय तथा कमजोर पा रहा है । इसी मानसिक अवस्था में वह अनैतिक कदम बढ़ा लेता है । जिससे जीवन में व्याप्त असमानताओं को दूर करने में असमर्थ हो जाता है और जीवन में कटुता पनपने लगती है । मानव ने मान रखा है कि किसी भी प्रयास से धनोपार्जन ही जीवन का मुख्य उद्देश्य है ।

पाश्चात्य संस्कृति भौतिकवाद से घबराकर अध्यात्मवाद के प्रांगण में पनप रही है और हम प्राचीन युग से प्यार, आत्मविश्वास और आत्म-संयम में पले हुए होने पर भी भौतिकता के आवर्त में आवृत्त हो रहे हैं । भारतीय तप, जप और योग जो शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक आत्म-संयम का एक महत्वपूर्ण अंग था, उसे मानव आपसी विरोधों में समाप्त कर बैठा है । जो अनिर्णय के गहरे अवसाद से भर गया है । ऐसी अवस्था को

संक्रमण काल कहा जाता है । आज हमारे दुःख का बँटवारा कौन करेगा, हमारी निराशा में आशा के दीप कौन जलायेगा और दुर्बलता के क्षणों में साहस का प्रसाद कौन बाँटेगा !

प्राचीन युग में प्रातःकालीन दिनचर्या एक आत्म शांति तप-जप-ध्यान-स्वाध्याय और प्रार्थना के रूप में प्रारम्भ होती थी और आज परमात्मा के स्थान पर टी.वी. फिल्म के माध्यम से फिल्मी संगीत से प्रारम्भ होता है, मंत्रों का उच्चारण, घंटनाद की स्वरलहरी और शंखनाद की ध्वनि चारों ओर विशुद्ध परमाणुओं से युक्त वातावरण को पवित्र व भावनामय बना देती थी ।

आज वैज्ञानिकों ने शंखनाद से प्राप्त लाभों को सिद्ध करके बताया है । बर्लिन यूनीवर्सिटी ने शंख ध्वनि की तरंगों से कीटाणुओं के नष्ट होने का प्रमाण दिया है । प्रति सेकण्ड सत्ताईस घन फुट वायु शक्ति के जोर से बजाया हुआ शंख १,२०० फुट दूरी के कीटाणुओं को नष्ट कर डालता है । २,६०० फुट दूरी के कीटाणु उस ध्वनि से मूर्च्छित हो जाते हैं और अनेक बीमारियों के कीटाणुओं से मानव को बचाया जाता है ।

शिकागो के डॉ. डी. ब्राइन ने करीब चौदह सौ रोगियों को शंख ध्वनि से निरोगी किये हैं । अफ्रीका में सर्प विष को भी इसी ध्वनि से विष-मुक्त करने के सफल प्रयोग किये हैं ।

आज मंत्र, तप, जप, पूजा, पाठ, नैवेद्य सभी का सौदा चलता है । भक्ति, श्रद्धा, आस्था, भावना जो कुछ भी है, स्वार्थांधता से परिपूर्ण हैं । धर्म के नाम पर होने वाले संघर्ष का कोर्ट में भी फैसला नहीं हो पाता है । मन्दिर और मस्जिद के लिए जितना खून बहा है उतना खून यदि बीमार मरीजों को निःशुल्क दिया जाय तो कितने मरीज रोग मुक्त हो सकते हैं । जो धर्म दूसरों की रक्षा हेतु रचा गया था वही धर्म दूसरों का भक्षक बन चुका है ।

शिक्षा के विषय में अगर सोचा जाय तो अमरीका सर्वाधिक शिक्षित माना जाता है, किन्तु सर्वाधिक पागलों की संख्या भी वहीं मिलती है । क्योंकि सर्वाधिक आत्महत्या की संख्या, सर्वाधिक मानसिक तनावों की संख्या, सर्वाधिक एबोर्सन की संख्या और सर्वाधिक अमीरी की संख्या का रेकार्ड वहाँ प्राप्त होता है । प्रतिदिन पचास, साठ लाख मानव मानसिक विकारों की

चिकित्सा हेतु प्रयास करते रहते हैं । न्यूयार्क में पचास प्रतिशत लोग अनिद्रा के शिकारी होते हैं उनको निद्रा के लिए दवाई का उपयोग करना पड़ता है ।

परिस्थितिगत आवश्यकताओं और चुनौतियों को स्वीकार कर अनेक महिलाएँ पुरुषों के समान अर्थोपार्जन हेतु वृत्तियाँ तो कर रही हैं । किन्तु आर्थिक स्वावलम्बन ने उनके जीवन में तनाव फैला दिया है । खुद नौकरी करती हैं और बच्चों के लिए आया सर्विस पर रखती हैं । बच्चों में बचपन से ही आया के संस्कार पनपते जाते हैं । ऐसे बच्चों में बुद्धि तो होगी पर माँ की ममता का प्यार नहीं होगा । जातिगत संस्कार तो होंगे पर भाव नहीं होगा । वाणी में तर्क तो होगा पर श्रद्धा नहीं होगी । असंतुलित मानव कोई भी उपद्रव कर सकता है । फिर उनके जीवन में न कोई गति, न काई लक्ष्य, न कोई क्रमबद्धता रह जाती है । यह हमारा सबसे बड़ा दुर्भाग्य है कि जीवन में जो रस, जो आनन्द और जो प्यार मिलना चाहिए उससे हम वंचित रह जाते हैं और भीतर की भावनाएँ, भीतर की क्षमताएँ और भीतर का उत्साह समाप्त हो जाता है ।

प्रिय आत्म स्वरूप अनु !

वैज्ञानिकों ने, टैक्नोक्रफ्टों ने, भौतिक शास्त्रियों ने, साइकोलोजिस्टों ने ज्ञान सम्बन्धी, शरीर सम्बन्धी विविध साधन प्रसाधन के प्रवाह में सर्वांगीण उन्नति पाई है, साथ-साथ प्रकृति पर भी विजय पाई है । वाह्य अनेक प्रकार की उपलब्धियाँ पाई हैं । किन्तु भीतर के प्यार को भुला दिया है । हमारा प्यार भौतिकवाद में बह गया है । इसलिए जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अनाचार पनपने लगा है ।

यूरोप में क्लोनिंग प्रक्रिया द्वारा गाय की कोशिका में से एक विशिष्ट जीन को जीवाणु कोशिकाओं के साथ मिलाने पर एक प्रकार का हार्मोन तैयार होता है । जिससे बी. एस. टी. के इंजेक्शन गायों को लगाने से दूध की मात्रा अधिक बढ़ती है । दूध से हानि होती है या लाभ इस पर कोई विचार नहीं किया जा रहा है ।

जैनेटिक विज्ञान ने टमांटर में मनुष्य और पशुओं का जीन प्रत्यारोपित करके खरबूजे के आकार के पैदा किये हैं । इन मांसाहारी टमाटरों में प्रोटीन अधिक मात्रा में प्राप्त होने का यह प्रयोग है । आहार का अधिकांश पदार्थ इस प्रकार दूषित हो रहा है । राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में दुष्चक्र की

ही प्रधानता है । यह दुज्चक्र क्या रूप धारण करेगा इसका कभी अन्त भी होगा विचारणीय समस्या है ।

संसार वैज्ञानिक प्रगति के आकर्षण में बहा जा रहा है । उसकी गतिविधि को आधार मानकर इक्कीसवीं शताब्दी के ताने-बाने में गुथे हुए जीवन की कल्पना की जा रही हैं । क्योंकि वर्तमान में ही हम कम्प्यूटर और 'रोबोट' द्वारा अनेक कार्य होते हैं और अनेक कार्य होंगे ऐसा प्रत्यक्ष प्रमाण देख रहे हैं । हर पदार्थों के मूल्यों का परिवर्तन हो रहा है । पता नहीं इक्कीसवीं सदी के अन्त तक हमारे देश में कितने आविष्कार और कितने विनाशकारी परिवर्तन होंगे ।

व्यक्ति निर्माण, परिवार निर्माण, समाज निर्माण, उसी हालात में सम्भव है जब हम हमारे निजी नियमों में, संस्कारों में और आदर्शों में स्वार्थ बुद्धि को कहीं से भी पनपने न दें । मानव, मानव के लिए, परिवार के लिए, समाज के लिए, राष्ट्र के लिए अपना क्या उत्तरदायित्व है, समझें । किसी भी जीवों की सुरक्षा यह हमारा कर्त्तव्य है, किन्तु यदि मानव हिंसा में भी अपना कर्त्तव्य मान ले तो । जैसे टिड्डियों का पंजाब पर अधिक आक्रमण हुआ, उस समय टिड्डी दल को विनष्ट किया गया । सैकड़ों विद्यार्थियों ने इस कार्य में सहयोग दिया और कहते थे यह तो हमारा कर्त्तव्य है । जिस दिन से हम अपने देश के हर प्राणी की सुरक्षा करेंगे उस दिन से देश महान बनेगा । स्वार्थपरता, स्वार्थपरक राजनीति तथा स्वार्थी विचारधाराओं के ही कारण आज हम पिछड़े हुए हैं । इसी युग में हम स्वार्थान्धता को छोड़कर निःस्वार्थ बुद्धि से प्यार करें तो पुनः देश आबाद बन सकता है । अन्यथा बरबाद तो है ही !

चिन्तन

१. प्राणी प्यार से पूजा जाता है क्योंकि प्यार में परमात्मा छिपा हुआ है ।

२. जन मानस का भावनात्मक परिस्कार ही सर्व प्रकार की क्रांतियों की जननी है ।

३. प्यार को यदि यंत्र बना दिया जाय तो उसमें न तो गति रहेगी न लय रहेगा और न ही स्पन्दन रहेगा ।

४. वर्तमान में जो सम्भव नहीं है वह सम्भव कर देना सफल व्यक्तित्व की पहचान है ।

५. जिनकी जान में पत्थरों की फसलें हैं, वहाँ गुल खिलने की वात कैसे होती है ।

अभाव का अभाव
होते ही संभाव का नाश
और विभाव का आदर
स्वतः होने लगता है ।

⌘
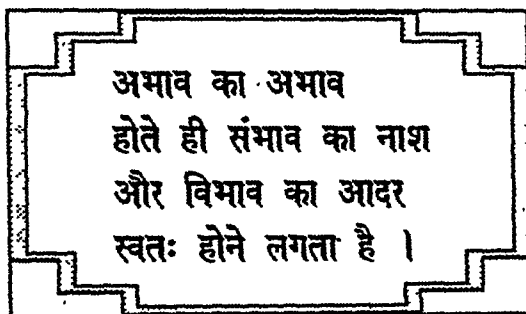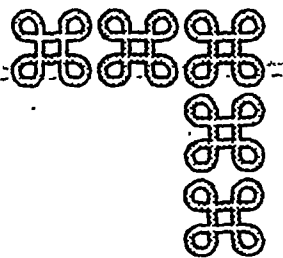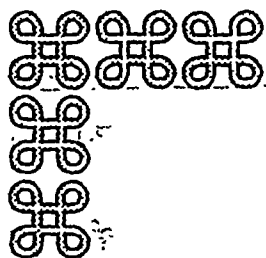
२३. "जस्सिमे सद्दा य रूवा य गंधा य
रसाय फासा य अभिसमन्नागया भवंति,
से आयवं नाणवं वेयवं धम्मवं बंभवं ।"

अर्थ—शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श की आसक्ति साधक की साधना में बाधक होती है अतः अनासक्त साधक ही आत्मज्ञ, ज्ञानज्ञ, वेदज्ञ, धर्मज्ञ और ब्रह्मज्ञ होता है ।
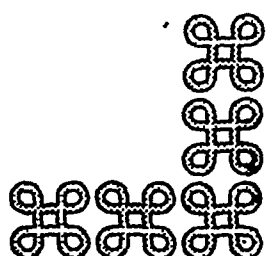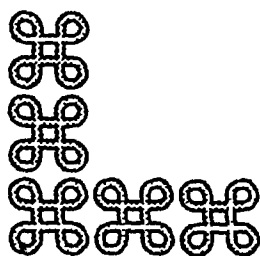
सत्य का साक्षात्कार

२४. हमारे कान आँख केवल सुनना, देखना आदि कार्य करते हैं तो क्या इसमें ऐसी भी शक्ति है जो कान देखता है और आँखें सुनती हैं, ऐसा आज का वैज्ञानिक वताता है ?

प्रिय..........

सुख और शान्ति प्राप्त करने का यदि सहज उपया चाहिए तो वह है वस्तु का स्वभाव । वस्तु का स्वभाव बहुत वड़ा सत्य है । जो स्वभाव में रहता है वह आवृत्त आनन्द को अनावृत करने में सफल होता है । किन्तु जब तक मानवीय चेतना में इस सत्य का उद्घाटन नहीं होता है तव तक मानव आत्मज्ञ, ज्ञानज्ञ, वेदज्ञ, धर्मज्ञ और ब्रह्मज्ञ कभी नहीं हो सकता । सत्य हमें शब्द रस, गंध और स्पर्शों का यथा तथ्य ज्ञान इन्द्रिय जन्य वोध के माध्यम से कराने में समर्थ है । जैसे रस का ज्ञान जिह्वा से होता है किन्तु जिह्वा में केवल रस का ही ज्ञान नहीं सुनने का बोध भी उतना ही है । जो कान ध्वनि को सुनता है और सुने हुए शब्दों को ग्रहण करता है, रिसेप्टिव है वही कान देखता भी है । वैज्ञानिकों ने तो सिद्ध भी किया है शब्द और वर्ण ये दोनों प्रकाश के ही प्रकंपन हैं । इनकी आवृत्ति (फ्रिक्वेन्सी) ही प्रकंपनों से बनती है । वर्ण प्रकाश का उन्नचासवाँ प्रकंपन है । इस प्रकार रूप जो आँखों का विषय है, उससे सुना जा सकता है, ध्वनि जो कान का विषय है उससे देखा जाता है, ऐसा ओरोट्राल यंत्र द्वारा वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया तव सत्य का उद्घाटन हुआ ।

इन्द्रिय ग्राह्य साधनों की जानकारी या प्रत्यक्ष अनुभव कराने में विद्युत चुम्बकीय तरंगों का विशेष योगदान रहा है । ये तरंगें सारे विश्व में व्यापक रूप से फैली हुयी हैं । उसमें से हमारी आँखें ००००४ सेन्टीमीटर से लेकर ००००७ सेन्टीमीटर की लम्बाई की तरंगों को ग्रहण करती हैं । इससे अधिक या कम ००००८ से ००००३२ सेन्टीमीटर लम्बी इन्फ्ररेड किरणें हमारी आँखें ग्रहण करने में असमर्थ हैं । आँखों की अपेक्षा हमारे स्पर्श में इस विषय का सामर्थ्य विशेष पाया जाता है । इसी प्रकार ००००३ से ०००००१ सेन्टीमीटर

लम्बी अल्ट्रा-वायोलेट किरणें भी आँखों के लिए अग्राह्य हैं । फोटोग्राफिक प्लेट पर वे तरंगें पकड़ी जा सकती हैं । एक्स-रे में भी वे तरंगें उभरती हुयी पकड़ी जाती हैं । इसी प्रकार कम या ज्यादा विद्युत चुम्बकीय तरंगें अन्य स्थलों में भी पायी जाती हैं । इसी प्रकार रेडियो, टेलीविजन, रेडियम, रडार, कोस्मिक इत्यादि तरंगें भी दृश्यमान होती हैं ।

भारत में बैठा हुआ बाप अमेरिका में अपने बेटे से बात करता है, उस समय रसिया, जापान, ब्रिटेन, चीन से ब्रोडकास्ट होती हुई ध्वनि वहाँ विद्यमान है । किन्तु कौन उनमें से उन तरंगों को पकड़कर दूसरों तक पहुँचाने में समर्थ होता है । एक सेकण्ड में १६ से ३२, ७६८ प्रकंपन को पकड़ने की शक्ति हमारे कानों में है । इससे अधिक प्रकंपन (फ्रिक्वेन्सी) वाली तरंगें अश्राव्य होने से इन्द्रिय ग्राह्य नहीं होती । हमारी आँखें जिस रेन्ज को पकड़ नहीं पातीं उसी रेन्ज को विद्युत चुम्बकीय तरंगों के माध्यम से टी.वी., वीडियो, वी.सी.आर. आदि के पर्दे पर हम सचित्र देख सकते हैं । उसमें ऐन्टीना ही रेन्ज को पकड़ती है और रूपान्तरण करती है ।

विद्युत से आँखों की रेन्ज को स्पर्श की रेन्ज में और स्पर्श की रेन्ज को ध्वनि की रेन्ज में रूपान्तरण होने के यंत्रों का निर्माण हो चुका है । योगी महर्षियों ने तो यंत्र युग को हजारों वर्ष पहले से ही चुनौती दे रखी है कि योग साधना से आँखें सुन सकती हैं, स्पर्श देख सकता है इत्यादि । हमारा शरीर अनेक रहस्यों से जुड़ा है तथा ज्ञान और संवेदना से संवेदित है । इसलिए जैसे ही आँखें रूप को निहारती हैं वैसे ही पूरे शरीर में देखने की क्षमता है । यदि संकल्प के प्रयोगों से देखा जाय तो समूचा शरीर आँख, कान, नाक आदि का कार्य करने में समर्थ हो जायेगा । पूरे शरीर से सुना जा सकता है, पूरे शरीर से देखा जा सकता है । पूरे शरीर से सूँघा जा सकता है । हमारे भीतर जो आवेग उत्तेजित होते हैं, उसका नियंत्रण हायपोथेलेमस से होता है । इस नियंत्रण का प्रभाव पिनियल, पिट्युटरी, एड्रीनल आदि ग्लैण्ड्स पर होता है । ग्लैण्ड्स के स्रावों से इन्द्रिय चेतना उत्तेजित होती है । इन्द्रियों की उत्तेजना से विचारों में, भावों में, संकल्प शक्ति में, आचार में, वाणी में और व्यवहार में परिवर्तन होना स्वाभाविक है । जैसा आचार-विचार और व्यवहार होता है, वैसा ही ग्रन्थियों का स्राव होता है और स्राव के अनुरूप ही व्यक्ति का व्यक्तित्व उभरता है ।

इन्द्रिय चेतना के विकास से मानसिक चेतना का भी विकास होता है और इन्द्रिय चेतना के संकोच से मानसिक चेतना का भी विघटन होता है ।

प्रिय आत्म स्वरूप अनु !

वाटरलू का युद्ध नेपोलियन हार गया तो सब हैरान थे । डॉक्टर ने जब परीक्षण किया और रिपोर्ट दिया तो निष्कर्ष यही था कि पिट्युटरी ग्लैण्ड विकृत हैं । विकृतियों से शारीरिक, मानसिक या बौद्धिक किसी भी प्रकार संतुलन नहीं रहता । संघर्ष में कभी भी वास्तविकता नहीं मिलती । चलनी में पानी ठहर नहीं सकता । यदि उसमें पानी भरना ही है तो रूपान्तरण करना ही पड़ेगा । जब पानी, पानी मिटकर बर्फ का रूप धारण करेगा तो अवश्य चलनी में अपना स्थान प्राप्त कर पायेगा ।

विज्ञान ने रूपान्तरण किया है शब्द, रूप, रस, गंध आदि विषयों का । ओरोट्राल मशीन द्वारा रंग सुनाई देता है और ध्वनि दिखलाई देती है । वैज्ञानिकों ने ऐसे यंत्रों का निर्माण किया है जो एक सेकण्ड में पन्द्रहवें अरब हिस्से में होने वाले परिवर्तन को पकड़ लेता है । हमारी इन्द्रियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार के विषयों को ग्रहण करती हैं । आँखों के लिए जितना देखना सहज है, उतना सुनना सहज नहीं । किन्तु संसार में कुछ ऐसे तत्व भी हैं जो जटिल से जटिल कार्य भी सुलझा देते हैं । कोई भी तत्व सर्वथा सदृश नहीं होता और कोई भी तत्व सर्वथा विसदृश नहीं होता । हम जिसे स्थूल मानते हैं वह भीतर से सूक्ष्म भी होता है । जिसे हम सूक्ष्म मानते हैं वह वाह्य इन्द्रियों से व्यक्त भी होता है । इसलिए सूक्ष्म मन आँखों से जुड़ा है तो स्थिर आँखें चंचल हो उठती हैं और नहीं जुड़ा है तो चंचल आँखें स्थिर हो जाती हैं । कान को प्रिय नहीं तो हल्ला-गुल्ला भी सुनायी नहीं देता और कान को प्रिय है तो हलकी-सी आवाज भी ग्राह्य हो जायेगी ।

हम स्थूल इन्द्रियों से भीतर पहुँचेंगे जहाँ सूक्ष्म इन्द्रियों का जगत व्यापक रूप से विद्यमान है । वहाँ हमारा मिथ्या-भ्रम टूट जायेगा । सूक्ष्म जगत से समूचा शरीर सुनता है, समूचा शरीर देखने लगता है । एक अन्धा अपनी उँगलियों से पढ़ सकता है । तो एक साधक पाँचों इन्द्रियों का सूक्ष्म ज्ञान क्यों नहीं पा सकता ? साधक का शरीर पाँचों इन्द्रियों के विषयों का सूक्ष्म ज्ञान करने में समर्थ है ।

जो स्थूल इन्द्रिय-जन्य सुख संसारी के लिए साधक रूप है, वही इन्द्रिय-जन्य

सुख संयमी के लिए बाधक रूप है अतः साधक के लिए सूक्ष्म इन्द्रिय-जन्य बोध विशेष ज्ञान का हेतु है ।

इन्द्रिय-जन्य ज्ञान संसारी और संयमी दोनों को समान रूप से कभी नहीं हो सकता । दूध और नमक का मिलन कभी नहीं हो सकता यदि हो भी जाय तो दूध फट जायेगा । साधक इन्द्रिय-जन्य सुख का उपभोग कर ही नहीं सकता, यदि वह कर भी ले तो दूध की तरह फट जायेगा और अपने अस्तित्व को खो देगा ।

चिन्तन

१. किसी भी मानव को झूठे भ्रम में आकर घृणा की दृष्टि से न देखो वह भी भगवान का रूप है ।
२. शुद्ध आचार और शुद्ध विचार रखो क्योंकि आप ही अपने भाग्य के निर्माता स्वयं हो ।
३. हमारी व्यवस्था का मूल्यांकन हमारे भले-बुले कर्मों पर निर्भर है ।
४. शुष्क क्रिया कांडों की अपेक्षा जीवनोपयोगी साधना पर ध्यान देने से अतीन्द्रिय ज्ञान की प्राप्ति होती है ।
५. कोई भी मानव अपने जीवन में किसी व्यक्ति के दबाव में आकर सत्य का गला न घोंटे ।

⌘
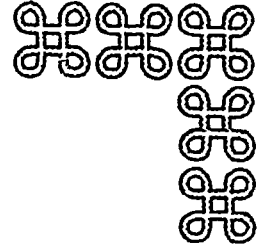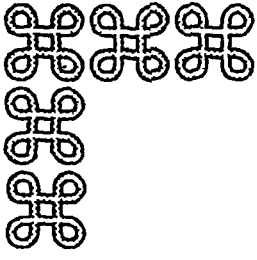
२४. "राइं दिवं जयमाणे, अप्पमत्ते समाहिए झाति ।"

अर्थ—रात और दिन प्रतिक्षण जागरूक रहने वाला अप्रमत्तयोगी, समत्वयोगी और ध्यानयोगी ही होता है ।
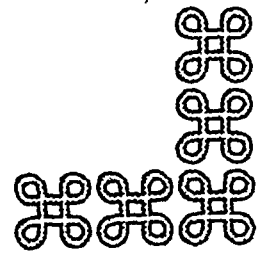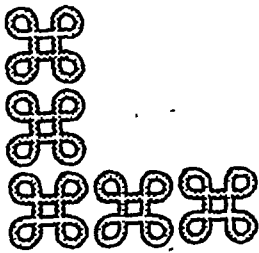
पराशक्ति-प्रयोग और परिणाम

२५. साधक अपनी साधना के द्वारा सही-सही बात वता सकता है और अंतर मन की आवाज सुन सकता है यह वात कहाँ तक सच है । यदि सच है तो क्या हम भी किसी प्रक्रिया के माध्यम से किसी हद तक इसमें सफल हो सकते हैं ?

प्रिय..........

युग-युग से हमारे प्राचीन ऋषि, मुनि, महर्षियों ने पराशक्ति के अस्तित्व एवं रहस्यों का अनुभव प्रगट किया है । आज वैज्ञानिकों के लिए भी परा शक्तियों के अस्तित्व की खोज के प्रयोग सफल हो रहे हैं. ।

अमेरिका में प्लेन की दुर्घटना से अकस्मात बेटे की मृत्यु होते ही हजारों कि.मी. दूर बैठी माँ का हृदय तड़पने लगता है क्यों ? अपने पति की मृत देह उठाते हुए लोगों को स्वप्न में देखती पत्नी आने वाली घटनाओं की अग्रिम सूचना प्राप्त करती है क्यों ? अपनी प्यारी-प्यारी बिटिया को ससुराल बिदा करने के पश्चात् कई बार बिटिया की आवाज को सुनकर माँ दौड़ने लगती है और पुनः जवाब भी देने लगती है क्यों ? कई बार शुभ या अशुभ घटना का पूर्वाभास शरीर के दायें या बायें भाग के फड़कने से हो जाता है क्यों ? इसका मूल उद्देश्य है पराशक्ति ।

हमारे भीतर वाणी की चार शक्तियाँ विद्यमान हैं, वैखरी, मध्यमा, पश्यंती और परा ! हर एक मानव के लिए यह सम्भव नहीं कि वह परा वाणी का श्रवण कर सके । इसके लिए साधना तथा आत्मशुद्धि की आवश्यकता है । आज साधना तो दूर की बात है, जीवन की नैतिकता भी खत्म हो रही है और उसका स्थान शोषण ने ले लिया है । दूसरी ओर शोषित की आवाज प्रचण्ड रूप ले रही है । आज का शासकीय तंत्र, दाँव-पेच, कूटनीति आदि कायदे-कानून अनैतिकता के सहारे चल रहा है ।

आज हम कितनी बार नकली और बनावटी वाणी का प्रयोग करते हैं । कितनी आत्म प्रवंचना कर रहे हैं । दूसरों को धोखा देकर आत्म संतोष पा

रहे हैं । सरकार व राजनीति के बड़े-बड़े कर्णधारों में आपसी समन्वय होना चाहिए, उसके विपरीत आपसी टकराव होता जा रहा है । देश में घटित होती घटनाओं, दुर्घटनाओं से लोग परिचित होने पर भी हंगामा मचाते हैं । पर सूरत कोई बदलना नहीं चाहता । कहते हैं चारों ओर अंधेरा है पर दीपक कोई नहीं जलाता । प्राइमिनिस्टर आने वाले हैं तो चारों ओर सजाया जाता है पर आंतरिक श्रद्धा से कोई स्वागत नहीं करता । भीतर के प्यार से कोई धन्यवाद नहीं देता ।

भीतर की आवाज मौन साधना की आवाज है । मौन साधना की आवाज परावाणी की शक्तियों को जन्म देती है । महावीर का मौन संसार में आत्मा को परमात्मा बनाने का मौन था । महात्मा गाँधी का मौन भारत को आजाद बनाने का मौन था । स्वामी रामकृष्ण परमहंस का मौन मानव को मानवता की राह पर ले जाने का मौन था । साहित्यकार वर्ड्सवर्थ का मौन काव्य को सजीव बनाने का मौन था ।

मौन द्वारा भीतर नाद श्रवण का अनुभव उद्भवित होता है । हम बाह्य आवाज को सुनते हैं । हजारों कोसों पर रहने वाले अपने परिजनों से, मित्रों से बेतार के तार के जरिये बात कर सकते हैं । किन्तु प्राचीन काल में ऐसे कोई साधन नहीं थे जिनसे हमारी बात दूसरों तक पहुँचाई जाय । जो साधक साधना करता था वह परावाणी द्वारा वाणी दूसरों तक पहुँचा सकता था उसी के विचार ज्ञात हो सकते थे । साधना में निष्णात व्यक्ति ध्यान की मुद्रा में अपने विचारों की तरंगों को दूसरों तक पहुँचाने में सफल हुए हैं । विना साधन साधक तरंगों के माध्यम से जिस वास्तविकता को जान पाता था, वही परावाणी का प्रभाव था ।

आज के पेरासाइकोलोजिस्ट टेलीपेथी का प्रयोग करते हैं वह परावाणी ही है । जिस साधक ने मानसिक चेतना को जाग्रत किया है, उसे वाणी की सहायता लेने की आवश्यकता नहीं होती है । वह मन ही मन समस्याओं का समाधान कर सकता है । मन ही मन पुनः उसी स्थान पर चीजों को लौटा भी सकता है । जब मन से कही हुई बात मन नहीं समझ पाता तब हमें बोलने की या किसी साधन की आवश्यकता होती है । किन्तु साधक वही होता है जो तरंगों को पकड़ लेता है और कौन कहाँ से क्या कहना चाहता है, वह जान लेता है ।

ग्रेट ब्रिटेन की जगुआर रेडियो कम्पनी द्वारा परावाणी के प्रयोग के माध्यम से ही आज एक नया आविष्कार हुआ है जाम प्रतिरोधी रेडियो का । जिसे युद्ध के समय काम में लाया जा सकता है । दूसरा यह रेडियो, जमीन, हवा और समुद्र में समान रूप से कार्य करने में सक्षम है ।

अब रैलेस टेलीफॉम ने हल्की ट्रांसमीटर और रिसीवर का विकास भी किया है । जिसे करोकोल भी कहते हैं । इस करोकोल की एक विशेषता यह भी है कि कई बार ये प्रति सेकण्ड पर अपनी ट्रान्समिशन फ्रीक्वेन्सी बदल सकते हैं । इसमें नये-नये संशोधन होते रहते हैं । ध्वनि और आवाज के करिश्मे जैसे—सचित्र फोन, वीडियो टेक्स, टेलीफैक्स और रेडियो पैगिंग आदि का आविष्कार विचाराधीन है ।

ऐसे तो हर एक मानव के स्वर प्रक्रिया की अपनी-अपनी कंपन संख्या (फण्डामेंटल फ्रीक्वेन्सी) होती है । जैसे पुरुषों की ८५ से १५० हर्ट्ज, स्त्रियों की १७५ से २५० हर्ट्ज और बच्चों की २०० से ३०० हर्ट्ज होती है । जैसे स्त्री-पुरुष और बच्चे तीनों की आवाजें भिन्न-भिन्न होती हैं वैसे ही ऋषि, मुनि, महात्मा हरेक साधकों की ध्वनि और आवाज की शक्ति भिन्न मिलती है । यह शक्ति ही मौन परावाणी है ।

प्रिय आत्म स्वरूप अनु !

जीवन में ध्वनि की सर्वोत्तम प्रबल ऊर्जा आत्म-विश्वास और आत्मज्ञान से निःसृत होती है । नादानुसंधान कराने वाली ऊर्जा मंत्र बन जाती है । मंत्र में शक्ति है, मंत्र तैराने वाला है किन्तु मंत्र के साथ साधक की एकाग्रता कहाँ तक पहुँची है, यह महत्व का प्रश्न है । एकाग्रता है तो मंत्र परावाणी का रूप धारण कर सकता है । स्थिरीकरण, एकाग्रता और सूक्ष्म विशुद्धता है तो मन के माध्यम से हमारी बात दूसरों तक पहुँचायी जा सकती है । मन के माध्यम से निकली हुयी तरंगों को या मानव स्वरयंत्र को वैज्ञानिकों ने लेरिंक्स या वायस-बॉक्स कहा है । हवा के प्रवाह से ये ध्वनि आकाश मण्डल में फैल जाती है । महापुरुषों के भीतर से निकली हुयी मंत्र वाणी साधक अपनी शक्ति के अनुरूप आत्मसात कर लेता है, और समाधान पा लेता है । आवश्यकता है आत्मसात करने पर पूरी पकड़ होनी चाहिए । विना पकड़ बात अधूरी रह जायेगी । मानव खाता है, पीता है, सोता है,

चलता है, जाता है, आता है, बोलता है इत्यादि जो भी प्रवृत्ति करता है हर प्रवृत्ति के साथ मन संयुक्त होना चाहिए, तभी वह प्रवृत्ति पूर्ण कर पायेगा । ठीक वैसे ही मंत्र एकाग्रता से सिद्ध किया जाता है । जो भी ध्वनि मंत्र या स्वर सिद्ध हो जाता है वही परावाणी कही जाती है ।

ऐसे तो परावाणी भी एक साधन है साध्य नहीं । यह प्राण शक्ति का प्रयोग है । भीतर से शब्द शक्ति विद्युत तरंगें पैदा करती हैं । इन तरंगों में रंग भी होता है । जैसा रंग होता है वैसा प्रभाव सामने साधक के प्रति होता है । अतीत की स्मृतियों का, वर्तमान के चिंतन का और भविष्य की कल्पना का विसर्जन होता है और एकाग्रता से मंत्र सूक्ष्मता का रूप धारण करता है और स्वभाव में स्थिर हो जाता है । मूल चेतना में मिल जाता है । शुद्ध परिपूर्ण हो जाता है । जिस मंत्र के साथ कोई संवेदना संयुक्त नहीं है वही मंत्र शुद्ध माना जाता है । हमारा मंत्र शुद्ध है तो पूर्णता स्वयं आयेगी । शुद्धता और पूर्णता का सम्बन्ध अनिवार्य है । परावाणी किसी भी शब्द, विकल्प, विचार या आचार से नहीं पकड़ी जा सकती । उसे पकड़ने का माध्यम है निर्विकल्प, निःशब्द, निर्विचार, निराकार शक्ति किसी एक हद तक इस अवस्था में रहने पर भी साधक इस शक्ति पुँज को अल्प मात्रा में प्राप्त करने में सफल होता है जिसके फलस्वरूप हमारे भीतर विशुद्ध विद्युत उर्जा तरंगित होती है और वही तरंगें दूसरों तक पहुँचकर कार्य-सिद्धि का हेतु बनती हैं । हम भी इसी प्रक्रिया के माध्यम से परावाणी की सिद्धि प्राप्त करने में सफल हो सकते हैं ।

चिन्तन

१. एक बार अपने कदम निर्विचार की पृष्ठभूमि पर स्थिर कर दो फिर देखो क्या होता है ।
२. निर्विकल्प एक ऐसा बिन्दु है जहाँ केवल प्रकाश ही प्रकाश है, अन्धकार का नाम नहीं ।
३. मन के साथ न जाने कितने विकल्प, कितनी कल्पनाएँ और कितनी भ्रान्तियाँ जुड़ी हुई हैं ।

४. हमारे भीतर एक ऐसा कम्प्यूटर है जो अच्छे बुरे का तत्काल हिसाब लगा देता है कि किसका क्या परिणाम है ।

५. निर्विचार का जो भी बिन्दु अनुभूति के स्तर पर पहुँचता है वही बिन्दु सिन्धु बन जाता है ।

⌘
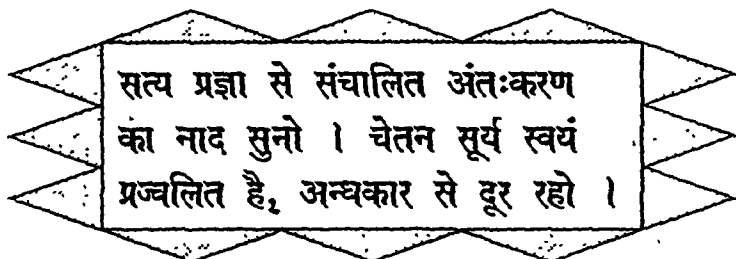
द्वितीय चरण

१

शारीरिक, मानसिक, आत्मिक उलझनें, गुत्थियाँ और उत्तेजना का स्वरूप

- भोग से ही रोग उत्पन्न होता है
- अनंत इच्छाओं का स्वामी इच्छाओं का दास
- उत्तेजित वृत्तियों का नियंत्रण-रूपान्तरण
- तनाव मुक्ति का उपाय—स्वभाव परिवर्तन
- जड़ और चैतन्य का विवेक ज्ञान ही आन्तरिक अनुभूति
- इन्द्रिय और अतीन्द्रिय ज्ञान का माध्यम है—सूक्ष्म शरीर
- व्यवहार का आदि बिन्दु राग और अध्यात्म का आदि बिन्दु वैराग्य
- अतृप्त वासना अनेक संवेगों की जननी है
- विकृति की व्यापकता से सावधान

⌘
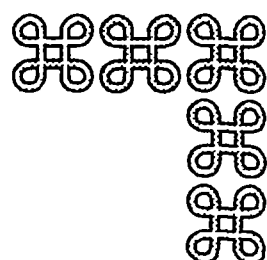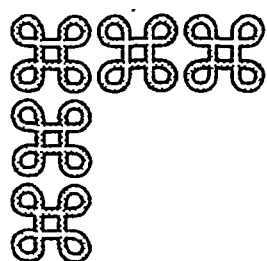
२५. "तओ से एगया रोग-समुप्पाया समुप्पज्जंति ।"

अर्थ—संचय होने पर भी योगकाल में मनुष्य के शरीर में रोग के उत्पात उत्पन्न हो जाते हैं अतः वह उसका भोग कर ही नहीं पाता ।
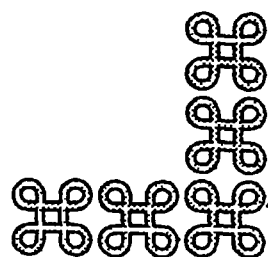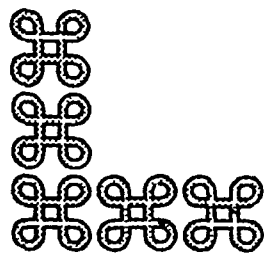
ममत्व से परे होने का उपाय

१. शरीर का ममत्व मुझे सताता रहता है । मैं इस ममत्व से परे होने के लिए प्रयत्नशील हूँ । दूसरों को उपदेश भी देता हूँ । पर मेरे शरीर में पैदा हुआ रोग मैं सह नहीं पाता हूँ क्या सहने का कोई उपाय है ?

आपसे अधिक भयंकर रोगी इस जगत में अनेक हैं, रोगी के दर्शन, रोगी की सेवा, और रोगी को शान्त्वना देने से अपने दुःख का पाचन जल्दी हो जाता है ।

प्रिय.........

स्थूल शरीर की उत्पत्ति होती है, और उसका विनाश भी होता है । शरीर का विकास कोशाणुओं से होता है । जहाँ जिस रूप में आवश्यकता है, वहाँ उस रूप में कोशिकाएँ निर्देश देती हैं । तैजस शरीर की शक्ति इन कोशिकाओं में फैली हुयी है । अरबों-खरबों की संख्या में ये कोशिकाएँ, तैजस-विद्युत तरंगों से तरंगित होती हुयीं, समूचा शरीर तंत्र का संतुलन बनाये रखने का कार्य करती हैं । इनके अपने अलग-अलग डिपार्टमेन्ट हैं । चोट पैर के अंगूठे में लगती है, खून उसमें से निकलता है, किन्तु वेदना समूचे पैर में है और भोगता समूचा शरीर है । यदि तू दुःख को दुःख मानता है, वेदना को वेदना के रूप में जानता है, और उससे मुक्त होने के लिए उपाय सोचता है, तो पैरों में दर्द है, उस समय अस्पताल में, एक्सीडेन्ट से टूटी हुयी टांग, बंधे हुए पत्थर को देखो । कराहते हुए उस मरीज को देखो । सिर-दर्द है ट्यूमर के मरीज को याद करो । वोमिट होती है एसिडिटी से घबराओ न । अलसर के रोगी को मिलते रहो । सफेद दागों से जिसका खूबसूरत चेहरा वदसूरत हो गया है, उसके आँसू को पूछो । आपका ममत्व

अवश्य दूर होगा । शरीर ही रोग का खजाना है । भोग काल में रोग के उत्पात उत्पन्न होते हैं । अतः रोग के पहले ही सावधान हो जाओ ।

⌘
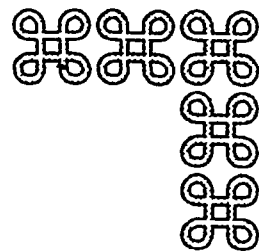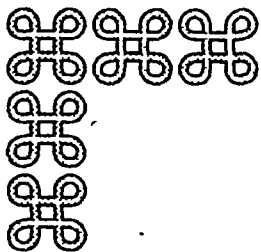
२६. अलं ते एएहिं ।

अर्थ—सावधान ! इन अतृप्त की आग को भड़काने वाले भोगों से तुझे क्या लाभ ।
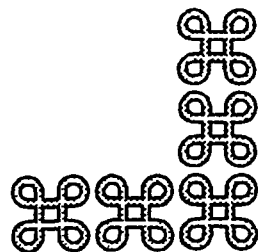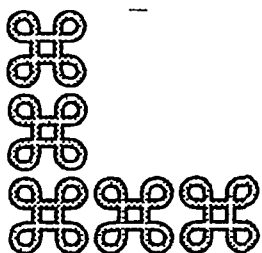
इच्छाएँ संतुष्ट हो सकती हैं ?

२. इच्छाओं की पूर्ति होने पर मन संतुष्ट होता है । पर, पुनः इच्छाएँ उभरती रहती हैं और मन उसकी पूर्ति की चाहना में भटकता रहता है, सब कुछ होने पर भी इच्छाएँ समाप्त क्यों नहीं होतीं; आये दिन नया रूप धारण करती ही रहती हैं तो क्या कर सकता हूँ ?

दुःख का स्वामी रोगी है
सुख का स्वामी भोगी है
किन्तु शान्ति का स्वामी योगी है ।

प्रिय.........

जहाँ इच्छायें होती हैं, वहाँ उसकी पूर्ति होती है ऐसा कभी नहीं होता है । इच्छाएँ मन में जाग्रत होती हैं, और पूर्ति पदार्थ की प्राप्ति में होती है । उत्पत्ति और पूर्ति दोनों भिन्न हैं, अतः इच्छा होने पर और उसकी पूर्ति न होने पर अभाव खलता है । जहाँ दुःख का संवेदन होता है, वहाँ पराधीनता के दर्शन होते हैं । शुद्ध, शान्त और स्वस्थ मन दासता की ओट में भयभीत होकर लुका छिपी का खेल खेलता है । मन पर भुक्त अभुक्त विकल्पों का प्रभाव अंकित होता है । इच्छा पूर्ति में सुख की आशा का जन्म होता है और अहं बुद्धि की पुष्टि होती है । फेक्ट्री है पर, बंद पड़ी है, दुकान है पर, शील लगी है । मैनेजर है पर, मालिक बनकर बैठा है, अहं की आग ने सब कुछ जलाकर खतम कर दिया, कामना की पूर्ति ने कामांधता को जन्म दिया, आवेगों की पूर्ति ने क्रोधान्धता को जन्म दिया, तृष्णा की तरंगों ने स्वार्थान्धता को जन्म दिया, आग बुझाना चाहते हो पर, पानी के स्थान पर पेट्रोल का उपभोग किया । आग बुझेगी या बढ़ेगी, पुत्र है पर, आवारा है, पुत्री है पर, विधवा है, स्त्री है पर, लड़ाकू है, खुद को केन्सर की बीमारी

है, गाड़ी है पर, ड्राईवर को टिकने नहीं देते । कुक है पर, रोज की लड़ाई होती है, हेल्पर है पर, किसी को काम पसन्द नहीं, याद रहे इच्छाएँ अनन्त हैं वह कभी समाप्त नहीं होतीं ।

⌘
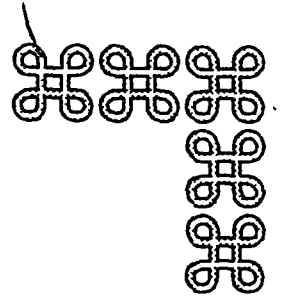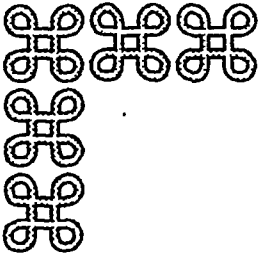
२७. "विमुक्का हुते जणा, जे जणा पारगामिणो ।"

अर्थ—जो साधक (विषय-दलदल के) परागामी होते हैं वे विमुक्त हो जाते हैं ।
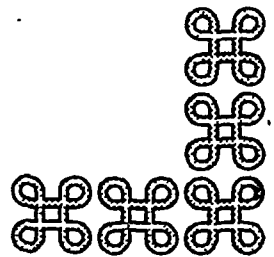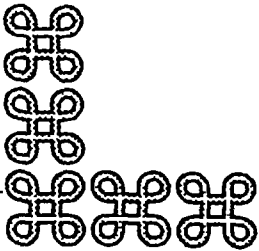
वृत्तियों का निरोध या दमन

३. वृत्तियों की गुत्थि में उलझा हुआ मानव क्या अपनी उत्तेजित वृत्तियों को एकाएक रोकदे ? मैं तो जैसे रोकने के लिए ब्रेक लगाने का सोचता हूँ तो इच्छाएँ डवल रूप में जाग्रत होती हैं । रोकना चाहता हुआ भी रोक नहीं पाता क्या ऐसी स्थिति में रोकना आवश्यक है ?

व्यक्ति और वस्तु दोनों की प्राप्ति हँसाती भी है और रुलाती भी है । हँसना और रोना दोनों ममत्व हैं, पर एक प्रिय है, दूसरा अप्रिय !

प्रिय.........

वृत्तियों का निरोध करने की अपेक्षा वृत्तियों का रूपान्तरण महत्व रखता है । खाना, पीना, सोचना, विचारना इत्यादि हर प्रवृत्ति इच्छाएँ, आशायें और अपेक्षाएँ रखती हैं यदि इच्छा या अपेक्षा की पूर्ति ना हो तो मानव को क्रोध, काम, ईर्ष्या आदि की उत्तेजना जाग्रत होती है । जो हमारे लिए अनुकूल है वह हो सकता है दूसरों के लिए ना भी हो, किन्तु हमारा मानसिक संतुलन विफल हो जाता है । मनोचिकित्सक सामान्य मानसिक विकारों का संतुलन स्वयं तक ही सीमित रखता है । किन्तु परामनोविज्ञान आत्मा पर अति सूक्ष्म विकृतियों की रज से जो आवरण होता है उसका भी नाश करता है । मूर्च्छावस्था में, कल्पना-तरंगों में, बहने वाला मानव विकृत रजों से मुक्त नहीं हो पाता । जिस प्रकार छांया को पकड़ना दुस्कर है, वैसे ही मूर्च्छा के लिए नियन्त्रण या अतिक्रमण दुष्कर है । अतः छाया के पीछे दौड़ा नहीं जाता किन्तु दिशा बदली जाती है, वैसे ही वृत्तियाँ पकड़ी नहीं जाती किन्तु आत्मज्ञान से बदली जाती हैं । विकृतियों का बदलता रूप वृत्तियों को अपने आप शान्त करता है । ड्रायवर जाग्रत है तो एक्सीडेन्ट होगा नहीं, टाइपिस्ट निष्णात है

तो बोर्ड देखने की आवश्यकता नहीं, माली श्रमसाध्य है तो बगिया सूखेगी नहीं, शिल्पी के हाथ चढ़ा पत्थर भगवान बन जाता है, नमकीले जल की भाप मीठा गन्ना बन जाता है, शीप के मुख का जल मोती बन जाता है। विषयासक्त मानव साधक के स्पर्श से पारगामी होता हुआ विमुक्त बन जाता है।

⌘
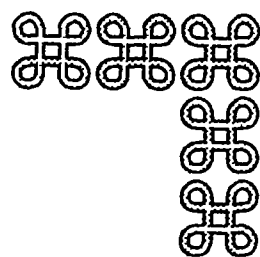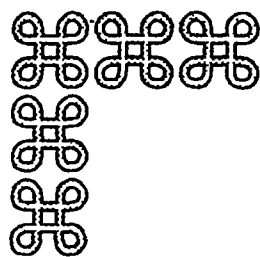
२८. अभिक्कंतं च खलु, वयं संपेहाए ।

अर्थ—अवस्था ज़रा की ओर जा रही है, यह देखर मानव चिन्ताग्रस्त हो जाता है ।
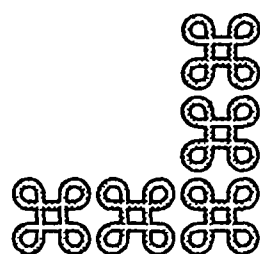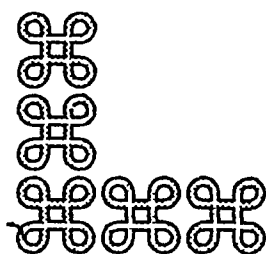
अवस्था एक परिवर्तन की दिशा

४. अवस्था के अनुरूप शरीर का परिवर्तन हो जाता है, शरीर के प्रति रागात्मक भाव बढ़ जाता है साथ ही इसका वियोग न हो जाय इसका तनाव दिमाग में रहता ही है तो इस तनाव से मुक्त कैसे हो सकते हैं ?

देह से देही जुदा है, बिम्ब से प्रतिबिम्ब जुदा है, प्रतिबिम्ब को बिम्ब का मूल्य नहीं दिया जा सकता, बिम्ब, बिम्ब है । प्रतिबिम्ब , प्रतिबिम्ब है ।

प्रिय.........

अवस्था हमारे व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करने का साधन है । सर्वप्रथम बाल्यावस्था होती है, जिसमें कोमलता, सौम्यता और दूसरों पर निर्भरता पायी जाती है । किशोरावस्था में कुछ बौद्धिक स्तर जाग्रत होने से तर्क, वितर्क कुछ पाने की जिज्ञासा आदि पाया जाता है यौवन अवस्था विशेष रूप में काम, क्रोध, मद, भत्सर और अंह से घिरी होती है । अवस्था का आदि बिन्दु राग है और अन्तिम बिन्दु भी राग है । तनावग्रस्त जीवन में राग की प्रमुखता मुख्य रूप से पायी जाती है किसी भी वस्तु से जुड़ जाना योग है । हम शरीर के प्रति ममत्व के सूत्र से जुड़े हुए हैं । शरीर का ममत्व हमें भयभीत बनाता है, कहीं शरीर छूट न जाये ।

ज़रावस्था इतनी जटिल नहीं जितना जटिल है ज़रावस्था का भय, शरीर का वियोग होना इतना दुःखदायी नहीं जितना वियोग का भय दुःखदायी है । अवस्था जरा की ओर जा रही है, यह देखकर मानव चिन्ताग्रस्त होता है । किन्तु वह उतना दया के पात्र नहीं । केन्सर, एड्स, अलसर, प्रेसर, डायबिटीज, दम आदि रोगों से ग्रसित दुश्मन भी है, वह दया के पात्र हैं । रोगी को

देखकर उसके दर्द को मुक्त करने के भाव जाग्रत करो । वाणी से सहानुभूति और सान्त्वना के दो शब्द बोलकर उसे दर्द से हल्का करो ।

काया से सेवा कार्य करके अपना योगदान सीखो । तनाव से अवश्य मुक्त हो जाओगे ।

⌘
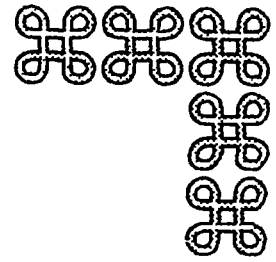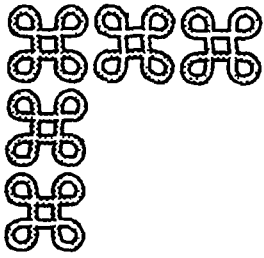
"जे एगं जाणइ, से सव्वं जाणइ,
जे सव्वं जाणइ, से एगं जाणइ ।"

अर्थ—जो एक को जानता है, वह सबको जानता है ।
जो सबको जानता है, वह एक को जानता है ।
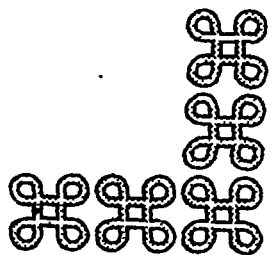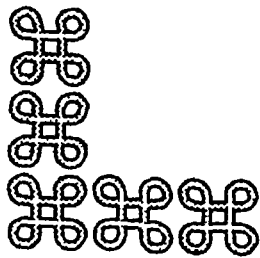
अभिव्यक्ति का माध्यम क्या ?

५. प्रियता और अप्रियता, तनाव और चिन्ता, शोक और आनन्द की अभिव्यक्ति का माध्यम शरीर है। सुख और दुःख को भी शरीर भोगता है, यह प्रत्यक्ष प्रमाण है। न तो आत्मा के दर्शन होते हैं और न आत्मा अभिव्यक्ति का माध्यम है तो आत्मा को कर्त्ता और भोक्ता क्यों माना जाता है ?

जीवन-जड़ और चैतन्य तत्व का एक विशिष्ट एवं व्यवस्थित संयोगी की अवस्था है। अवस्था मिलती भी है और विखरती भी है।

प्रिय·········

स्थूल शरीर की रचना, मरम्मत, पुष्टि या शुद्धि के विषय में यदि सोचा जाय तो, संचालन के पीछे कोई अज्ञात शक्ति अवश्य प्रतीत होती है। वैज्ञानिकों के दिमाग में भले ही यह रासायनिक प्रक्रिया हो, किन्तु वे भी इतना अवश्य जानते हैं कि—शरीर स्थूल है, पंच भूतों का पुतला है, और उसमें जो अज्ञात शक्ति है वह सूक्ष्म है। जो सूक्ष्म है वही चैतन्य तत्व है और वही आत्म तत्व है। अतः स्पष्ट है कि आत्मतत्व ही स्थूल शरीर का संचालक है। आत्मा है तो शरीर है, आत्मा ही नहीं तो अकेले शरीर में न तो कोई शक्ति है, न अपना कोई विकास है।

जो कुछ है, वह आत्मा ही है। आत्मा ही अध्यवसाय योग और शरीर से संलग्न है। अतः जव तक शरीर और आत्म' संलग्न हैं, तव तक कर्म और कर्मफल हैं। कर्म का कर्ता और सुख-दुःख की अभिव्यक्ति का भोक्ता भी है अव सवाल इतना ही है—

साधक को सर्वप्रथम यह सोचना है कि—बंधन का मूल कारण क्या ? पदार्थ परिस्थिति व्यक्ति या व्यवहार में पलते हुए मानव का कहाँ अवरोध होता है, कहाँ पुष्टि

होती है । यह संशोधन का विषय है । अहं और भ्रम के तराजू में तुला हुआ मानव वास्तविकता का राज किस हद तक समझ पाया है ? जिसने आत्म-तत्व को एक बार जान लिया उसके लिए न कोई रागात्मक स्थिति रहेगी न द्वेषात्मक स्थिति रहेगी क्योंकि— वह तो समभाव में जिन्दगी जीता है ।

⌘
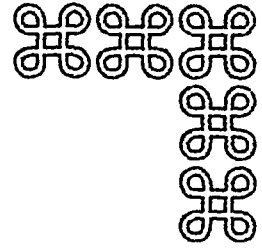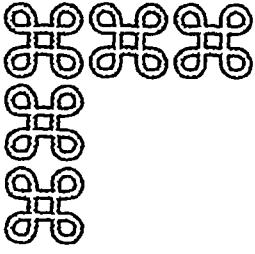
२६. भोगामेव अणुसोयंति ।

अर्थ—अजितेन्द्रिय पुरुष भोग के विषय में ही सोचते रहते हैं ।
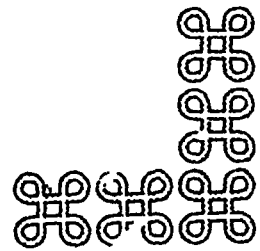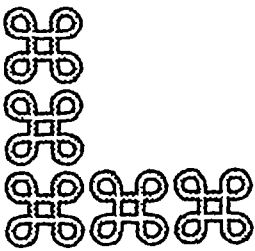
मूल्यांकन का मूल्यांकन

६. अनेक विद्वानों का दृष्टिकोण ऐसा मिलता है कि इन्द्रियों के द्वारा जो ग्राह्य है वही ज्ञान का विषय है । अतीन्द्रिय ज्ञान की व्याख्या, विवेचन, विश्लेषण या मूल्यांकन कहाँ तक सच्चाई की परिधि में आवद्ध है पता नहीं, अतः हम इन्द्रिय जगत का ही मूल्यांकन क्यों न करें ?

प्रिय.........

इन्द्रिय ज्ञान यह बहुत बड़ी उपलब्धि नहीं है अतीन्द्रिय चैतन्य शक्ति है तो ही इन्द्रिय शक्ति का मूल्यांकन है । इन्द्रियाँ तो साधन मात्र हैं, साधन कभी भी साध्य नहीं होता । इन्द्रिय जगत की हर क्रिया और प्रतिक्रियात्मक होती है, क्योंकि क्रिया और प्रतिक्रिया मनःस्थिति से संचालित होती है । मन विचारों से जुड़ा हुआ है । विचार भावों से जुड़े हुए हैं । भाव अध्यवसाय से जुड़े हुए हैं । अध्यवसाय तैजस शरीर से जुड़ा है । तैजस शरीर कार्मण से सम्बन्धित है । कार्मण चैतन्य से जुड़ा हुआ है । इस प्रकार स्थूल और सूक्ष्म, सूक्ष्म और स्थूल नेगेटिव और पोजीटिव दोनों तार जुड़े हुए हैं । अब सवाल है इन्द्रियों का तो इन्द्रिय शक्ति एक ओर आत्म-शक्ति से जुड़ी है, तो दूसरी ओर शरीर शक्ति से जुड़ी है । शरीर और आत्मा के द्वन्द्व में विजय होती है आत्मा की वाह्य जगत को ग्राह्य करने में भले ही इन्द्रिय जगत का मूल्यांकन हो किन्तु शरीर शक्ति में भी आत्मशक्ति ही विद्यमान हैं, शरीर शक्ति की अपेक्षा आत्मशक्ति अनंतगुणा अधिक है । यंत्र से अधिक मंत्र की शक्ति है । अन्ध श्रद्धा की मारक शक्ति से आस्था की तारक शक्ति

> इन्द्रिय-वासना के पीछे समय खोया । धन के पीछे प्यार खोया । सामग्री के पीछे साधना खोयी । निंदा के पीछे भक्ति खोयी !

कई गुना अधिक है । परिधि की ओर देखने से मौलिकता का पतन होता है । परम केन्द्र की ओर देखने से मौलिकता का मूल्यांकन होता है । अतः सावधान हो जाओ । अतीन्द्रिय शक्ति प्राप्त हो जायेगी ।

⌘
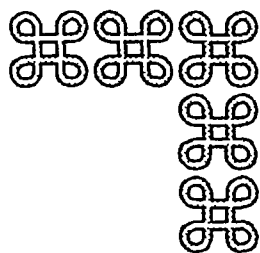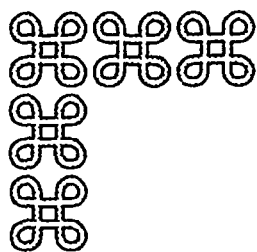
३०. दोहिं अंतेहिं अदिस्समाणे ।

अर्थ—साधक राग और द्वेष—इन दो अंतों से दूर रहे ।
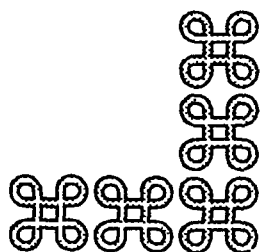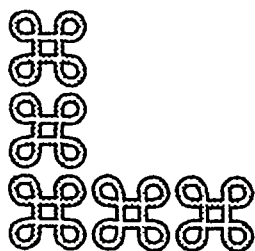
लहर अन्दर और बाहर

७. सामाजिक होने से अनेक व्यवहार आवश्यक हैं । कुछ नियंत्रण योग्य होता है, तो कुछ दवाव योग्य । कुछ का दमन किया जाता है, तो कुछ प्रिय और अप्रिय होता है । इन सारी वातों को हम सहते हैं, तो क्या इस सहने को अध्यात्म कहा जाता है ?

यूहीं कोई मिल जाता है
सर राह चलते चलते पर
किस्मत वाला ही उठ पाता है
अंधकार से गिरते गिरते ।

प्रिय·········

अध्यात्म और व्यवहार ये दोनों उतने ही भिन्न हैं, जितने एक सरिता के दो तट और दोनों उतने की निकट हैं जितने दोनों तटों के वीच एक सरिता । निरपराधी पकड़ा जा रहा हो, स्त्री का वलात्कार हो रहा हो, कार के नीचे प्राणी की हत्या हो रही हो, कोई पानी में डूब रहा हो, कोई खाई में गिर रहा हो, कोई वेकसूर मारा जा रहा हो, इन सवकी सुरक्षा करना ही तो धर्म है । हमारी नियन्त्रण की शक्ति है, हमारा विवेक । हमारी दमन की शक्ति है, हमारा विश्वास । और जो दवाव है वह है हमारे संस्कार ।

प्रिय और अप्रिय
अच्छा और बुरा

हमारी दृष्टि में है सृष्टि में नहीं आध्यात्म कोई नियम में वंधा हुआ नहीं है । वह तो चैतन्य दीपशिखा का रूप है । वह कोई स्टील फोटोग्राफ की तरह जड़ नहीं है । वह तो भीतर की लहर है लहर अनेक होती हैं । वाहर की लहरें व्यवहार होती हैं । भीतर की लहरें अध्यात्म होती हैं । दोनों समुन्दर से उठी हैं कोई खीर समुन्दर से तो खीर प्रशान्त सागर से । कोई काले समुन्दर की तो कोई खारे समुन्दर की । इन विकल्पों की लहरों के द्रष्टा वनो । अध्यात्म आपके साथ है । ꣼
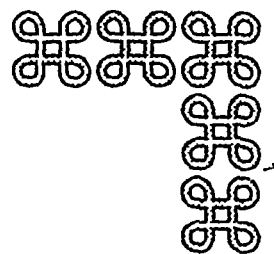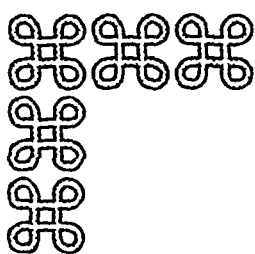
३१. कामकामी खलु अयं पुरिसे ।

अर्थ—यह पुरुष काम-कामी है—काम-भोगों की कामना करने वाला है ।
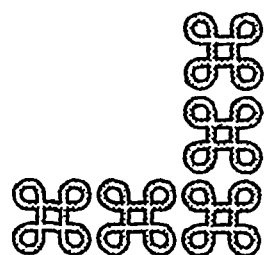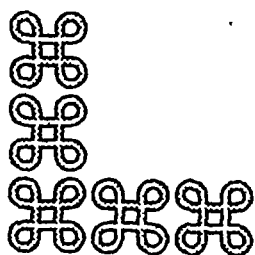
वासना की तृप्ति या पूर्ति

८. वासना की तृप्ति तो वासना की पूर्ति से ही होती है । उत्तेजित वनी हुयी कामनाओं की पूर्ति करना प्राकृतिक नियम होने पर भी आपके अनुसार वह त्याज्य है तो क्या हमें कामभोग का उपभोग करना चाहिए या उपेक्षा करनी चाहिए या विरक्त रहना चाहिए ?

राग का रागी वासना का भिखारी है और राग का त्यागी साधना का स्वामी है साधना की एक ही चिनगारी वासना का विनाश है ।

प्रिय.........

जब तक वासनाएं शान्त नहीं होती हैं, तब तक विरक्ति की बातें करना गलत है । हमारे इस स्थूल शरीर में एक गोनाड्स ग्रन्थि है उत्तेजित वासनाओं का या कामुक भावनाओं का स्राव उस ग्रन्थि से स्रवित होता है ।

इस स्राव के लिए नियंत्रण, दमन या निरोध करने की अपेक्षा, शोधन की प्रक्रिया अत्यंत महत्त्वपूर्ण है । भोग का उपभोग होने पर भी विरक्त शोधन है पानी पानी है और बरफ भी है । जब तक पानी पानी है वह तरल है जैसे ही शोधन हुआ पानी जमता गया और ठोस रूप धारण करने लगा वासना का प्रवाह विरक्ति से अपने आप रुक जाता है । समस्त कामनाओं की जड़ें अपने आप शान्त हो जाती हैं । उभरती हुयी विकृतियों को प्रकृति मानना पागलपन है । क्या आप जानते हो;

एक सत्ताधीश आदमी कितना विकृत होता है । क्या वह अपने दिमाग को संतुलित रख सकता है ? क्या वासना से विक्षिप्त मन और रुग्णावस्था को कोई सलामत बचा सकता है ? हमारी आनन्द का अनुभव करने की क्षमता और पात्रता कम हो रही है । हमारे आनन्द का मूल्य वासना में

परिवर्तित हो गया है । अतः आनंद का मूल्य समझो विरक्ति समझ जाओगे वासना महा भयंकर है । उसका उपभोग अनेक प्राणों का अतिपात कराता है ।

⌘

"वयो अच्चेइ जोव्वणं व"
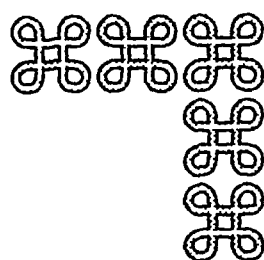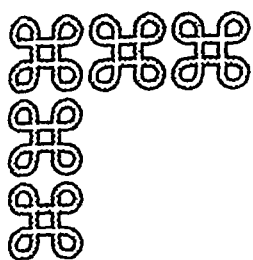
अर्थ—अवस्था वीत रही है और यौवन चला जा रहा है ।

यौवन की मस्ती में

प्रिय.........

भोग के लिए यौवन ही उचित अवस्था है, यह तेरा भ्रम है । यौवन के लिए तो भोग नहीं योग की अवस्था उचित है । यौवन चला जायेगा तो वृद्धावस्था तो आयेगी ही ।

प्रत्येक अवस्था में यौवन को जाता हुआ देखो, आता हुआ नहीं । व्यतीत होने वाला अतीत सन्मुख है तो सुख में आसक्ति और दु:ख में भय कभी नहीं होगा, तथा विषय और वासना अपने आप दुर्बल हो जायेगी । भोग का पराजय होगा । और योग एवं विराग सबल और जाग्रत होगा । कामुकता से विकृतियाँ जाग्रत होती हैं विकृतियाँ सारे शरीर में असन्तुलन पैदा करती हैं । जितनी विकृतियाँ होंगी उतने रोग, दर्द, पीड़ाएं, तीव्रता से भोगने पड़ेंगे । दुख का जितना तीव्र अनुभव होगा संवेदना उतनी ही तीव्रता धारण करेगी । असंतुलित ग्रंथि तन्त्र से स्त्रावित संवेगों और आवेगों से क्या नहीं कर सकता ? इसी कारण नेपोलियन वाटरलू का युद्ध हार गया था । रावण और दुर्योधन जैसे महारथी की शक्ति का ह्रास हुआ था ।

कामभोग गन्ने के रस की तरह मीठे लगते हैं किन्तु, गन्ने में यदि मीठापन न मिले तो उसे फेंक देने वाला मानव वृद्ध होने पर भी काम भोग से निवृत्त होना नहीं चाहता । ❋

६. जो भुक्त भोगी है उसके लिए तो त्याग सरल है किन्तु यौवन की मस्ती में उत्सुक युवा को कामनापूर्ति के लिए किसी भी परिस्थिति में रोकना नहीं चाहिए क्योंकि भोग के लिए यौवन ही एक उचित अवस्था है । त्याग के लिए नहीं ।

अपनी प्रियतमा के प्यार में मर मिटने वाले लाखों युवा मिल सकते हैं पर धर्म के नाम पर मिटने वाले कितने ?

२

पदार्थ-प्रवृत्ति-परिग्रह का नियंत्रण-एक जटिल समस्या

- संपत्ति की समस्या का समाधान—उपाय और उपयोग
- भूल की खोज स्थायी उपचार है
- प्रियता का संवेदन जनम जनम का संचय
- रागात्मक संस्कार का विसर्जन है अनित्यता
- अनुभव की चेतना जगाना—प्रसन्नता है
- आत्मज्ञान का अनुभव समय की सावधानी
- पदार्थों का मूल्यांकन भीतर का आक्रमण
- शान्ति शोधन की प्रक्रिया है भीतर चले जाओ ।

⌘
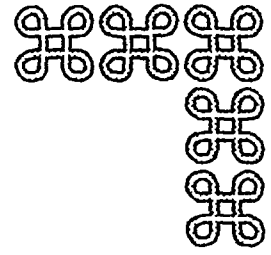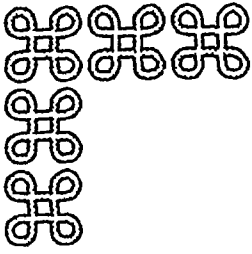
३२. "णाइवाएज्ज कंचणं ।"

अर्थ—पुरुष किसी के प्राणों का अतिपात न करे ।
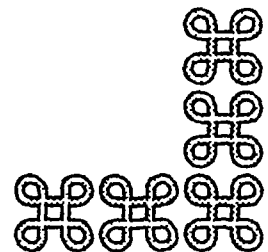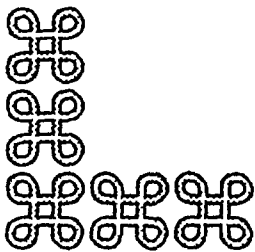
सम्पत्ति सम्पत्ति है विपत्ति नहीं

१०. हमारे पास सम्पत्ति है तो हम संसार का मजा लूट सकते हैं। यदि आपकी तरह सम्पत्ति विहीन जीवन है तो हमें कौन पूछता है ? आपके लिए सम्पत्ति आपत्ति है किन्तु हमारे लिए तो सम्पत्ति ही सर्वस्व है तो क्या सम्पत्ति को आपत्ति माने या सर्वस्व ?

आवर्तों के बीच में रहा हुआ केन्द्र बिन्दु आवर्तों के अधीन अवश्य है किन्तु आवर्तों के बीच में सुरक्षित भी उतना ही है।

प्रिय.........

यह केवल तेरा ही प्रश्न नहीं है यह अनेक मानवों का प्रश्न है। सही मायने में इसका उत्तर भौतिक सुख का उपभोग है। सम्पत्ति का उपभोग समझने वालों के लिए न तो सम्पत्ति आपत्ति है और न ही सम्पत्ति सर्वस्व है किन्तु सम्पत्ति मात्र एक साधन है, जिन्दगी जीने का। सम्पत्ति विहीन मानव ही दुःखी है ऐसा कोई नियम नहीं। जो दुःख को पचाना जानता है वह दुःख में दुःखी नहीं और जो पचाना नहीं जानता है वह तो सुख में भी दुःखी है। जिनके मानस में वासनाओं की अतृप्त आग जल रही है, ज्वलेसी का धुआं छाया हुआ है वहाँ सम्पत्ति है तो भी विपत्ति है क्योंकि आपस में वही सम्पत्ति संक्लेश को जन्म देती है वासना की पूर्ति सम्पत्ति के बल पर होगी इसी आशा में मानव सम्पत्ति के लिए कोर्ट, कायदा-कानून वकील जज इत्यादि के आवरण में छिपा रहता है। सम्पत्ति के उपभोग ने डॉक्टर, दर्द, दवा, होस्पीटल सब कुछ बता दिया अतः इतना याद रखना कि—

भोग महा भयंकर है। इसका उपभोग करने के लिए मानव अनेकों के प्राणों का अतिपान करता है। भोग और हिंसा दोनों

ही एक ही केन्द्र के दो बिन्दु हैं । अतः

जहाँ भोग है वहाँ हिंसा है
और जहाँ हिंसा है वहाँ दुःख है
जो आपत्ति में भयभीत होता नहीं
जो संपत्ति में आपका होता नहीं
वह त्यागी.
और जो होता है वह रागी

⌘
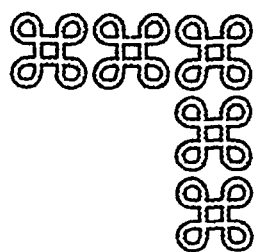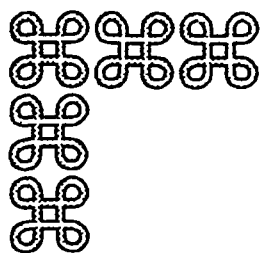
३३. "अरइं आउट्टे से मेहावी" । "खणंसि मुक्के ।"

अर्थ—जो अरति का निर्तन करता है, वह मेधावी होता है । अतः वह क्षण भर में कामनाओं से मुक्त हो जाता है ।
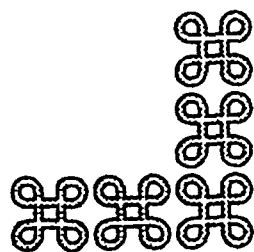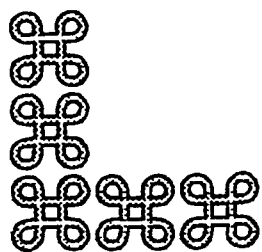
सफलता की सफलता

११. व्यक्तिगत समस्या की तरह सामूहिक समस्या भी व्यापक रूप से विद्यमान है । कोई सर्वथा शान्त, स्वस्थ एवं तनाव-मुक्त है, ऐसा स्पष्ट नजर नहीं आता है । भोग के साधन इतने अधिक होने पर भी कोई सफलता ही नहीं वजाय दुविधाएं, तनाव और अशान्ति ही अशान्ति नजर आती है क्या कारण ?

प्रिय.........

संसार में सभी इन्सान सफलता के लिए तड़पता है अपनी जितनी अपेक्षाएं हैं उतनी किसी की भी पूर्ण न हुई है न होंगी फिर भी आश की श्वांस रुकती नहीं नैतिकता की आशा निष्फल है क्योंकि नैतिकता गुणात्मक परिमाण है । लाख मिलते हैं तो करोड़ों की प्राप्ति में सफलता मानी जाती है । जहाँ भी जाना है वाहन मिल जाते हैं फिर भी अपनी कार है तो सफलता है, किराये पर रहने के मकान अनेक हैं पर सफलता अपने मकान को बसाने में है । अकेले आये हैं और अकेले जाना है, फिर भी अच्छे साथी हैं तो सफलता है । दुर्गुणी निष्फल मानव के दुर्गुणों का अवलोकन कर, क्योंकि क्रोधी पति की पत्नी मार खाती है, रोती है, चीखती है, क्या उसकी निष्फलता सुनकर, पाई पाई के लिए लड़ने वाले कृपण की निष्फल रफ्तार देखकर, इधर-उधर गटरों में गिरते हुए शराबी की निष्फल हालत को पाकर, कोई मानव अपने आपको संभालता है ? जो आपने आप को संभालता है, निश्चय ही जीवन में वह सफलता पाता है । जो चैतसिक उद्वेग का निर्वतन करता है, वह क्षणभर में मुक्त हो जाता है, और अपने जीवन को सफल बना लेता है ।

वही कार्य सफल है जो विछड़े हुए हृदय को मिला दे, वही कार्य सत्य है जो मूल्यहीन का भी मूल्यांकन करे ।
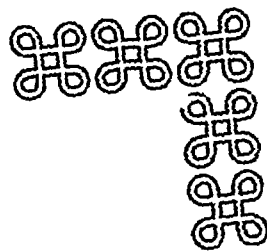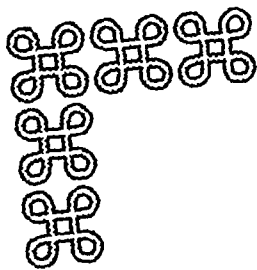
३४. "पाव-मोक्खोत्ति मण्णमाणे ।"

अर्थ—कोई यज्ञ, वलि आदि से पाप की मुक्ति मनाता हुआ हिंसा का प्रयोग करता है ।
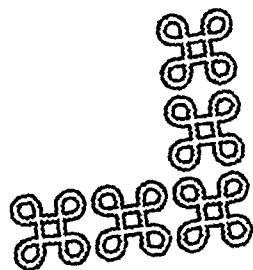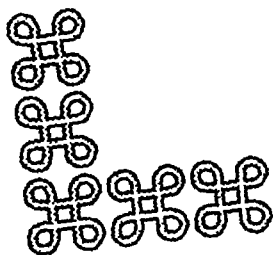
महत्त्व का मूल्यांकन

१२. इस संसार में, किसी के लिए सम्पत्ति का महत्त्व है तो किसी के लिए प्रतिष्ठा का। किसी को सत्ता प्रिय है तो किसी को स्त्री। इस प्रियता के लिए पाप तो करना ही पड़ता है। तो क्या इसे हम महत्त्व का है, ऐसा समझें या पाप समझें ?

गुणीजन तो मिलते हैं पर गुणानुरागी ढूंढने पर भी नहीं मिलते हैं। खैर वर्तमान स्थिति भी विषम है, गुणीजन की बढ़ोती हो जाय तो भी प्रशंसनीय है।

प्रिय.........

जिन पदार्थों का संग्रह भोगियों के लिए मूल्यवान है वही पदार्थों का परिग्रह त्यागियों के लिए मूल्यहीन होता है। रोग का मूल बेकाबू जिह्वा है, क्रोध का मूल बेकाबू वासना है, भोग का मूल बेकाबू इच्छा है, पाप का मूल बेकाबू लोभ है, इन्हीं दोषों से भय का समुन्दर दूर सुदूर तक फैला हुआ है। चिन्ता की आग चारों ओर से जलाती है। सम्पत्ति, सत्ता, सुन्दरी और प्रतिष्ठा के पीछे, दुश्मनावट, अविश्वास, अनियंत्रण और विकृत मनोवृत्ति सीमाहीन हो जाती है। कंट्रोल के परे हो जाती है। तब तक ब्रेक लगाने पर भी एक्सीडेंट हो जाता है। इम्पाला और मर्सिडीज कार होने पर भी धक्के मारकर चलाना पड़ता है, घर पर पकवान होने पर भी अच्छा खाना पसंद नहीं, होटलों का बिल भरना पड़ता है। इस प्रकार होटल, कैबरे क्लब, पार्टियां, मस्कती मार्केट के व्यापार चारों ओर धूम मची है पाप, पाप और पाप। आँखों में लगा हुआ कण, पैरों में लगा हुआ शल्य और दांतों में फंसा हुआ तिनका क्षण मात्र भी नहीं चैन लेने देता। जैसे टूटे हुए दिल को एक छोटा-सा वाणी का धक्का भी लग जाय।

⌘
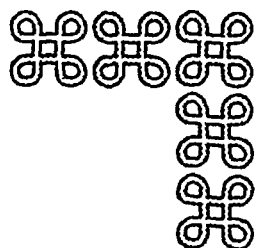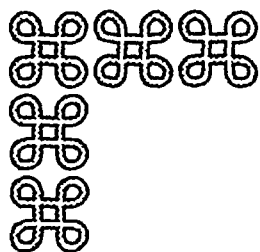
२५. "दुक्खेण मूढे विप्परियासुवेइ ।"

अर्थ—वह उस दुःख से मूढ़ होकर विपर्यास को प्राप्त होता है । सुख का अर्थी होकर दुःख को प्राप्त होता है ।
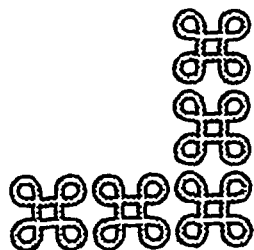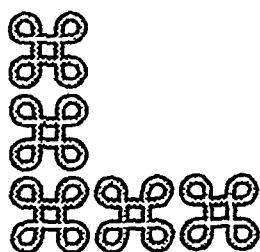
आकर्षण का केन्द्र-पदार्थ

१३. सदियां बीत गईं परिग्रह की बातें सुनते-सुनते फिर भी संपत्ति का बटवारा नहीं चाहते । हमें उसमें से कुछ भी नहीं चाहिए फिर भी हमारा लगाव उस धन से मुक्त नहीं हो रहा है; क्या कोई उपाय है ?

भाव और आवेग घटना, अवस्था और परिस्थिति के साथ-साथ ज्वार-भाटे की तरह संसार में फैले हैं ।

प्रिय.........

हमारा आकर्षण, व्यक्ति पदार्थ और परिस्थिति से जुड़ा हुआ है । किन्तु यह आकर्षण स्थूल आकर्षण है । इस आकर्षण में प्यार भी है और घृणा भी है । हम व्यक्ति और पदार्थ से कभी प्यार तो कभी घृणा करते हैं प्यार और घृणा दोनों वृत्ति हैं । परिस्थिति के अनुकूल वृत्तियां उत्तेजित और शान्तरूप में रूपांतरित होती है । जब तक प्यार भरा व्यवहार है, तब तक परिस्थिति जटिलता का रूप धारण नहीं करती । हमें अपनी परिस्थिति को व्यवहार तक व्यवहार को हर समस्या तक, हर समस्या को अपने विचारों तक, हर विचारों को अपने भावों तक और हर भावों को आचरण तक पहुंचाना है । किन्तु बेट्समेन का जैसे बोल देखकर खेलने को जी ललचाता है वैसे भोग ग्रस्त मानव पदार्थों को देखते ही आकर्षित हो जाता है । समय को देखकर सावधानी बरतना, भोगी के लिए दुष्कर है । अतः पदार्थों के लिए वे कभी आक्रमण करता है, तो कभी अनुकरण करता है । कभी संरक्षण करता है, तो कभी विनाश करता है । इस प्रकार अज्ञानी जीव दुःख भोगता है । परिग्रह का ग्रह नवगृहों में सबसे जटिल है उससे परे होना कठिन होता है ।

उसके शोधन की प्रक्रिया के दो महत्त्वपूर्ण सूत्र हैं— १. अनित्यता २. मैत्री । भावना का नित्य प्रति चिन्तन, मनन और अध्ययन ग्रसित मानव को मुक्त करने में सफल है । अतः अनित्यता और मैत्री की भावना संग्रहवृत्ति की सारी जड़ों को उखाड़ फेंकने में समर्थ है ।

⌘
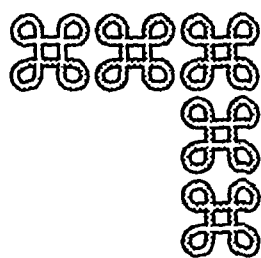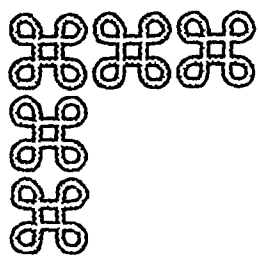
३६. "भोगामेव अणुसोयंति"
"आसं च छंदं च विगिंच धीरे" ।
"तुमं चेव तं सल्लमाहट्टु ।"

अर्थ—भोगासक्त मानव भोग के विषय में ही सोचता रहता है । पर आशा और स्वच्छन्दता के शल्य का सृजन तूने ही किया है । ऐसा सोचता भी नहीं ।
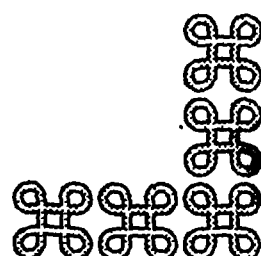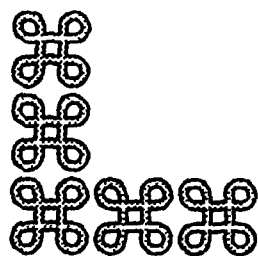
प्रयास फिर भी परास्त

१४. मैं सबको खुश रखने का प्रयास करता हूँ । घर में एक भी बात सुनने को कोई तैयार नहीं; हर कोई अपनी मनमानी चाहता है । अपने इच्छानुसार जीना पसंद करते हैं, जहाँ जाना है वहाँ जाके ही रहो, जो खाना है खा के ही जियो, जो पहनना है इच्छा पूरी ही करो, मैं किसी को खुश नहीं कर सकता; बताओ क्या कर सकता हूँ ?

नाशवान पदार्थों का अविश्वास आस्तिकता है शाश्वत पदार्थों का उपहास नास्तिकता है ।

प्रिय.........

न तो तेरे प्रयास में कोई कमी है और न कोई दुर्भाव है, पर युग का प्रभाव प्रत्येक भोगासक्त मानव पर हावी हो गया है । सच्चा फिर भी स्वीकार नहीं, अच्छा फिर भी पसंद नहीं, जो मैं करता हूँ वही होना चाहिए, मैं वह करूंगा जो आज तक किसी ने नहीं किया है । ऐसा मिथ्या अहं मानव को किंकर्तव्यविमूढ़ बना देता है । कर्तव्य के आवरण में छिपी हुयी स्वार्थवृत्ति तेरी खुशनसीबी में शामिल कहाँ हो सकती है; इसलिए तेरा दिल टूट गया है अपना प्रिय पात्र ही प्रिय है, घर का हर सदस्य नहीं । प्रिय पात्र के लिए जो सोचा जाता है वह अप्रिय पात्र के लिए नहीं सोचा जाता फलतः अप्रिय पात्र प्रतिक्षण घायल होता जाता है । दिवारों की दरारें मिट सकती हैं, फटा हुआ कपड़ा सिया जाता है, पर दिल की दरारें या टूटा हुआ मन जुड़ना मुश्किल है । साथी और सहयोगी को ऐसा बोध ही कहाँ कि मेरे गलत व्यवहार का परिणामं क्या होगा ? अच्छा तेरी जिन्दगी का तू मालिक है; पारिवारिक प्यार मिले या न मिले, व्यक्ति अनुकूल हो या प्रतिकूल, कोई प्यार करे या ठुकरा दे, पर तेरी प्रसन्नता कभी न बिखरे यही कामना । ॐ
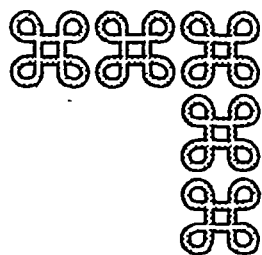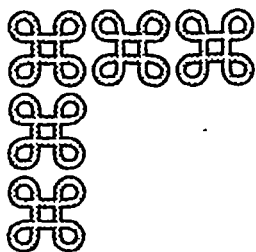
३७. "णत्थि कालस्स णागमो ।"

अर्थ—मृत्यु के लिए कोई भी क्षण आ सकता है ।
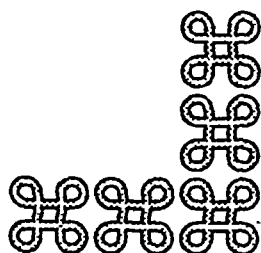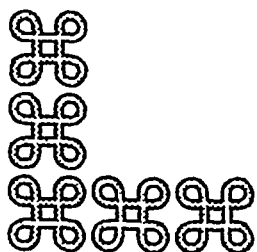
समय की त्वरित गति

१५. हर प्रवृत्ति त्वरित गति से होती है । एक मिनट का भी समय नहीं; ऐसे युग में एक घंटा माला और जाप करने कि लिए कैसे वैठ सकते हैं ? भीड़ भड़क्का और शोर में रहने वाला माला लेकर शान्ति का अनुभव कैसे करेगा ?

विपत्तियों की परिस्थिति को बदलने की अपेक्षा विपत्ति में ही प्रसन्न रहने का क्षण प्राप्त करलो ।

प्रिय.........

सर्वप्रथम एक मिनट भी जिसके पास समय नहीं होता है ऐसा व्यस्त मानव एक मिनट का मूल्यांकन क्या है, ऐसा कभी जानता है ? समय को जानने वाला ही तो ज्ञानी है । सुवर्ण की कसौटी तो आग में तपने से ही होती है । लाखों बार छेनी और हथोड़े की मार खाकर ही तो एक पत्थर प्रतिमा का रूप धारण करता है । तीन घंटे टी. वी. के सामने आँखें लगाकर बैठने वाला एक शो पूरा करता है । जीवन का एक बलिदान देकर किसी एक मशीन का निर्माण होता है । सर्दी और गर्मी सहकर ही किसान अन्न पैदा करने में सफल होता है । उतर पड़ो भीड़ भड़क्के और शोर सपाटे के मैदानों में, इसी मैदान में तुझे शान्ति का पैगाम मिलेगा । शान्ति का संशोधन करना है, समय को साधना है । तो जप और ध्यान करना ही पड़ेगा । केन्द्रित होने वाला ही समय का मूल्यांकन कर सकता है । समय को जानने वाला ही मृत्यु को जानता है; मृत्यु के लिए कोई भी क्षण अनवसर नहीं है, वह किसी भी क्षण आ सकती है ।

अतः त्वरित गति से कार चलाकर एक

दो मिनट बचाने वाला कई बार अपने जीवन को और दूसरों के जीवन को खतरे में डाल देता है । शान्ति के क्षणों को जानने वाला ही मृत्यु के क्षण को जानता है ।

⌘
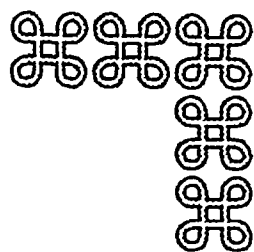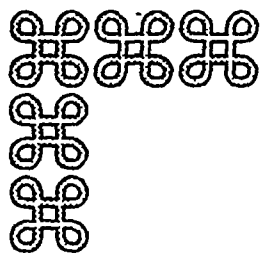
३८. "समयं तत्थु पेहाए अप्पाणं विप्पसाए ।"

अर्थ—पुरुष जीवन में समता का आचरण कर आत्मा को प्रसन्न करें ।
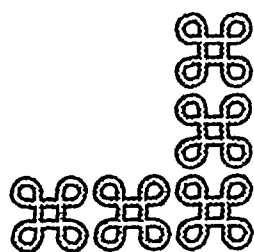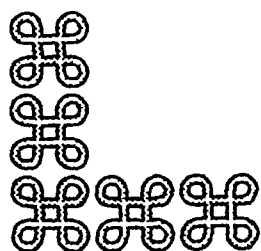
शाश्वत और अशाश्वत

१६. संसार में लाखों प्रवृत्तियाँ हैं पता नहीं कौन-सा पदार्थ मूल्यवान है ? जिसका संसार में महत्व होता है जो पैदा हुआ है उसका नाश होता ही है । जिसका नाश होता है उसका रूपांतरण भी होता है तो जिस पदार्थों का नाश न हो ऐसा कुछ है !

महत्त्व का मूल्यांकन करना अच्छा है किन्तु मूल्यांकन का महत्त्व खत्म कर देना उतना ही खतरनाक है ।

प्रिय.........

संसार में जो भी पदार्थ शाश्वत है, जिसका कभी नाश नहीं होता है जिसको कोई मूल्यहीन नहीं बना सकता है, वहा पदार्थ मूल्यवान है । संसार का सबसे बड़ा कीमती कोहिनूर हीरा वह भी नाशवान है । चक्रवर्ती का सबसे बड़ा आधिपत्य वह भी नाशवान है । जो कल तक था वह आज रहेगा या नहीं पता नहीं, फिर भी जो मिला है उसे सुख समझकर भोग लो । दुःख को जीवन से हटाते रहो और पाप को मजे से करते रहो । यही तो गैर समझ है । सुख त्यागने योग्य है, दुःख भोगने योग्य है, और पाप नाश करने योग्य है यही तो समझदारी है । सम्पत्ति हो किन्तु भोगने वाला मालिक ही न हो तो सम्पत्ति मूल्यहीन है ।

बादाम का हलुआ है पर हेवी डायबिटीज और हाई ब्लेड प्रेसर का शिकारी है, हलवा उसके लिए मूल्यहीन है; मूल्यवान हीरे की माला है पर, सीने में बड़ा दर्द है माला उसके लिए अप्रिय है । विज्ञान ने भोग्य पदार्थों को चरम तक उपलब्ध किया । किन्तु उसका भोक्ता चैतन्य का महत्त्व वह भूल गया । आत्मा की प्रसन्नता उसे याद नहीं, जीवन में बंगले या झोपड़ी का गहत्त्व नही हैं, महत्व है, आसक्ति और अनासक्ति

का, सुख और दुःख का, वास्तव में भौतिक सुख सुख नहीं है । सौ रुपये रोज का वन्दर नुकसान करता है हमें कुछ भी नहीं होता; किन्तु सौ रुपये दान में देने हों तो वरदास्त नहीं होता ।

इस चैतन्य के महत्व का मूल्यांकन करो । सारे सब्जेक्ट और औब्जेक्ट का तारतम्य टूट जायेगा ।

⌘
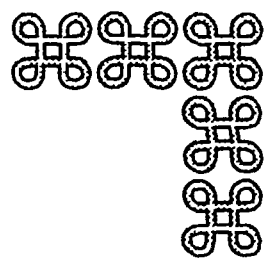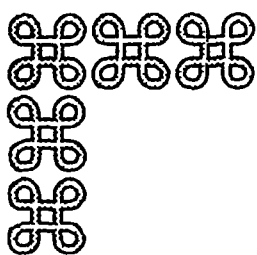
"मंदा मोहेण पाउडा"

अर्थ—मंदमति मानव मोह में अनंत काल तक आवृत रहता है ।
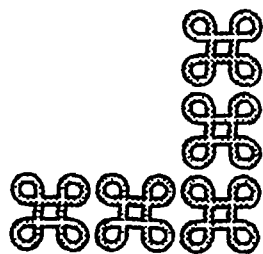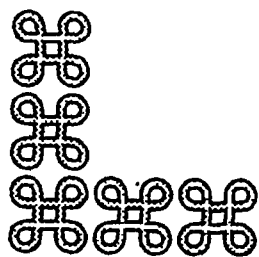
असंतोष से निराशा

१७. परम पुण्योदय होने से सर्वश्रेष्ठ कीमती पदार्थों का उपभोग करने का सौभाग्य मुझे मिला है फिर भी मुझे अभी तक संतोष नहीं, संतोष जैसी जो अनुभूति होनी चाहिए वह होती नहीं तो क्या करना चाहिए ?

हर आदमी चित्रकार, वक्ता या कवि नहीं बन सकता पर इन्सान अवश्य बन सकता है ।

प्रिय.........

हर पदार्थ पानी के वुदवुदे की तरह क्षणिक हस्ती वाला है ।

पानी का प्रवाह प्रतिक्षण परिवर्तित होता है जो सभी के समक्ष प्रत्यक्ष है ।

तथापि,

पदार्थ के प्राप्ति हेतु आकर्षण में जितना ममत्व है, जितना नहीं है, जितनी तृष्णा और भाग-दौड़ है, उतना पदार्थ का उपयोग करने में नहीं है । पदार्थ का अभाव जितना खलता है उतना पदार्थ का होना संतोषजनक नहीं होता है । तृषातुर मानव पानी देखकर खुश हो जाता है, जैसे ही पानी पीने को तत्पर हो जाता है ।

मुँह बिगाड़ता है ।

यह तो समुन्दर का नमकिला पानी है ।

यह तो मृग जल है ।

पुण्य है तो सम्पत्ति है ।

पुण्य है तो भौतिक सुख है ।

पुण्य है तो सत्ता और अधिकार है ।

किन्तु

सुख संपत्ति सत्ता सब कुछ होने पर भी शान्ति नहीं मिलती

शान्ति के लिए तो धर्म ही एक सहारा है ।

पुण्य हमें खुश कर सकता है ।

संतुष्ट होने के लिए तो धर्म ही आवश्यक है ।

जब तक मानव मोह में आवृत होता है ।

संतुष्ट होना उसके लिए असंभव है ।

युग बदलता जाता है ।

सदियां बीत जाती है ।

जन्म के बाद मृत्यु और मृत्यु के वाद जन्म होता जाता है पर शान्ति का योग अवसर चाहता है ।

⌘

३

सुख-दुःख का नियंत्रण और रूपांतरण की प्रक्रिया

- सत्य के दर्शन और भ्रान्तियों का विसर्जन
- स्वभाव का स्मरण और विभाव का विस्मरण
- धर्म से विमुख और सन्मुख अस्तित्व के आधार पर
- स्मृति और कल्पना के उधेड़बुन में सर्वस्व खोया
- मुसीबतों का सामना समस्या का स्थायी समाधान
- पदार्थों के अभाव का अभाव दुःख का संचय
- प्रियता और अप्रियता का अभिनय—संसार
- अपेक्षा और उपेक्षा का सशक्त उपाय—पर का त्याग

⌘
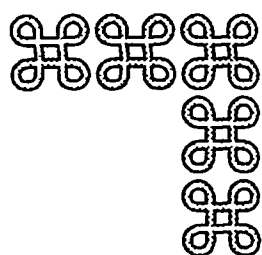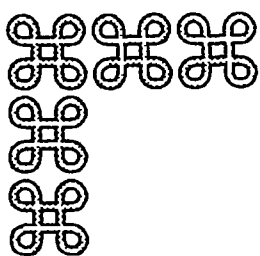
"एयं तुलमण्णेसिं"।

अर्थ—इस तुला का अन्वेषण कर ।
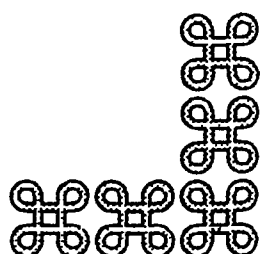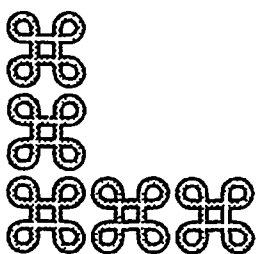
सहारा की अपेक्षा या उपेक्षा

१८. संयुक्त पारिवारिक जीवन में सभी के सुख दुःख में मैं संवेदनशील होने से सभी को सहायक होता हूँ किन्तु मेरे आपत्तिकाल में किसी का भी सहारा नहीं तो क्या मैं सभी का सहयोगी ही रहूँ या दूसरों की भाँति उपेक्षित रहूँ ?

सब कोई सुख के साथी हैं दुःख के कोई नहीं । सब महफिल में मिलते हैं, आपत्त में कोई नहीं । स्वार्थ सधता हैं, सब अपने हैं; स्वार्थ खतम अपनापन भी खतम !

प्रिय.........

स्वार्थीजन को संतों ने शैतान की उपमा दी है, मानव वही है जो उपकारी का उपकार करे पर अपकार कभी न करे । अफसोस ! आज का मानव अपने पारिवारिक जीवन की भी सुरक्षा नहीं कर पाता है वह अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए संघर्ष खेलता है जो खुद अपनी संस्कृति और धर्म के विनाश पर तुला है वह दूसरों का भला कैसे करेगा ?

स्वार्थ के मैदान में एकत्रित होने वाले स्वार्थियों की संख्या कितनी व्यापक है ।

जितने खिलाड़ी ओलम्पिक में इकट्ठे नहीं होते उनसे हजार गुना खिलाड़ी एक क्षण में स्वार्थ के मैदान में एकत्रित होते हैं और षड़यंत्र खेलते हैं ।

पर को धोखा देना अपने आप को धोखा देना है । बिगड़ने के हेतु भी भीतर हैं और सुधरने के हेतु भी भीतर मौजूद हैं । हमें भीतर प्रवेश करके अपने आप को झांकना है । वस्तु सत्य का बोध तेरे लिए आत्म तुला अन्वेषण करता है । तुझे जो प्रिय है हो सकता है वह दूसरों को प्रिय न हो मेरी आत्मा की तरह दूसरा भी सुख उपभोग करना चाहता है ऐसा तादात्मय एक बार स्थापित करले फिर तो तुझे परिवार

वाले जो कठोर हैं वे कोमल, तिरस्कृत हैं वे प्यार भरे, निर्दय हैं वे करुणा पात्र और वैरी हैं वे मित्र बन जायेंगे । हमसे हो सके उतने सहयोगी होवें । हमसे होवे उनकी भलाई करें पर किसी की बुराई कभी न करें बस फिर तो कोई अपना नहीं कोई पराया नहीं ।

⌘
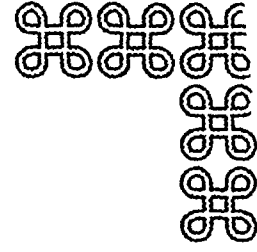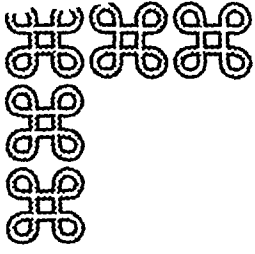
"आयाणिज्जं च आयाय् तम्मि ठाणे ण चिट्ठइ ।
वितहं पप्पखेयण्ण, तम्मि ठाणम्मि चिट्ठइ ।।"

अर्थ—अनात्मज्ञ पुरुष सत्य को प्राप्त कर उस स्थान में स्थित नहीं होता । वह असत्य को प्राप्त कर उस स्थान में स्थित होता है ।
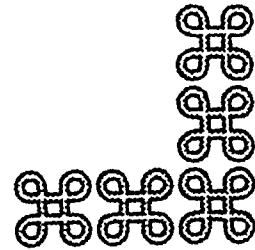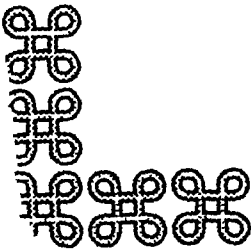
सत्यनिष्ठा संसार के परिपेक्ष में

१६. सत्य में पूरी निष्ठा होने पर भी असत के स्रोत में वहा जा रहा हूँ । एक कदम आगे बढ़ता हूँ तो दो कदम पीछे हटता हूँ । सत्य की राह पर चलना इस युग में मुश्किल है और असत का मार्ग सुखद है तो उसका उपभोग क्यों न किया जाय ?

मेरा असत आचरण है, कोई हरक्त नहीं । औरों का असत आचरण है, मुझे बरदाश्त नहीं ।

प्रिय.........

सत्य सत्य ही है । जीवन में जो भी आनंद की तंरगें हैं, वह सत्य के द्वार से ही प्रवेश करती हैं । जीवन में जितनी बार फूल खिलते हैं वे सत्य की जड़ों से फलित होते हैं । जीवन में जो भी दुविधाएं आती हैं, वे सत्य के आवरण में छिपी असत्य की भ्रान्तियां लाती हैं । जहाँ अस्तित्व की सीमा का उल्लंघन होता है, वहाँ असत का जन्म होता है । असत का श्रम निष्फल होने पर भी मानव उसका मालिक बन बैठा है । रुग्ण होने पर भी तंदुरस्ति का दावा कर रहा है । म्लान होने पर भी मुस्करा रहा है । टेक्स की चोरी होती है, आरोप होता है सरकार पर । स्मगलिंग का धंधा होता है, आरोप भौतिक युग पर । क्रोध आता है, घरवालों के अलग-अलग अंदाज पर । न बोलने का बोला जाता है, अहं की पूर्ति पर, गलत फहमी बनती है, अधीरता में तीव्रता होने पर, सोचो ! असत के आवरण में छिपा हुआ सत कैसे सुखद हो सकता है ?

अनात्मज्ञ मानव सत्य को पाने पर भी सत्य में स्थिर नहीं होता । किन्तु **असत** को प्राप्त कर उसमें स्थिर होता है । **क्योंकि** उसके भीतर अहं का खून बहता है । अहं

के इस काले परिधान में कितने महापुरुषों ने असत को प्यार किया होगा ।

अफसोस !

असत की राह पर चलने वाला संसार की नजरों में सुखी है किन्तु स्वयं की नजरों में दुःखी है ।

⌘
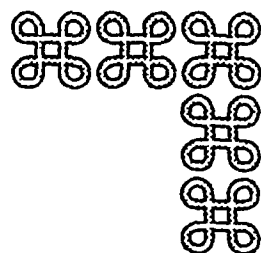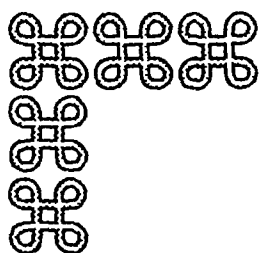
३६. "ण एत्थ तवो वा दमो वा, णियमो वा दिस्सति ।"

अर्थ—परिग्रही पुरुष में न तप होता है, न शान्ति होती है न इन्द्रिय निग्रह होता है और न नियम होता है ।
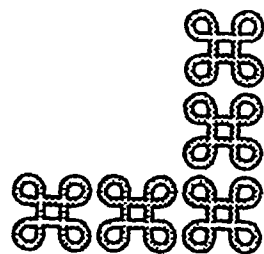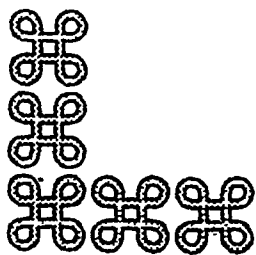
प्रवृत्ति का परिणाम

२०. हम संसारी हैं अतः संसार की हर फेसिलिटी में हमें रहना पड़ता है । सामाजिक और व्यावहारिक हर प्रवृत्ति करनी पड़ती है । आप जिस प्रवृत्ति को पाप मानते हो वही हमारे लिए सुखद होती है तो क्या आपके लिए जो पाप है वही हमारे लिए सुख का साधन है ?

> विपत्ति में खुश त्यागी
> सम्पत्ति में खुश रागी
> आसक्ति में खुश भोगी
> विरक्ति में खुश योगी

प्रिय.........

संसार की प्रत्येक भौतिक प्रवृत्ति सामाजिक हो, व्यावहारिक हो, पारिवारिक हो या निजी हो, स्वार्थ परक ही होती है ।

मैं सुखी बनूँ
ऐसा सोचने वालों की संसार में कमी नहीं,
हम सुखी बनें
ऐसा सोचने वाले भी अनेक हैं,
पर हम सब सुखी होवे
ऐसा सोचने वाले कितने ?

धन का होना खतरा नहीं है किन्तु धन के प्रति मूर्च्छा होना खतरा है । सम्पत्ति का अभाव इतना दुःख रूप नहीं हैं जितना अभाव का खलना दुःख रूप है । सम्पत्ति के स्वामी के जीवन में कितनी बदबू है, कितनी ईर्ष्या की जलन है, कितनी अहं की दीवारें हैं, भीतर पड़ी हुयी दुश्मनावट है, तेरी अविश्वास, अनैतिकता, अनादर की परतों को देख । पाप भी करना हैं और सुख भी भोगना है । जब जबान पर कंट्रोल नहीं तो क्रोध आयेगा ही । स्वाद पर कंट्रोल नहीं तो रोग आयेगा ही । मन पर कंट्रोल नहीं तो अशान्ति रहेगी ही । सम्पत्ति का कंट्रोल नहीं तो आपत्ति आयेगी ही । केवल

एक स्वीच ऑन करलो परिवर्तन हो जायेगा ।

फिर तो बस

आपत्ति में भी सम्पत्ति और अशान्ति में भी आनन्द मिलेगा । केन्सर की वेदना में भी समाधिस्थ रहना संतों का काम है । समृद्धि में आसक्त रहना शैतान का काम है । पाप सभी के लिए पाप है । संत हो या संसारी हो ।

⌘
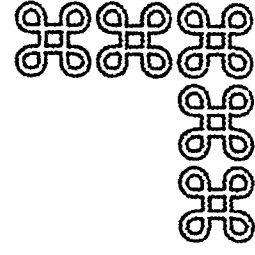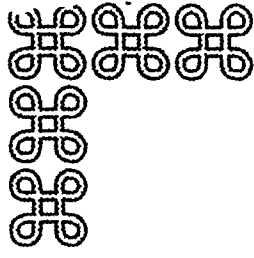
४०. "सततं मूढे धम्मं णाभिजाणइ ।"

अर्थ—अज्ञानी मानव धर्म को नहीं जान पाता ।
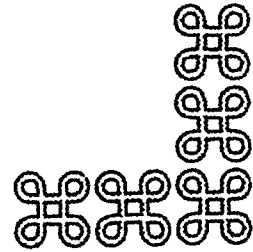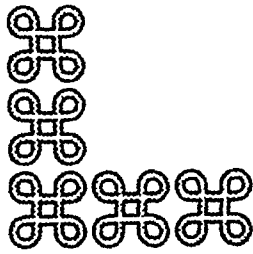
वास्तविकता के सन्मुख

२१. विगड़ी वनाने के लिए हमने परमात्मा को प्यार किया, गुरुवर्यों की कृपा को मांगा। जो धर्म से सदा विमुख है उसे मैंने सुखी देखा तथा जो धर्म की ओर सन्मुख है उसे मैंने दुःखी देखा तो धर्म करना उचित है ?

आधा किलो सब्जी लेकर दो वेर मुंह में और एक मिरच लिफाफे में डालने वाला अपने आपको भाग्यशाली मानता है।

प्रिय.........

तुझे आज जो सुखी दिखलाई देता है वह वास्तव में सुखी नहीं सुख के आवरण में बहुत बड़ा दुःख है। भय के आवरण में जीना, चिन्ता के बोझ में घूमना, दुश्मनों से भिड़ना, विश्वासघात करना इत्यादि के पीछे धर्म से विमुख मानव सुखी तो दिखता है किन्तु पाप करके मान पात्र मिलाने की अपेक्षा अपमानित समय में खुश रहने वाला जिन्दा है। बहादुरी शेर को मारने में नहीं हिरन को बचाने में है। कुर्बानी युद्ध करने में नहीं शान्ति के बलिदान में है। ताकत क्रोध करने में नहीं क्षमा रखने में है। पराक्रम किसी के आँसू बहाने में नहीं आँसू पोंछने में है। महत्त्व धन प्राप्ति का नहीं धन के सदुपयोग का है। परमात्मा, गुरु और धर्म ये तीन तत्वों को तू जानता है। जिस जीवात्मा ने निष्काम बुद्धि से इन तीन तत्वों की आराधना की है वह विपत्तियों में भी सुखी है और जो कामना के लिए आराधना करता है वह संपत्ति होने पर भी दुःखी है और जो कुछ भी नहीं करता है वह पूर्वकृत पुण्य को समाप्त करता है। टैक्सी वाले, टैम्पोवाले, कुली, नौकर, सब्जी वाले यदि दो रुपये अधिक मांगें तो लड़ पड़ते हैं पर देने को तैयार नहीं है, एम. डी.,

कार्डियोलोजिस्ट, आई. एन. टी. सर्जन की फीस दो हजार है तो बड़े प्रेम से देते हो ।

परिजन अच्छी सलाह देते हैं फिर भी क्रोध करते हैं । और कोर्ट में जज या वकील को लाख देने में भी हरकत नहीं । यही तो संसार है ।

अतः धर्म करणीय है और अधर्म अकरणीय है स्वीकार कर लो ।

⌘
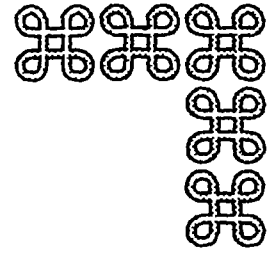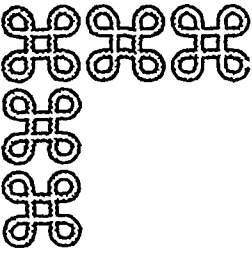
४१. "पासिय आउरे पाणे अप्पमन्तो परिव्वए" ।
"मंता एयं मइमं ! पास ।"

अर्थ—(सुप्त) मनुष्यों को आतुर देखकर पुरुष निरंतर अप्रमत्त रहे ।

हे मतिमन् ! तू मननपूर्वक इसे देख ।
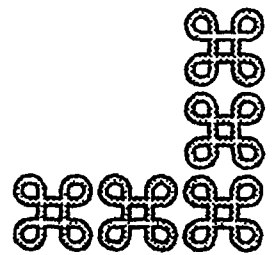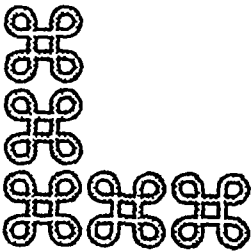
विकल्पों की उलझनों में

२२. अतीत की स्मृति और भावि की कल्पना इन दोनों की चिन्ता में ग्रसित वना मन विकल्पों की उलझनों में फंसकर अनेक जन्म और मृत्यु को उपार्जन करता है । क्या इसका वोध कभी होगा ?

प्रिय.........

सर्व-प्रथम चिन्ता अतीत और भावि के विकल्पों का मुरव्वा नहीं है वे तो तेरी ही निरर्थक उपज है । जिसने दुःख पैदा किया है, वही दुःख मुक्ति का उपाय जानता है । सर्दी के वाद गर्मी और गर्मी के वाद सर्दी, यह तो प्राकृतिक नियम है । आकांक्षा ही वेदना है । धन, वैभव, गाड़ी, स्त्री सव कुछ मिल सकते हैं । पुण्य की वलिहारी है । पुण्य है सव कुछ है, पुण्य नहीं तो पाप की कलंक रेखा तो है ही । मोह मूर्च्छा में अज्ञानी सदा सोया है । ज्ञानी ही संसार में एक ऐसा है जो अतीत और अनागत से परे है । अतीत और भावि की चिन्ता के करवट वदल दे । संयोग वियोग में और वियोग संयोग में सदा होते रहते हैं । यह निश्चित है ।

इसे तू जान, समझ और देख विल्ली सावधान है पर क्यों, चूहे को पकड़ना है ।

वगुला एक पैर पर खड़ा है पर क्यों, मछलियों का शिकार करना है । गन्ने के खेत में आतंकवादी घंटों तक छुपा है पर क्यों, धनवानों को लूटना है ।

मन एकाग्र तो है, पर एक विपय से दूसरे विपय पर मरकट की भांति कूदता रहता है । स्व-रूप के साथ मन का

जो कामना की लपेट में सदा खोया है उसे भूख है धन की, लालसा है पदार्थों की, वासना है काम की और वेदना है भोग की ।

अनुसंधान न होने से राग-द्वेष और मोह की जड़ का नाश नहीं होता। जहाँ जड़ता है वहाँ चैतन्य की विस्मृति है। भीतर में जागने वाले को चैतन्य की स्मृति रहती है। घंटों एकाग्र रहता है पर चैतन्य की विस्मृति है तो जीवन से हार जायेगा।

अतः विवेक बुद्धि से जीवन जीना है।
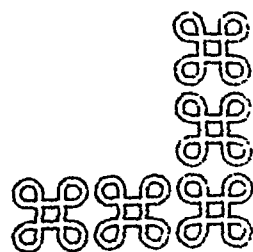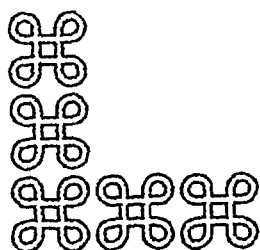
⌘

"जहा अंतो तहा बांहि जहा बांहि वहा अंतो ।"

अर्थ—यह शरीर जैसा भीतर है, वैसा बाहर है, जैसा बाहर है वैसा भीतर है ।

मुसीबतों का सामना

२३. सव कुछ होने पर भी मुसीवतों से ऊपर उठना मुनासिव नहीं होता, परिजन साथी सम्वन्धी सवको अच्छा मानूँ तो सव सच्चे हैं: वुरे मानूँ तो उनके जैसा कोई खतरा नहीं । साथियों का सहारा है किन्तु स्वार्थ-पूर्ति जितना ही । वड़े-वड़े नेतागणों से सम्पर्क है फिर भी तनावग्रस्त हूँ । एक संसारी के लिए इससे वड़ा दुःख और क्या हो सकता है ?

> चोट लगी है तो दर्द होगा ही, आग में हाथ डालोगे तो जलेगा ही, शक्ति का उपयोग नहीं तो ह्रास होगा ही ।

प्रिय.........

वैभव है पर सम्पूर्ण सम्पत्ति का मालिक नहीं हूँ, क्योंकि राज कारण के लफड़े हैं । संतान है, पर चलती नहीं । भूख लगी है, खाना खाना है, पानी पीना है, पर पत्नी का मूड देखकर ही मांग पाता हूँ । होटल, पिक्चर, क्लब, पार्टी आदि से परिजनों को, साथियों को या सम्बन्धियों को प्यार होता है । पर तप, जप, धर्मोपदेश, गुरु-दर्शन आदि का गौरव नहीं होता है । किन्तु स्टेज पर मान-पत्र प्राप्त होने का गौरव है । अखबारों में प्रथम पृष्ठ पर फोटू आती है । टी. वी. में देखकर लोग उसकी तारीफ करते हैं । हाथ में हाथ मिलाने वालों का, फूलों की माला पहनने वालों को, गौरव अनुभव में आता है । प्रिय व्यक्ति का संयोग भी वियोग में परिवर्तित होगा ही । आज जो प्रिय है कल वह अप्रिय भी हो सकता है । आज जो अप्रिय है कल वह सर्वोत्तम उपयोगी भी हो सकता है । प्रियता और अप्रियता का करंट निरंतर बहता रहता है । संसार का सुख ही भयावना है ।

संसार की आसक्ति ही बहुत बड़ी बीमारी है । संसार की माया ही बहुत वड़ी भ्रान्ति है । जो इन्सान को शैतान वनाती है । योगी को रागी बनाती है ।

योगी को भोगी वनाती है । चिन्तन, मनन, और ध्यान के अभ्यास क्रम से तेरी मुसीवतें मुनासिव हो जायेंगी । तनाव से तू मुक्त हो जायेगा और संसारी भोग भोगने पर भी तू दुःख से मुक्त हो जायेगा ।

अप्रिय से अप्रिय मानव में भी कुछ न कुछ प्रियता अवश्य होती है ।

⌘
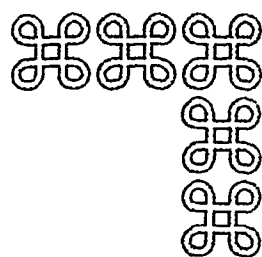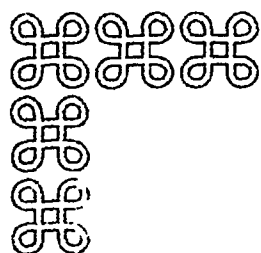
"जाणित्तु दुक्खं पत्तेयं सायं ।"

अर्थ—सुख और दुःख व्यक्ति का अपना होता है ।
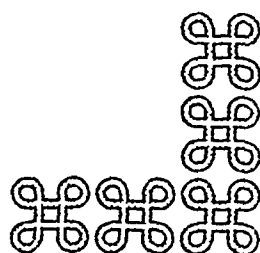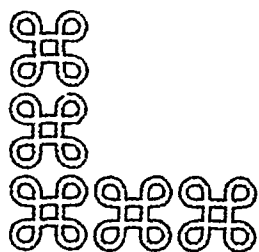
अभाव का अभाव

२४. संसारी जीव भौतिक सुख मिलने पर मैं सुखी हूँ और न मिलने पर मैं दुःखी हूँ ऐसी अनुभूति करता है। वैसे ही मैं पदार्थों के अभाव को सह नहीं सकता हूँ तो क्या अभाव को सहते ही रहें या उससे मुक्त होने का उपाय करें ?

संघर्ष जीवन का पतझड़ है अतः सावधान हो जाओ ! उत्कर्ष जीवन का सौन्दर्य है अतः उत्थान कर लो।

प्रिय ...

सर्व प्रथम यह निर्णय करना है कि सुख और दुःख तेरे हैं या तेरे माने हुए हैं। यदि तेरे हैं तो क्या कभी सुख दुःख में और दुःख सुख में परिवर्तित होते हैं ? कभी उसका नाश होता है ? यदि हाँ तो याद रखना सुख और दुःख तेरे नहीं है, तेरे माने हुए हैं। जैसे— तेरे घर में ब्लैक एण्ड व्हाइट टी. वी. है और भाई के घर कलर्ड टी. वी., वीडियो है। अब तेरे घर पर टी. वी. है पर कलर्ड नहीं है, यही तेरे लिए दुःख का कारण है। जो है उसका जितना आनन्द तू नहीं ले पायेगा, उतना कलर्ड टी. वी. नहीं है, उसके दुःख का तू अनुभव करता रहेगा। जो कारण हमारे लिए सुख का हेतु है, वही कारण हमारे लिए दुःख का हेतु बनता है। सुख और दुःख जीवन की दो करवट हैं। कभी धूप कभी छांव दोनों जीवन के साथ-साथ चलते हैं। एक मानव को पचास साल से कभी सिर दर्द नहीं हुआ और आज वह रो रहा है, जोर-जोर से चिल्ला रहा है, सिर पकड़कर पटक रहा है। पचास साल में कभी दर्द नहीं उसका आनन्द नहीं, और एक दिन दर्द हुआ बदले में इतना दुःख। पदार्थ का होना या न होना सुख और दुःख

नहीं है, किन्तु पदार्थ के प्रति राग और द्वेष होना, सुख और दुःख है ।

सुख विनाशी है अतः सुख से विरक्त होना आवश्यक है । दुःख विनाशी है अतः दुःख में समाधिस्थ रहना आवश्यक है ।

⌘
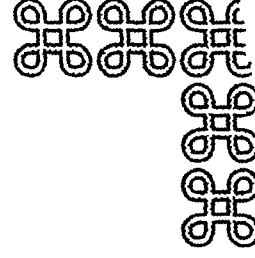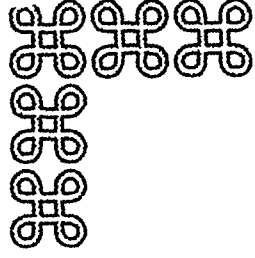
४२. "पुरिसा ! अत्ताणमेव अभिणिगिज्झ, एवं दुक्खा पमोक्खसि ।"

अर्थ—हे पुरुष ! आत्मा का ही निग्रह कर । अवश्य दुःख से मुक्त हो जाएगा ।
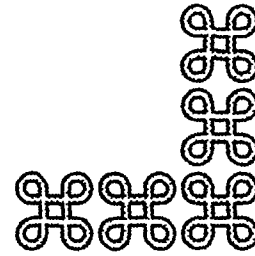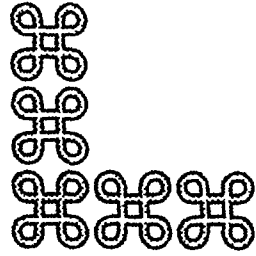
अभिनय का अंत

२५. सुख और दुःख सिक्के के दो पहलू हैं। सुख प्रिय है दुःख अप्रिय। सुख को सदा सर्वदा बनाए रखने के लिए प्रयास करने पर भी वह टिकता नहीं और दुःख न चाहने पर बिना बुलाए आ जाता है अतः इस अभिनय का भी अंत है ?

संयोग और वियोग, अनुकूलता और प्रतिकूलता प्रिय और अप्रिय, रागात्मक और द्वेषात्मक होते हैं। अतः यही सुख और दुःख के हेतु हैं।

प्रिय........

भावों के अनुसार इन्द्रियाँ मन और बुद्धि अपना अभिनय करते रहते हैं। सुख का प्रवाह है मन प्रसन्न रहता है। दुःख का प्रवाह है मन अस्वस्थ रहता है। ये प्रसन्नता और अस्वस्थता ये सुख और दुःख लाने वाला कौन ? ऐसे तो संवेदनाएं शरीर मे उभरती प्रतीत होती हैं। संवेदनाओं के केन्द्र बिन्दु भीतर प्रकट हैं। ये बिन्दु प्रशिक्षण वृत्तियों को उत्तेजित करते रहते हैं। प्रसन्नता है तो खुशियों की लहरें अभिव्यक्त होती हैं, अस्वस्थता है तो दुःख व्यापकता का रूप धारण करता है। वैज्ञानिकों ने मन वाणी और मस्तिष्क को बहुत बड़ा स्थान दे रखा है।

किन्तु हमारे सुख दुःख का सबसे बड़ा स्रोत है, हमारे अध्यवसाय या हमारी भावनाएँ। जिन प्राणियों को मस्तिष्क नहीं, मन नहीं, वाणी नहीं क्या ये जीव सुख दुःख का अनुभव नहीं करते ? इसका प्रमाण वनस्पति जगत है। वनस्पति में सबसे अधिक सुख और दुःख की संवेदना होती है। सुख और दुःख हमारे ही अध्यवसाय के बीज हैं। हम ही उन्हें बोते हैं, और हम ही उसके फल का उपभोग करते हैं। प्राणीमात्र अपने विचारों से, भावों से और

आचरणों में अच्छा और बुरा, प्रिय और अप्रिय व्यवहार करता है और परिणाम भोगता है। अतः दुःख मुक्ति का उपाय केवल इतना ही है कि हम अच्छे बीज बोएंगे तो सुख पायेंगे। बुरे बीज बोएंगे तो दुख पायेंगे। हमें अपने आपका नियन्त्रण नहीं करना है, निग्रह करना है।

निग्रह करने वाला अवश्य दुःख से मुक्त होगा ही।

⌘

तृतीय चरण

१

बिम्ब प्रतिबिम्ब का अनुभव और प्रयोग

- मूर्च्छा में भी सुख दुःख का संवेदन
- भेद में छिपा हुआ अभेद
- शरीर के बदलते रूप और परिणाम
- रूपांतरण की अनेक लकीरें
- विवेक बुद्धि में सुप्त और जाग्रत अवस्था
- क्रिया-प्रतिक्रिया ही परिवर्तनशील है
- झुकने वालों को झुकाने वाला चाहिए
- शुभाशुभ साधन और साधना
- संशयात्मक संसार ही पर्यायों को जानता है
- रत्नत्रय की साधना में संलग्न
  १. सम्यक ज्ञान
  २. सम्यक दर्शन
  ३. सम्यक चारित्र
- राग के अंतस में विराग
- भीतर के शत्रु की खोज
- सुख के क्षणों को जानने वाला
- श्रवण के माध्यम से उपलब्ध सिद्धि
- भीतर की ऊर्जा का मापदंड

⌘
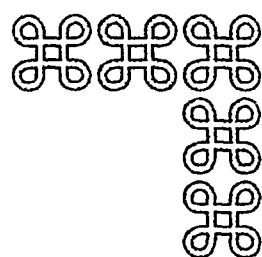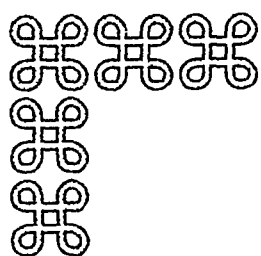
४३. "जे गुणे से आवट्टे, जे आवट्टे से गुणे"

अर्थ—जो विषय है वह आवर्त है और जो आवर्त है वह विषय है ।
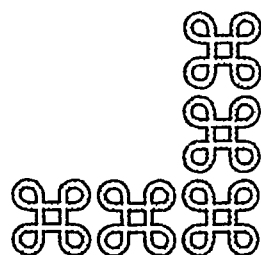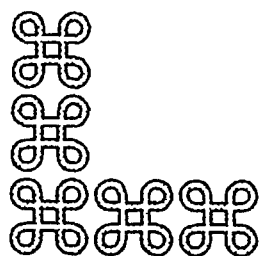
विषयों की मूर्च्छा के आवर्त में

जो प्राणी विषयों में मूर्च्छित होते हैं वे शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्शादि के आवर्त में रहते हैं । जहाँ विषय है वहाँ कषाय है और जहाँ कषाय है वहाँ विषय अवश्य विद्यमान है अतः विषय और कषाय-मूर्च्छा कहो, आवृत्त कहो या आसक्ति कहो कोई अंतर नहीं । मूर्च्छा दो प्रकार की होती है ।

१. अंतरंग मूर्च्छा—मूर्च्छावस्था में प्राणी इस हद तक शून्य हो जाता है कि उसे कोई अनुभव नहीं होता ।

२. बाह्य मूर्च्छा—इस मूर्च्छा में सुख और दुःख का संवेदन होता है ।

प्रिय..........

तू और विषय दोनों भिन्न है किन्तु भोग में आसक्त होने से तूने दोनों की एकता मान रखी है । जब तक एकता की मान्यता रहेगी, मूर्च्छा का संयोग साथ रहेगा । जब एकता टूटेगी मूर्च्छा से अपने आप जाग्रत हो जायेगा ।

मूर्च्छा एक गहरी नींद है, चेतना की लुप्त अवस्था है । इस अवस्था में मानव बाहर भी सोया पड़ा है और भीतर भी सोया पड़ा है । जो व्यक्ति स्वयं मूर्च्छा में सोया है, वह दूसरों को भी सुलाता ही है । उसके पास जगाने की तो आशा या अपेक्षा ही नहीं हो सकती । विषयासक्ति में सारा संसार सोया पड़ा है । पदार्थ के पीछे पागल बना है । पदार्थ में सुख-दुःख देने की क्षमता न होने पर भी पदार्थों से ही सुखी और दुःखी मान बैठने की मूर्खता कर बैठता है । जिसने पदार्थो के साथ सम्बन्ध स्थापित किया है, वह तो पदार्थों के संयोग में सुखी और पदार्थों के वियोग में दुःखी अवश्य रहेगा । प्यासा मृगमरीचिका के पीछे दौड़ेगा तो भी प्यास नहीं बुझा पायेगा । भूखा रोटी के नाम की माला फेरेगा तो भी पेट नहीं भरेगा । उसे पता है मुझे रोटी खानी है, तो रोटी उपार्जन का साधन बटोरना ही होगा । मानव इतना मूर्च्छित है कि वह सच्चाई तक पहुँच नहीं पाता और न उसे मूर्च्छा उस हद तक पहुंचने ही देती है ।

हमारी प्रतिद्वंदात्मक भावनाएँ गलतफहमी के द्वारा निर्मित भ्रान्तियाएँ, और आपसी अपेक्षा की प्रतिस्पर्धाएँ, निरंतर तनाव बढ़ाते रहते हैं । अनेक प्रवृत्ति को चौपट करती रहती है । घर के, परिवार के और समाज के अनेक व्यक्ति इस पीड़ा से पीड़ित होते हैं । मूर्च्छा से मुक्त होने के उपाय की वातें केवल बातें ही रह जाती हैं और इस उधेड़बुन के सूत्र ही सिर पर थोपे जाते हैं ।

अपने स्वार्थ में, भोग की आकांक्षा में और तुच्छ व्यवहार में पदार्थों के भोगने के लिए लालाइत बना हुआ मानव शान्ति कैसे प्राप्त कर सकता है । शान्ति के लिए हमें हमारी आदतों का परिवर्तन आवश्यक है । हमारे जीवन में आने वाले के साथ हमारा व्यवहार बदलना चाहिए, हमारा दृष्टिकोण बदलना चाहिए, हमारे भाव और प्रभाव बदलने चाहिए । क्योंकि आज दिन तक हमने भोगों को नहीं भोगा, भोगों ने हमें भोग लिया इस चक्र में हमारा संसार का पहिया घूमता रहा । हमारी शक्ति का अपव्यय होता रहा । लाभ और फलश्रुति की उपलब्धि जितनी आवश्यक है उससे भी अधिक आवश्यक है हमारी शक्ति का संचय ।

हमारी दृष्टि में द्वेषात्मक भावना ने जनम जनम से अपना प्रभाव स्थापित किया है । हमें उन प्रभावों का विसर्जन करना है और स्वभाव का मूल्यांकन करना है । स्वभाव में स्थित आत्मा विकल्पों से विमुक्त हो जाता है और संसार के परिभ्रमण को टाल देता है ।

⌘
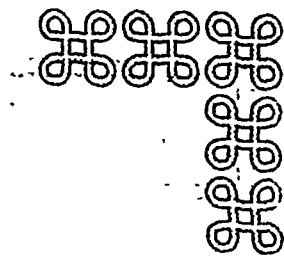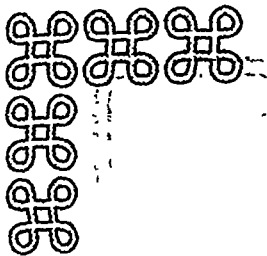
४४. "जे अज्झत्थं जाणइ, से बहिया जाणइ ।
जे बहिया जाणइ से अज्झत्थं जाणइ ।"

अर्थ—जो अध्यात्म को जानता है, वह बाह्य को जानता है । जो बाह्य को जानता है वह अध्यात्म को जानता है ।
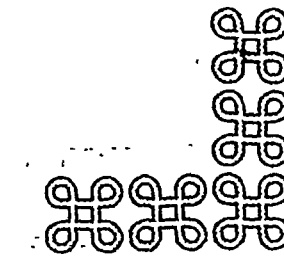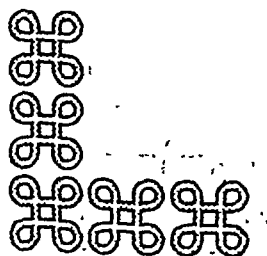
भीतर और बाहर की अभिन्नता

साधना के माध्यम से ही अंतर और बाह्य विधान को जान सकते हैं। अध्यात्म बाह्य तत्व है, जिसका प्रथम बिन्दु अवस्था है और अंतिम बिन्दु वैराग्य है। अंतर और बाह्य दोनों प्रकार के साधक भी खाते हैं, पीते हैं, वस्त्र का परिधान करते हैं, स्थानांतर करते हैं, किन्तु तत्वदर्शी साधक में और सामाजिक मानव में अंतर इतना ही है कि अध्यात्म साधक पदार्थों का परिभोग करने पर भी अनासक्त रहता है, और भौतिक साधक पदार्थों के परिभोग में आसक्त रहता है।

प्रिय.........

यहाँ अध्यात्म योगी इस हद तक पहुँचा है कि वह जैसा आंतरिक स्वरूप जानता है, वैसा ही बाह्य स्वरूप को जानता है उनकी दृष्टि में कोई भिन्नता नहीं। सामान्यजन के लिए, घटना समाप्त होने पर भी घटना का प्रभाव समाप्त नहीं होता है। उपालम्ब समाप्त होने पर भी उपालम्व की प्रतिक्रिया समाप्त नहीं होती है। वह सामान्य जन व्यवहार में जीवन जीता है और उचित अनुचित कार्यों का विकास सधता जाता है। रागात्मक व्यवहार का विकास, द्वेषात्मक व्यवहार का विकास, विकल्पात्मक क्रिया प्रतिक्रिया के व्यवहार का विकास, जीवन विकास का आधार नहीं। जीवन विनाश का आधार है। मानव विनाश के भय से भागता है और भय मानव से चिपका हुआ रहता है। भय मानव को मृत्यु के मुंह में घसीट के ले जाता है। सामान्य जन वुनियादी भूल से उपर उठने की प्रवृत्ति में बर्बाद हो जाता है अत: वह अध्यात्म की स्पर्शना तो नहीं कर पाता किन्तु बाह्य स्पर्शना से भी वंचित रह जाता है।

जीवन का रहस्य जाने बिना अध्यात्म शिखर तक पहुँचने का सामर्थ्य किस में है। जीवन समाप्त हो जाय किन्तु वह एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता उसकी परिवर्तन की दिशा कभी नहीं बदल सकती। वासनात्मक विष की रेखा भीतर अंकुरित हो गई है उसमें अध्यात्म के फल कैसे लग सकते हैं। अध्यात्म की समूची प्रक्रिया जीवन विकास-क्रम की प्रक्रिया है। इन्हीं

प्रक्रियाओं से वास्तविक प्रकट होती है । जनम-जनम की प्रतिपक्ष की भावना का शमन होता है । मन की मलिनता साफ हो जाती है । ऋजुता की प्रतिमा के दर्शन हो जाते हैं, और भाव शान्त हो जाते हैं । अध्यात्म की भित्ति पर अंकित चित्र कभी विचित्र नहीं हो सकता, कभी विफल नहीं हो सकता । कभी पुनरावृत्ति की अपेक्षा नहीं रख सकता । वह तो उस सरिता की भाँति गाँव-गाँव और नगर-नगर में अपने मीठे जल का पान करता हुआ अनेक दिशा और विदिशा का नया मोड़ लेता है । वह उस रहस्यात्मक जीवन के प्रयोगों से गुजरने वाला व्यक्ति होता है, जो इसी काल में नया जीवन प्राप्त कर लेता है । जागृति के क्षणों का संचय कर लेता है ।

अध्यात्म योगी का चित्त प्रशान्त होता है । लाखों विघ्नों में भी उसकी प्रसन्नता का भंग नहीं होता है । विघ्न उसके भीतर प्रवेश कर नहीं सकता है । अशान्ति उसका स्पर्श नहीं कर सकती है । इसलिए ऐसा साधक अपनी साधना में अंदर और वाहर दोनों प्रवृत्ति में समान रूप से प्रवर्तमान रह सकता है । वह वाह्य को जैसा जानता है, वैसा ही भीतर को भी जानता है । यदि उसे रोग सताता है, परिजन सताता है या अन्य कोई उपसर्ग परिसह सताता है, तो भी वह जाग्रत ही रहता है, अपनी प्रसन्नता को कभी नहीं खोता है ।

ॐ
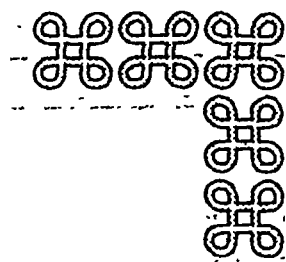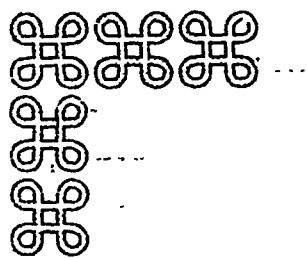
४५. "जहा अंतो तहा बाहिं जहा बाहिं तहा अंतो ।"

अर्थ—यह शरीर जैसा भीतर है वैसा बाहर है, जैसा बाहर है, वैसा भीतर है ।
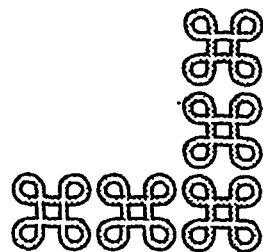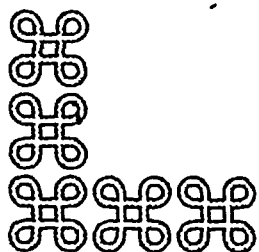
पार्थिव देह की सार्थकता

जहाँ साधना नहीं केवल वासना है वहाँ अन्दर और बाहर दोनों में विरूपता है । ऐसा मानव अत्यधिक तनावग्रस्त रहता है । उसके पास कारें है पर ड्रायवर की मुसीवत है, फैक्टरियां हैं पर इन्जीनियर और मैनेजर की मुसिवतें हैं । एजेंसी अनेक हैं पर भाग्य साथ नहीं देता, परिवार है पर मिलान नहीं, वैभव है पर स्वस्थता नहीं, संतान है पर प्यार नहीं, भूख है पर पाचन नहीं क्योंकि वासना है अध्यात्म नहीं; जहाँ वासना होती है वहां प्रियता और अप्रियता का दावा होता है । जो मुझे प्रिय है वह सबको प्रिय ही हो ऐसा दावा हम कभी नहीं कर सकते किन्तु सबको प्रिय है वैसा मुझे प्रिय हो जावें इसका मैं प्रयत्न करूँ यही सोचना आवश्यक है ।

प्रिय.........

साधक वही होता है जो आत्म-शुद्धि रखता है तथा वैसे ही व्यवहार-शुद्धि भी रखता है । क्योंकि साधना में बाहर-भीतर की एकरूपता होना अनिवार्य है । तू बाह्य जगत को देख और उसकी असारता का चिन्तन कर, अंतर जगत को भी देख और उसका भी चिन्तन कर । यह संसार जैसा बाहर है, वैसा भीतर भी है । यथार्थ में बाह्य जगत निराशा का सूत्र नहीं है इसी प्रकार निषेधात्मक सूत्र भी नहीं हैं, किन्तु परिवर्तन का सूत्र है । इसी जगत में हमें जन्म लेना है । इसी जगत के व्यवहार और व्यवस्था में जीना है । इसी असार संसार के सारभूत तत्वों को खोजना है । ऋषि, महर्षि और सर्वज्ञ प्रभु ने इसी संसार के बाह्य भोगों को जाना था, समझा था और स्वीकारा था । वे भी एक सामान्य जन थे और अपने को उन सामान्य से पृथक करने का उपाय उन्होंने स्वीकारा था और उन्हीं उपायों के माध्यम से वे नर में से नारायण बने हैं । मनुष्य को बदलने की प्रक्रिया समझ में आनी चाहिए । जनम-जनम से यही बदलने की प्रक्रिया का ही भूल-भूलैया होता है । जिससे वह जुड़वाता है, वहीं वह चिपक जाता है । जो चिपक जाता है, वह अपने अस्तित्व को खो देता है और उसी का बन जाता है जिसको वह चिपका है उसका अपना कोई प्रभाव नहीं ।

फल आकर्षक होता है, किन्तु वह खाद्य पदार्थ है । उसका उपयोग न किया जाय तो समय होते ही सड़ान पैदा कर देता है । ताज़ा फल स्वस्थता बनाए रखता है तथा वही सड़ा हुआ फल अस्वस्थता को निमंत्रण देता है । सड़ान होने के बाद वह फल फैंकने के योग्य ही होता है । जिसके जीवन में सड़ान फैल गई है, कैन्सर की गठान बन गई है, उसका ऑपरेशन तो करना ही होगा । जिस साधक ने शरीर का भीतर और बाहर दोनों स्वरूप देखा है वह सड़ान से अपने आपको बहुत कुछ बचा सकता है ।

हमारी सड़ान वैयक्तिक जीवन से सम्बन्धित है । सामाजिक जीवन से सम्बन्धित है, पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित है । क्योंकि हमने परिवर्तन का सूत्र ही खो दिया अथवा किसी दूसरे से जोड़ दिया, चिपका दिया । जो शरीर के स्वरूप को, अंदर बाहर के प्रभुत्व को और परिणाम को जानता है, वही शरीर को साधन मानकर साधना के माध्यम से शरीर का उपयोग कर सकता है । शरीर माध्यम है आत्म साधना का । शरीर माध्यम से अच्छे और बुरे कर्म व्यवहार के निर्माण का । शरीर माध्यम है कर्म फलों को भोगने की अभिव्यक्ति का, शरीर माध्यम है उत्पत्ति और विनाश की शृंखला का । भीतर और बाहर दोनों प्रकार की आदतों का परिवर्तन करना है । आत्मसाधना ही परिवर्तन का उपाय है । उसी परिवर्तन से शरीर को अंदर और बाहर साधा जाता है ।

ॐ
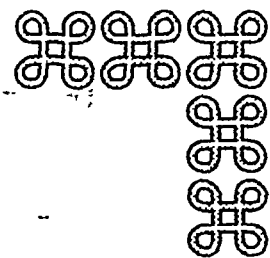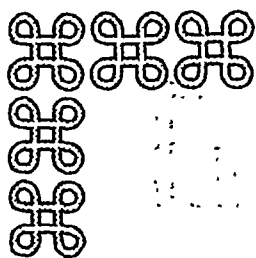
४६. "जे अणण्णदंसी, से अणण्णारामे,
जे अणण्णारामे, से अणण्णदंसी ।"

अर्थ—जो अनन्य को देखता है, वह अनन्य में रमण जाता है । जो अनन्य में रमण करता है, वह अनन्य को देखता है ।
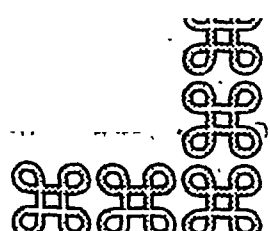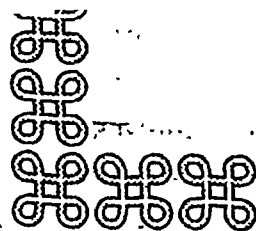
अपने आप पर आस्था

साधना का प्रथम चरण है अपने आप को देखना । जो अपने आपको देखता है वही अपने आप में खो जाता है । जो अपने आप में खो जाता है वही भीतर आत्म-दर्शन पाता है । बाह्य जगत आकर्षण का केन्द्र है, किन्तु अपने आप पर आस्था है तो अन्यत्र भटकने की आवश्यकता नहीं ।

प्रिय.........

आत्मा के द्वारा आत्मा को देखो, सत्य का उद्‌घाटन अपने आप हो जायेगा । आत्मा को देखना बहुत बड़ी साधना है । ग्लोब को बनाया और पुनः मिटाया इस प्रकार छत्तीस हजार ग्लोब को बनाकर मिटाने वाला एडीसन एक बार सही ग्लोब का निर्माण करने में सफल हो गया । मेडम क्यूरी के पुरुषार्थ के लिए आज संसार को गौरव है । वह लोहे में से रेडियम का निर्माण करने में सफल रहीं ।

बाह्य पदार्थों को सफल करने के लिए एकाग्रता और पुरुषार्थ का प्रमाण वैज्ञानिकों से मिलता है वैसे ही आत्मानंदी बनने के प्रमाण भी योगी, ऋषि-मुनि, महात्माओं के माध्यम से मिलते हैं अतः आत्मा में रमण करना प्रारंभ कर दो ।

भीतर का आनन्द बाह्य विशुद्ध विचारों के संस्कार का रूपांतरण ही तो है । वाह्य प्रवृत्ति स्थूल है, हर प्रवृत्ति विचार को धारण करती है । हर विचार एक भाव पैदा करता है । हर भावों से एक नयी प्रवृत्ति प्रवर्तमान होती है । शुद्ध भाव शुभ प्रवृत्ति, अशुभ भाव अशुभ प्रवृत्ति धारण करती है । अतः मानव का विशुद्ध व्यवहार एक बहुत बड़े परिवर्तन का क्षण है । परिवर्तन के क्षण में साधक एक नया मोड़ लेता है । जिससे आस-पास के आवरण का अनावरण हो जाता है । आवरण जीवन का अभिशाप है; उसे नियंत्रण करना, रूपांतरण करना या नया मोड़ देना अत्यंत आवश्यक है ।

सारे भाव विधेयात्मक और निषेधात्मक दोनों स्थिति में लम्बी यात्रा करते रहते हैं । दोनों भाव वहुत वड़ी शक्ति है । दोनों अपनी-अपनी शक्ति में

अपने अस्तित्व को समेटते जाते हैं । विधेयात्मक शक्ति अव्यवहारिकता को हटाकर व्यवहार जगत की आवश्यकता पूर्ण करने में सफल रही है । आवश्यकता और आसक्ति दोनों के द्वार अलग-अलग हैं । दोनों की प्रवृत्ति भिन्न है । हम भ्रान्ति कर बैठते हैं और आसक्ति को ही आवश्यकता की प्राथमिकता दे देते हैं । जिससे हमारा जीवन बोझिल बन जाता है । भीतर का आनन्द आसक्ति में रूपांतरित हो जाता है । प्यार ठुकराया जाता है । और शान्ति विषाद का रूप धारण करती है ।

मानसिक तनाव, पारिवारिक अवसाद और पदार्थ, वस्तु या व्यक्ति का रागात्मक व्यवहार जीवन की बहुत बड़ी लकीरें हैं । विचार रागात्मक है, व्यवहार रागात्मक है और रागात्मक निषेधात्मक शक्ति है । जीवन में हर प्रवृत्ति आवश्यक ही होती है, ऐसा नहीं । जीवन की हर प्रवृत्ति अनिवार्य ही होती है, ऐसा भी नहीं है । अनेक प्रवृत्ति जो आवश्यक नहीं है फिर भी उसके प्रति आसक्ति होने पर उसको ही महत्व दिया जाता है । जिसके भीतर का आनन्द लुप्त हो जाता है । वह प्रसन्नता के मैदान में विजय पाने के लिए उत्सुक तो रहता है किन्तु विजय के पहले ही उसे अपनी हार स्वीकारनी पड़ती है । आसक्ति का प्रयोग जीवन को धोखा देने का प्रयोग है । पाप व्यवहार कराने का प्रयोग है और क्रूर कर्मों में संलग्न रखने का प्रयोग है । हमारी यथार्थता की चेतना को जगाने का एक माध्यम है आनन्द । जो अपने आप को देखता है, अपने आपको जानता है ।

⌘
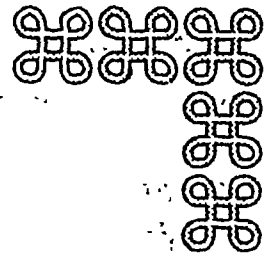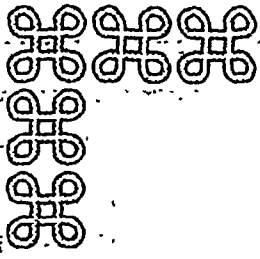
**४७. "एगं विगिंचमाणे पुढो विगिंचइ,
पुढो विगिंचमाणे एगं विगिंचइ ।"**

अर्थ—एक का विवेक करने वाला अनेक का विवेक करता है, अनेक का विवेक करने वाला एक का विवेक करता है।
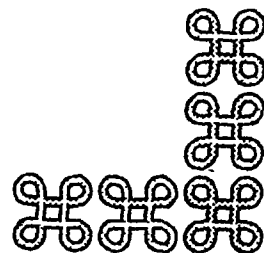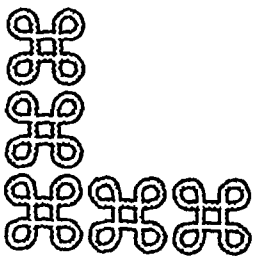
अभेद ज्ञान का मंत्र विवेक

मैं हूँ वही परमात्मा और परमात्मा है वहीं मैं हूँ, ऐसा अभेदज्ञान का मंत्र है । अतः आत्म तत्व की जिसको स्पर्शना हो गई संसार के समस्त पदार्थों की स्पर्शना हो गई । हमें आत्म तत्व में तन्मय होना है । तन्मयता की पुनरावृत्ति वृत्तियों के संस्कार को क्षीण करती है । फलतः देश-भक्ति शिथिल होती है । इस शरीर के भीतर छिपा हुआ आत्मा हर समय अपने को व्यक्त करने का प्रयत्न करता है । मन की अस्थिरता हर समय उत्तेजित होती रहती है । जिससे प्रयत्न होने पर भी सफलता नहीं मिलती है । मन, वुद्धि और शरीर के माध्यम से वृत्तियों की उत्तेजना व्यक्त होती है जिससे वृत्तियाँ मन, वुद्धि और देह से प्रतिवद्ध हो जाती हैं । जिस साधक ने मन, बुद्धि और देह का सहारा लिया है और विवेक का सहारा नहीं लिया है, वह आत्म-स्वरूप का पदार्थ विश्लेषण नहीं कर सकता । अतः विवेक बुद्धि ही विश्लेषणात्मक शक्ति है । जिसने एक विवेक का साक्षात्कार कर लिया है उसने अनेक अनुभव को प्राप्त कर लिया है ।

मानव प्रवृत्ति से वँधता है और निवृत्ति से मुक्त होता है । फिर भी भीतर के संस्कार से आदमी प्रवृत्ति को छोड़ नहीं सकता है और निवृत्ति से मुक्त हो नहीं सकता । जब तक प्रवृत्ति से मुक्त नहीं हो सकता तब तक निवृत्ति संभव ही नहीं, और निवृत्ति न होने से मुक्ति भी संभव नहीं अतः प्रवृत्ति से मुक्त होने के लिए उसे पहुँचना होगा निवृत्तिमय प्रवृत्ति में । साधक हर प्राणी की तरह खाता है, पीता है, उठता है, वैठता है, घूमता है, फिरता है, सोता है, व्यवसाय करता है ये प्रवृत्ति है । जिस प्रवृत्ति के पीछे संस्कार रह जाते हैं वह प्रवृत्ति-प्रवृत्ति है निवृत्ति नहीं । किन्तु जिस प्रवृत्ति के पीछे संस्कार रहते नहीं वह प्रवृत्ति प्रवृत्ति होने पर भी निवृत्ति है ।

रंगमंच पर अभिनेता जो भी अभिनय करता है उसी रूप में करता है फिर भी वह जानता है कि मैं वह नहीं हूँ जो प्रेक्षक मुझे देख रहे हैं । प्रवृत्ति होने पर भी अभिनय उसके लिए निवृत्तिमय है । रंगमंच पर कभी

अभिनय करते हुए उसे मृत्यु का रूप धारण करना पड़ता है फ़िर भी वह जानता है कि मैं जिन्दा हूँ । अतः कभी वह पुरुष के रूप में, कभी वह स्त्री के रूप में, कभी वह राजा के रूप में और कभी वह भीखमंगे के रूप में आता है । किन्तु उसमें जो विवेक बुद्धि है वही विवेक बुद्धि हर निवृत्ति मय प्रवृत्ति में रखनी है ।

आत्म-जागृति या आत्म-स्मृति के अभाव में ही विवेक बुद्धि का ह्रास होता है अतः आत्म-स्मृति का निरंतर रहना ही विवेक बुद्धि है । प्रमत्त साधक आत्म-स्मृति में रह नहीं सकता । विषय और कषाय से मुक्त हो नहीं पाता । इसलिए कर्मों के आवरण में कभी आवृत्त मलिन कभी अनावृत रूप धारण करता है पर अपने आप को विशुद्ध नहीं कर पाता । आत्म-जाग्रत साधक ही विवेक ज्ञान द्वारा संसार के स्वरूप को जान सकता है और जो एक विवेक से जान सकता है वह उसी विवेक ज्ञान से अनेक को भी जान सकता है ।

ॐ
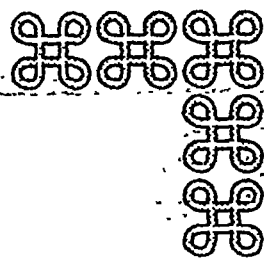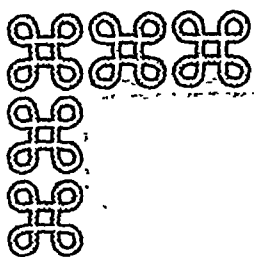
४८. "जे आसवा ते परिस्सवा, जे परिस्सवा ते आसवा, जे अणासवा ते अपरिस्सवा, जे अपरिस्सवा ते अणासवा, एए पए संबुज्झमाणे, लोयं च आणाए अभिसमेच्चा पुढो पवेइयं ।"

अर्थ—जो कर्मबन्ध के स्थान हैं, वे ही कर्म-निर्जरा (कर्मक्षय) के स्थान बन जाते हैं। इसी प्रकार जो कर्म-निर्जरा के स्थान हैं वे कर्मबन्ध के स्थान हो जाते हैं। जो कर्मबन्ध के स्थान नहीं हैं वे कर्मक्षय के स्थान नहीं होते जो कर्मक्षय के स्थान नहीं होते हैं वे कर्मबन्ध के स्थान नहीं होते हैं। अतः इन विकल्पों को सम्यक् प्रकार से समझने वाला तथा जीव समूह को आप्तवाणी की आज्ञा से जानकर आस्रव का परित्याग करे।
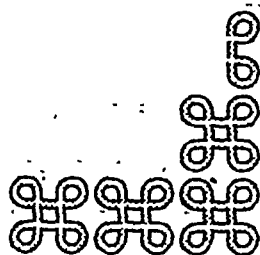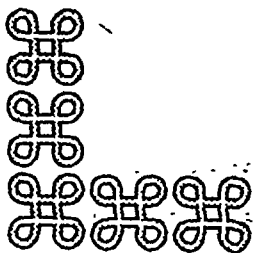
आस्रव और परिस्रव-बन्ध शृंखला

संसार परिवर्तनशील है । हर पदार्थ का परिवर्तन होता है अतः क्रिया, प्रतिक्रिया, प्रवृत्ति, वस्तु, घटना या परिस्थिति के सम्बन्ध में एकांगी दृष्टि से सही निर्णय नहीं दिया जा सकता । एक ही प्रवृत्ति में संलग्न दो मानव के परिणामों की धारा भिन्न-भिन्न होने से एक उसी प्रवृत्ति से कर्म का बन्ध कर लेगा और दूसरा उसी प्रवृत्ति से कर्मक्षय कर लेगा ।

अज्ञानी मानव हजारों वर्षों तक तप त्याग की आराधना करने पर भी जो कर्मक्षय नहीं कर पाता वह कर्मक्षय ज्ञानी केवल एक ही मिनिट में कर सकता है अतः प्रवृत्ति पाप की है या पुण्य की इतना महत्त्व नहीं रखती जितना पाप करते समय भाव कैसे हैं, महत्व रखता है । प्रवृत्ति पाप की होने पर भी भाव पुण्य के हैं और पुण्य की प्रवृत्ति करने पर भी भाव पाप के हैं इस प्रकार भाव पर प्रवृत्ति निर्भर होती है ।

कर्म ग्रहण और कर्म परिणमन की शृंखला निरन्तर चलती रहती है । किसी भी संयोग से होने वाली प्रवृत्ति हमेशा नया बन्धन नया रूप धारण करती है । जहाँ संयोग नहीं वहाँ वन्धन नहीं, नयी शृंखला नहीं वह तो स्वाभाविक है । स्वयं प्रकाशवान है । वहाँ केवल जानना और देखना दो ही प्रवृत्ति हैं । कोई बन्धन नहीं । बन्धन है संयोग में, किसी नियम में, किसी वैभाविक विकल्प में ।

जब तक चैतन्य इन वैभाविक विकल्पों में आवृत्त है तब तक आत्मा अनावृत्त कभी नहीं हो सकता । हमारे भीतर सूक्ष्म शरीर की विकृति निरन्तर प्रवृत्ति करती रहती है । उसी के माध्यम से कर्मों को आकर्षित किया जाता है । ये पूर्व कर्म ही नये कर्मों को पकड़ता है । इस प्रकार समूचे संसार में आत्मा और कर्म का साम्राज्य छाया हुआ है ।

जिस व्यक्ति ने इतना प्रत्यक्ष अनुभव कर लिया है कि उसका स्थूल शरीर का अस्तित्व केवल वर्तमान जीवन का ही अस्तित्व है तो अवश्य उसका ध्यान उन कर्मो की जड़ों की ओर पहुँचेगा ही कि जो कर्म का कर्त्ता है वही कर्मों

का भोक्ता है । मेरे कर्मों का फल मुझे ही भोगना है, उसका जवाबदार अन्य नहीं है मैं ही हूँ । मेरी ही अपनी मालिकी है अतः कर्मबन्धन से मुक्त होने का चिन्तन करें ।

⌘
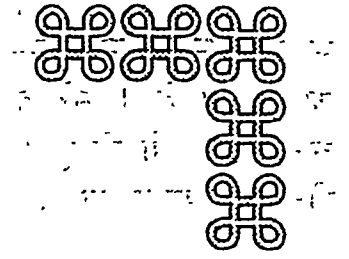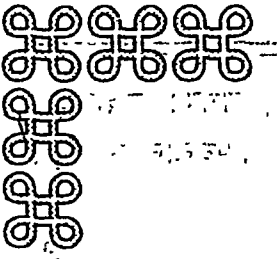
"जे एगं नामे, से बहुं नामे,
जे बहुं नामे, से एगं नामे ।"

अर्थ—जो एक को झुकाता है, वह बहुतों को झुकाता है ।
जो बहुतों को झुकाता है, वह एक को झुकाता है ।
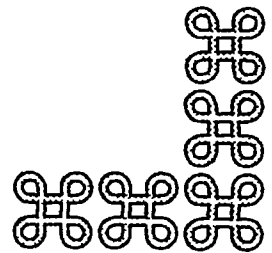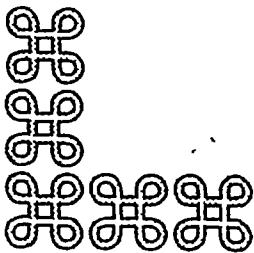
झुकना और झुकाना

जड़ और चेतन के विवेकज्ञान की प्रक्रिया जिसको आत्मसात हो जाती है वही एक को और बहुतों को झुका सकता है । कोल्हू के माध्यम से तिल और तेल को पृथक किया जाता है । घर्षण के माध्यम से काष्ट और अग्नि को पृथक किया जा सकता है । अग्नि के द्वारा सोना और मिट्टी को पृथक किया जा सकता है, वैसे ही विवेक ज्ञान के माध्यम से आत्मा और शरीर को पृथक किया जा सकता है ।

स्थूल शरीर के भीतर सूक्ष्म शरीर विद्यमान है और सूक्ष्म शरीर के भीतर चेतन आत्मा विद्यमान है । स्थूल शरीर जड़ है आत्मा चैतन्य है । आत्मा अदृश्य है शरीर दृश्य है । आत्मा ज्ञाता दृष्टा है शरीर ज्ञेय है । इस प्रकार जो साधक देह और आत्मा के भेदज्ञान को सुदृढ़ करता है वह आत्मा के चिन्मय स्वरूप में तन्मय हो जाता है । उसके विचार, अध्यवसाय, मन, इन्द्रिय सभी बाह्य भाव एक ही दिशा के मालिक हो जाते हैं । आत्मा समूचे शरीर में व्याप्त है । अणु-अणु में एकाकार है । शरीर के प्रत्येक अवयव से आत्मप्रदेश को पृथक करने की एक ही प्रक्रिया है— भेदज्ञान । इस प्रक्रिया द्वारा अनेकों को झुकाना सहज हो जाता है । एक आत्मतत्व पर विजय पाने वाला संसार के समस्त तत्वों पर विजय प्राप्त कर लेता है जैसे एक राजा विजयी होता है तो समस्त प्रजा पर विजय मानी जाती है । जिसका आत्मतत्व दुर्बल है उसके ऊपर संसार के समस्त तत्व हावी हो जाते हैं क्योंकि जिनका खुद राजा परास्त हो जाता है उनकी प्रजा परास्त ही होती है ।

अनात्मीय तत्वों में आत्मीयता का अभिनिवेश होने पर अन्तःस्थल में छिपे आनन्द का स्पर्श नहीं हो सकता । तत्वों का ज्ञान ही अस्तित्व का वोध है । बाल्यावस्था में ही आत्मज्ञान प्राप्त करने वाला बड़े-बड़े पण्डितों को भी झुका देता है । झुकाने के निदान की मीमांसा अनेक तत्वज्ञों ने की है । तत्वज्ञ जिस भूमिका का होता है उसी भूमिका के सन्दर्भ में वह सोचता है । अनात्मीय तत्वों में सर्वाधिक सानिध्य शरीर का ही होता है । शरीर अनात्मिक होने पर भी हमारी बुद्धि में जो भ्रम खड़ा है वह शरीर में ही आत्मीयता

के संस्कार स्थापित करता है । अतः शरीर और चैतन्य को एक मानना बहिरात्मा है । शरीर और चैतन्यता की भिन्नता का अनुभव करना अन्तरात्मा है और अनात्मा में स्थित आत्मीय तत्व को आवरण से मुक्त करना परमात्मा है । अतः आत्मतत्व का बाधक तत्व है अहं । जो एक अहं को झुकाता है वह सभी आवेगों को झुकाता है जो सभी आवेगों को झुकाता है वह अहं को भी झुकाता है ।

⌘
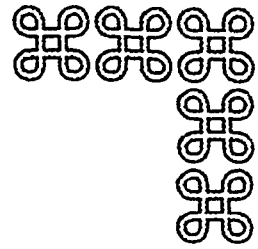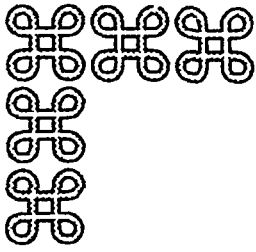
४९. "चिट्ठं कूरेहिं कम्मेहिं, चिट्ठं परिचिट्ठति ।
अचिट्ठं कूरेहिं कम्मेहिं, णो चिट्ठं परिचिट्ठति ।"

अर्थ—जो मानव अत्यन्त गाढ़ अध्यवसाय वस क्रूर कर्मों में प्रवृत्त होता है, वह उन क्रूर कर्मों के फलस्वरूप अत्यन्त प्रगाढ़ वेदना वाले स्थान में पैदा होता है । जो गाढ़ अध्यवसाय वाला न होकर, क्रूर कर्मों में प्रवृत्त नहीं होता वह प्रगाढ़ वेदना वाले स्थान में उत्पन्न नहीं होता है ।
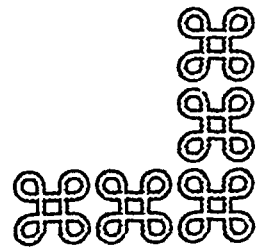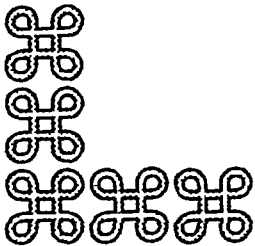
शुभ और अशुभ कर्म शृंखला

अध्यवसाय अर्थात् शुभ और अशुभ भावों की शृंखला । भावों की पुनरावृत्ति मनुष्य के चित्त पर संस्कारों की रेखा अंकित करती है । जिससे मानव की क्रूर कर्मों में प्रवृत्त होने की या क्रूर कर्मों में प्रवृत्त न होने की अवस्था का निर्माण होता है । यही अवस्था मानवीय प्रकृति के अनुसार, आस-पास के वातावरण के अनुसार, देशकाल की स्थितियों के अनुसार तथा जातीय वैमनस्य के अनुसार निर्मित होती है । आसक्ति की प्रगाढ़ता उसमें एकरसता उत्पन्न कर देती है । अतः फलस्वरूप वह मानव अत्यन्त प्रगाढ़ वेदना वाले स्थान में पैदा हो जाता है, जहाँ केवल वेदना ही वेदना है ।

जीवन की कुछ दुर्बलताएँ ऐसी हैं जिससे प्राणी पराधीनता को स्वीकारता है । जैसे—आहार, भय, मैथुन और परिग्रह इन संज्ञाओं में अनुरक्त होने से वेदना भुगतनी पड़ती है । संज्ञा में आक्रान्त होने से अनेक कामनाएँ जाग्रत होती हैं । इन पीड़ा से जो संवेदना उत्पन्न होती है उसका भी मूल कारण कर्म ही है । अशुभ कर्मों की तीव्रता सत्य का यथार्थ-दर्शन नहीं करने देती । अतः इन कर्मों का शमन करने से राग-द्वेष का द्वंद मंद होता है । जिसके फलस्वरूप जीव प्रगाढ़ वेदना वाले स्थानों में उत्पन्न नहीं होता है ।

अतिव्यस्तता, तीव्र चिन्ता, तीव्र भय और तीव्र कामुकता शारीरिक और मानसिक दोनों तनावों से ग्रसित करती है और तनाव आत्म-साधना में, आत्मानुभूति में और आत्मानुप्रेक्षा में सर्वथा बाधक है । आनन्द की, प्यार की और प्रसन्नता की उपलब्धि का साधन है भीतर की अनुभूति । प्रगाढ़ वेदना में मानव को भीतर जाने के सारे द्वार ही बंध होते हैं । क्रूर कर्मों में प्रवृत्त मानव द्वार खोल ही नहीं सकता । माया शल्य, निदान शल्य और मिथ्या दर्शन शल्य उसे उस द्वार तक पहुँचने ही नहीं देते । ये तीनों ऐसे गलत एक्स-रे हैं जो भीतर की बीमारियों का निदान ही नहीं होने देते । ये तीनों उस अवस्था तक पहुँचे हैं जहाँ वेदना की दरारें मिट नहीं सकतीं । निदान या दरारों को मिटाने के लिए अध्यवसाय का रास्ता खोजना होगा ।

विचारों की दुनिया का ज्ञान पाना होगा । भीतर से उठी हुयी भावना तरंगों की ओर दृष्टि करने से ही क्रूर कर्मों में प्रवृत्त होने वाले अध्यवसाय से मुक्त हो सकता है । द्वार खुल सकते हैं और भीतर प्रवेश कर सकते हैं ।

⌘
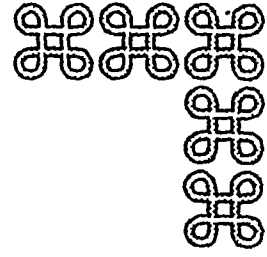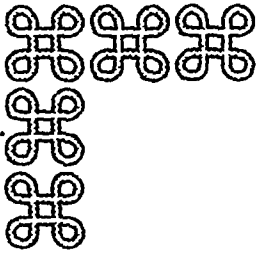
५०. "संसयं परिजाणतो संसारे परिण्णाते भवति,
संसयं अपरिजाणतो, संसारे अपरिण्णाते भवति ।"

अर्थ—जो संशय को जानता है, वह संसार को जान लेता है—जो संशय को नहीं जानता, वह संसार को नहीं जान पाता ।
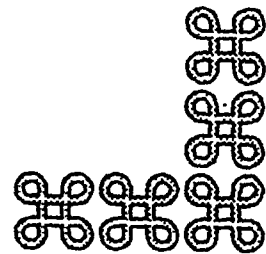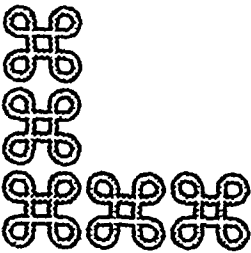
संशय और संसार

सत्य को पाने के लिए जब तक जिज्ञासा जाग्रत नहीं होती तथा वास्तविकता परखी नहीं जाती तब तक सत्य की उपलब्धि सम्भव नहीं हो पाती । अतः मोक्ष और संसार के विषय में संशय अर्थात् जिज्ञासा का परिज्ञान होना आवश्यक है । जिज्ञासा-मूलक संशय मानव के ज्ञान की अभिवृद्धि करने में बहुत बड़ा सहायक तत्व है । जब तक व्यक्ति, वस्तु और वातावरण का ज्ञान घटित नहीं होता तब तक जिज्ञासा शान्त नहीं हो पाती । मानव चेतना में व्यक्ति के प्रति ममत्व, पदार्थ के प्रति आकर्षण और घटना के साथ जुड़ जाना तीनों कार्य उपस्थित होते हैं ।' इन तीनों कारण से संसार के परिणाम समझे जाते हैं । जिज्ञासा इन कारणों का समाधान पाने का उपाय है ।

संसार जन्म और मृत्यु के चक्र का नाम है । वह सुखकर है या दुःख रूप है ऐसी संशयात्मक जिज्ञासा जाग्रत होती तथा संसार की असारता का यथार्थ परिज्ञान होगा । संसार का परिभ्रमण राग और द्वेष से होता है अतः राग और द्वेष से मुक्त होने का उपाय क्या ? ऐसे संशयात्मक समाधान से मोक्ष प्राप्ति का उपाय प्राप्त होता है ।

इस प्रकार जिसे सशय का परिज्ञान हो जाता है उसे संसार के स्वरूप का परिज्ञान हो जाता है । समस्या है तो समाधान मिलता ही है । यदि समस्या ही नहीं तो समाधान कीं खोज की आवश्यकता ही नहीं । संशय, जिज्ञासा, पृच्छा जो भी कहो उसके परमाणुओं का संचय ही समस्या है । रागात्मक और द्वेषात्मक दोनों प्रकार की समस्या संवेदनात्मक होती है । मनोज्ञ और अमनोज्ञ दोनों संवेदना से संसार भरा है । कई समस्याएँ ऐसी होती हैं जो भीतर जाती हैं तो तनाव पैदा करती हैं । व्यर्थ की कल्पनाएँ और उलझन पैदा करती हैं और संवेदना की कारा में साधक को कैद करती हैं । कल्पना का आक्रमण बड़ा भयंकर होता है उस समय वस्तु स्थिति का बोध नहीं रहता । अनेक सुखद और दुःखद स्पर्शों की अनुभूति के चित्र-विचित्र दशा में प्राप्त होते रहते हैं । आँखों का सम्बन्ध रूप से है, कानों का सम्बन्ध शब्द से है और जिह्वा का सम्बन्ध रस से है । शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श

के विषयों के ही तो संशय होते हैं । यह विषय ही तो संसार है । संसार के समस्त पदार्थ विषय हैं । इन पदार्थों का ही तो हम पर प्रभाव है ।

इन्द्रिय और मन की परिधि में हमारी लाखों समस्याएँ सुलझती हैं और उलझती हैं । उसी चक्रव्यूह में सारा संसार पलता है । अतः संशय और संसार दोनों से मुक्त होना है । दोनों को परास्त करना है । दोनों की समस्या का समाधान पाना है ।

⌘
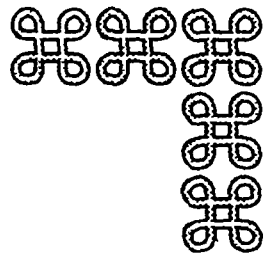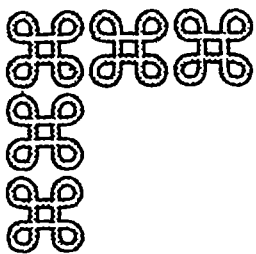
५१. "जं सम्मं ति पासहा, तं मोणं ति पासहा ।
जं मोणं ति पासहा, तं सम्मं ति पासहा ।"

अर्थ—जहाँ सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय की साधना है, वहाँ मुनित्व है, जहाँ मुनित्व है वहाँ रत्नत्रय की साधना है ।
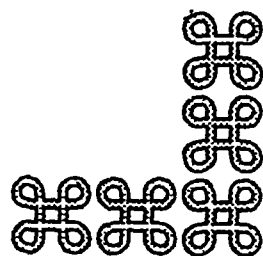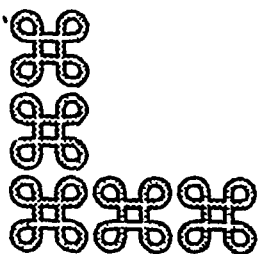
साधन और साधना का मिलन बिन्दु

जो सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यक चरित्र इन तीनों रत्नत्रय की साधना में संलग्न रहता है, वह मुनि होता है । जहाँ सम्यग् ज्ञान होता है, वहां सम्यग् दर्शन अवश्य होता है । अतः ज्ञान और दर्शन का तादात्मय सम्बन्ध है । ज्ञान और दर्शन का फल चारित्र है । अतः ज्ञान का सार आचार है और आचरण ज्ञान के बिना सम्भव नहीं । इस प्रकार सम्यग् दर्शन, ज्ञान और चारित्र ये तीनों समन्वित रूप से ग्रहण किये गये हैं ।

ज्ञान पर आवरण है, दर्शन पर आवरण है सम्यक आचरण के बिना आवरण को हटा नहीं सकते हैं, आचरण शून्य ज्ञान की साधना आवरण से मुक्त नहीं होने देती । जो भी प्रवृत्ति करनी है उसमें देखना और जानना दो ही कार्य करने हैं । हम देखते हैं, हम जानते हैं किन्तु साथ-साथ संवेदन को जोड़ देते हैं । रागात्मक या द्वेषात्मक भाव जुड़ते हैं, देखना और जानना दोनों में परिवर्तन हो जाता है । कुछ अच्छा देखा जाता है, कुछ अच्छा जाना जाता है, कुछ बुरा देखा जाता है, कुछ बुरा जाना जाता है । इस प्रकार दर्शन और ज्ञान की सत्यता आचरण की सत्यता है किन्तु जहाँ दर्शन और ज्ञान की सत्यता नहीं वहाँ आचरण की सत्यता नहीं ।

क्योंकि ज्ञान के साथ विकल्प जुड़े हैं । विकल्प के साथ आकार जुड़े हैं । आकार के साथ स्मृति और कल्पना जुड़े हैं । स्मृति और कल्पना के साथ संसार जुड़ा है । संसार ने ज्ञान और दर्शन को अपनी सचाई की सीमा में वंध रखा है । अतीत और अनागत काल्पनिक विकल्प के खतरे में ढालता है । अतः वैकल्पिक ज्ञान साधना नहीं हो सकता, तात्विक ज्ञान ही साधना हो सकता है ।

साधना एक मूल्यवान तत्व है उसे विकल्प के तराजू से नहीं तोला जाता । राग और द्वेष के विकल्प से मिली हुई ज्ञान की साधना फलित नहीं होती । विकल्प जीवन का तूफान है । सागर शांत और गम्भीर होता है पर जब तूफान उठता है तो नौका को भी समाप्त कर देता है । मानव के विचार, मानव के भाव, मानव का बौद्धिक स्तर शान्त है तब तक सब कुछ शान्त है

किन्तु जैसे ही विचारों में तूफान उठा ही नहीं कि सारा संसार युद्ध से भर जायेगा । राग-द्वेष की तरंगों से नरसंहार घटित हो जायेगा । आपस में क्रोध का तूफान उठता है और वैर की परम्परा लम्बी यात्रा प्रारम्भ कर देती है । अहं का तूफान जाग जाता है उसके लिए सारा संसार छोटा बन जाता है । विकल्पों का प्रदूषण जब तक दूषित रहेगा ज्ञान नहीं हो पायेगा । अतः सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक् चरित्र ही साधना है ।

⌘
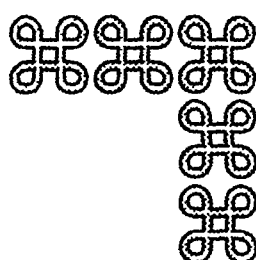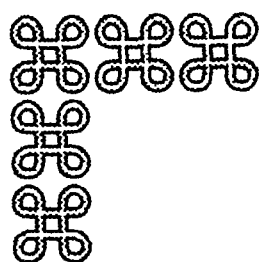
५२. "जे पज्जवजाय-सत्थस्स खेयण्णे, से असत्थस्स खेयण्णे,
जे असत्थस्स खेयण्णे, से पज्जवजाय-सत्थस्स खेयण्णे ।"

अर्थ—जो (विषयों के) विभिन्न पर्यायों में होने वाली आसक्ति के अंतस् को जानता है, वह अनासक्ति के अंतस् को जानता है, जो अनासक्ति के अंतस् को जानता है वह (विषयों के) विभिन्न पर्यायों में होने वाली आसक्ति के अंतस् को जानता है ।
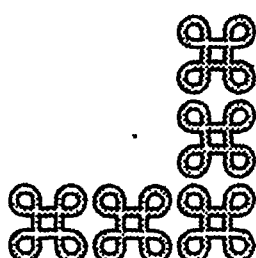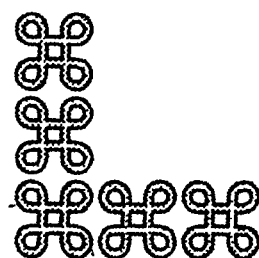
आसक्ति और अनासक्ति

विषय-कषाय, राग-द्वेष, काम-भोग आदि से सावधान और जाग्रत रहने वाला तथा हिंसादि विकृत पाप कर्मों से विरक्त रहने वाला साधक ही शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्शादि के निमित्त से होने वाली आसक्ति को जान सकता है, और जानने के पश्चात् खेद को व्यक्त करता है ।

विरक्ति वह चेतना की ऐसी भूमिका है जिसका स्थूल दृष्टि या स्थूल जगत से सम्बन्ध नहीं रहता । अनासक्ति की भावना चेतना की गहराई को छूकर के उठती है । सामने शब्दादि विषय आते देखकर मानव उमसें उलझ जाता है और विरक्ति की भावना से दूरी हो जाती है । तब वह अनुभव करता है कि संसार ही सार रूप है । कामना का उपभोग ही सरसता है । तब उसे भोगोपभोग का संयोग ही प्रिय लगता है । आसक्ति के मंच पर अनासक्ति, विरक्ति या शान्ति का सामंजस्य हो ही नहीं सकता । चेतना के स्तर पर जीने वाला साधक स्वयं सत्य का अनुभव करता है । स्थूल मन के स्तर पर जीने वाला शब्दादि स्पर्श के भोग को ही सुख मानता है । क्या उसे विषयों में ही जीने दें क्या उसे दुःख ही भोगने हैं । क्या उसे संसार चक्र में ही परिभ्रमण करने दें । अतः साधक इससे ऊपर उठ गया है उसे खेद है अपने भोग, उपभोग और पापमय जीवन का और परिभ्रमण रूप संसार का ।

आसक्ति है वहाँ हिंसा है, आसक्ति है वहाँ झूठ है । एक झूठ हजारों झूठ का परिग्रह कराता है, एक हिंसा हजारों हिंसा के द्वार खोलता है । झूठ सच्चाई के साथ पलता है या सच्चाई झूठ के साथ पलती है । हिंसा प्यार के साथ पलती है या प्यार हिंसा के साथ पलता है । सभी धर्म, सभी सम्प्रदाय, सभी ध्यान साधना और सभी उपदेश इन आशक्ति जन्य राग और द्वेष की अनुभूति को समझने के लिए ही पैदा हुए हैं । हमें सबसे अधिक आसक्ति जिसके प्रति है उसी के प्रति अधिक प्यार है, उसी के प्रति अधिक क्रोध है । क्रोध इसलिए है मुझे जो पदार्थ प्रिय है । वही मेरे प्रिय को भी प्रिय होना चाहिए ऐसा मेरा दावा है यदि प्रिय ने मेरा प्रिय पदार्थ ठुकरा

दिया तो मुझे गुस्सा आया अतः मुझे जो पदार्थ प्रिय है वही सबको होना चाहिए ऐसा नहीं किन्तु सबको प्रिय है वह मेरे लिए प्रिय है ऐसा सोचना अनासक्त की साधना है, आसक्ति से विरक्ति पाने का उपाय है । हमने अनासक्ति के उपायों की उपेक्षा कर रखी है और आसक्ति के उपायों से परेशान हैं फिर भी अनासक्ति के अंतस को जान नहीं पाते और अनासक्ति के अंतस को अपना नहीं पाते ।

⌘
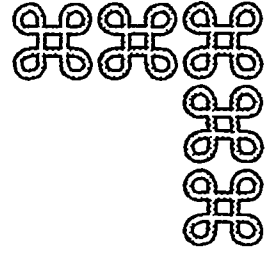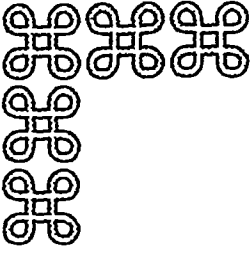
५३. "अत्थि सत्थं परेण परं, णत्थि असत्थं परेण परं ।"

अर्थ—शस्त्र उत्तरोत्तर तीक्ष्ण होता है । अशस्त्र उत्तरोत्तर तीक्ष्ण नहीं होता—वह एकरूप होता है ।
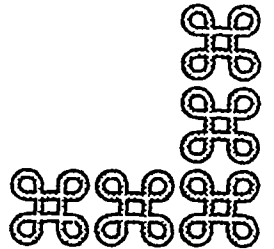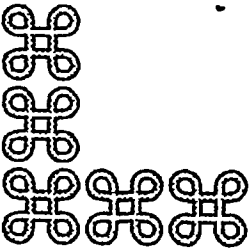
शस्त्र और अशस्त्र का बोध

शस्त्र दो प्रकार के हैं । बाह्य और आभ्यंतर । बाह्य शस्त्र धार, भार और आकार होने से तीक्ष्ण से तीक्ष्णतर होते हैं । विज्ञान ने ऐसे शस्त्रों का निर्माण किया है कि एक ही मिनट में पूर्ण विनाश हो सकता है । प्राचीन युग में दण्डा ही शस्त्र था, फिर तीर, भाला, तलवार, ढाल का निर्माण हुआ किन्तु आज इनकी कोई आवश्यकता नहीं; आज तो बम्ब ही सर्वेसर्वा है और विनाश ही सर्वेसर्वा है ।

आभ्यंतर शस्त्र हमारे भीतर भरे हैं । ईर्ष्या के कारण हमने अनेक शस्त्रों का भीतर निर्माण किया है । जिससे चारों ओर से हिंसा के प्रयोग होते हैं जैसे—

१. आत्मबल (शरीर वल)—शारीरिक शक्ति का संवर्धन हेतु मद्य, मांस आदि का सेवन करना खाद्य रूप हिंसा का प्रयोग है ।

२. ज्ञातिवल—अपने समाज की सुरक्षा हेतु अन्य समाज में प्रतिशोध की भावना रखना जाति रूप हिंसा का प्रयोग है ।

३. मित्रबल—मान सन्मान और प्रतिष्ठा हेतु दुर्जनों से मैत्री साधना, क्लबों में ड्रिंकिंग आदि के लिए प्रीत्यात्मक रूप हिंसा का प्रयोग होता है ।

४. देववल—परलोक में सुख प्राप्ति हेतु दैवीय शक्ति पाने के लिए बलि आदि चढ़ाने में प्राणीज हिंसा का प्रयोग होता है ।

५. रायवल—सरकार (प्रायमिनिस्टरों) के सन्मान एवं सहारा हेतु कूटनीतिक कार्य में माया रूप हिंसा का प्रयोग होता है इत्यादि ।

बाह्य शस्त्र तो एक जन्म का विनाश है किन्तु भीतर के शस्त्र तो जन्म-जन्म के विनाश का शस्त्र है । आदमी के भीतर जो शस्त्र पैदा हुए हैं वे दूसरों को चुभाने के लिए ही पैदा हुए हैं । दूसरों को मारने के लिए ही पैदा हुए हैं, दूसरों के विनाश के लिए ही पैदा हुए हैं । वह कितना नासमझ है, सर्वनाश में खुद का भी नाश विद्यमान है । उसे भूल बैठा है । शस्त्रों के मूल्यांकन होते हैं जीवन के नहीं । शस्त्रों ने जीवन का कभी मूल्यांकन नहीं

किया । जिस साधक के लिए जीवन का मूल्यांकन है उसके लिए शस्त्र अशस्त्र हैं ।

भीतर के शस्त्रों पर विजय पाना ही साधना है किन्तु जब तक समाज के ढाँचे से स्वार्थ जुड़ा हुआ है तब तक अंधविश्वास को कोई भी समाप्त करना नहीं चाहता । साधक साधना चाहता है, साधना के बड़े-बड़े लेक्चर भी देता है पर समय आने पर दो मिनट में साधना का मूल्यांकन समाप्त कर देता है । साधना की बातें मानी जाती हैं उसका सन्मान किया जाता है उसके आदर की चादर बिछायी जाती है किन्तु उससे सर्वथा मुक्त नहीं हुआ है । मुक्त होने वाले विरले ही होते हैं ।

⌘
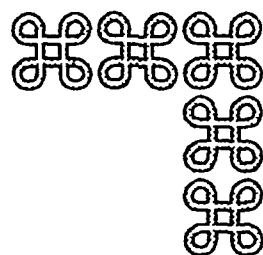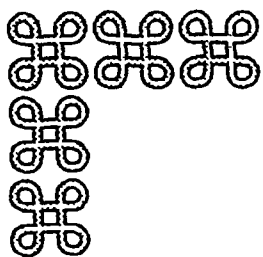
"जेण सिया तेण णो सिया ।"

अर्थ—जिससे सुख होता है, उससे नहीं भी होता ।
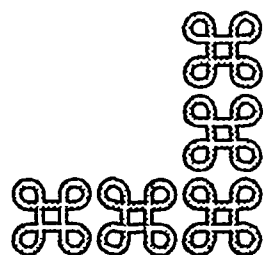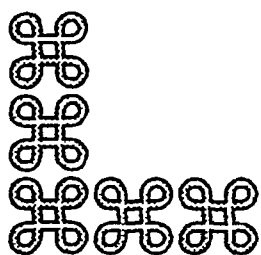
स्वाधीन और पराधीन का अन्तर

मानव भोगेच्छा और कामेच्छा के कटु परिणाम भोगता है फिर भी उससे मुक्त नहीं हो पाता । भोगेच्छा में जो सुख आज उसे मिला है वही कल दुःख रूप बनता है ऐसा ज्ञात होने पर भी, अन्तर हृदय में सदा चुभने वाला काँटा होने पर भी, प्रियता और अप्रियता से आवृत्त बुद्धि मानव इस सत्यता को पहचान नहीं पाता । अतः यह संसार उसके लिए जो सुखद है वही दुःखद हो जाता है । जो भोगोपभोग में लिप्त हो जाता है वही उसे सुख मानता है, जो भोगने पर भी लिप्त नहीं होता है, उसे न तो सुख में सुख है और न ही दुःख में दुःख होता है ।

प्रिय..........

एक साधक के लिए जो सुख है वही सुख एक भोगी के लिए दुःख रूप बन जाता है और एक भोगी के लिए जो सुख है वही सुख एक साधक के लिए दुःख रूप बन जाता है । आदमी बनता भी है और बिगड़ता भी है । हमारे भीतर के रसायन भावों के अनुरूप प्रवाहित होते हैं । बाहर के रसायन मानव के चरित्र को प्रभावित करते हैं तो भीतर के रसायन उन चरित्र निर्माण का रूपान्तरण करता है । उत्थान और पतन, सुख और दुःख, संयोग और वियोग के बीच पल भर का ही अन्तर है । एक राजा बनता है तो दूसरा भिखारी । एक संत बनता है तो दूसरा शैतान । एक में सुबह है तो दूसरे में रात । इन दोनों में न तो कोई विशेष समय का अन्तर है, न ही क्षेत्र का अन्तर है किन्तु दोनों एक दूसरे में विद्यमान हैं । जैसे दूध में दही, सम्पत्ति में सुख का भ्रम, रोग में वेदना, भय में मृत्यु, पुष्प में पराग, शक्कर में मीठापन, लकड़ी में आग और देह में आत्मा विद्यमान है । हर सफेद दूध नहीं होता, हर पीला सोना नहीं होता, हरेक मानव साधक नहीं होता, साधक वही है जिसे सुख मिलता है तो भी क्या और नहीं मिलता है तो भी क्या । वह सुख को भोगने में स्वतन्त्र है, वह दुःख को भी सुख मानने में स्वतन्त्र है । स्वतन्त्रता और परतन्त्रता का पहलू सुख और दुःख रूप में अपने भीतर के स्राव को स्रवित करते रहते हैं । पराधीनता की कैद में पड़ा

हुआ कैदी दुःख को भोगता है । दुःख को भोगता हुआ अनेक शारीरिक, मानसिक बीमारी की वेदना भोगता है । अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करता है । चारों ओर से परतंत्रता ने उसे घेर रखा है । उसकी सीमा में दबोच रखा है । उसे कोई बहाना चाहिए । बहाने के आधार पर वह अपनी कमजोरियाँ छिपाता है और अनेक समस्याएँ खड़ी करता है । सुविधाओं की पकड़ जितनी मजबूत होगी, प्रभाव भी उतना ही गहरा होगा । जितनी ऊँचाई से आदमी गिरेगा, चोट भी उतनी ही गहरी होगी । वैसे ही हमारे विचार जितने विशुद्ध होंगे, हमारा आचार भी उतना ही विशुद्ध होगा ।

वस्तु सत्य का बोध और आत्मानुभूति से दूसरे प्राणियों के साथ तादात्म्य स्थापित होता है । तब भीतर से वह जाग जाता है और कठोरता के स्थान पर कोमल, तिरस्कार के स्थान पर प्यार, निर्दयता के स्थान पर करुणा, वैर के स्थान पर मैत्री, पशुता के स्थान पर मानवता और मानवता के स्थान पर देवता का रूप धारण करता है । सुख के क्षण को जानने वाला गूढ़तम रहस्यों को जान पाता है और साधना में सफलता को प्राप्त कर सकता है । प्रकाश के सामने अन्धकार टिक नहीं सकता । जैसे ही प्रकाश की प्रथम किरण का स्पर्श होता है, अन्धकार समाप्त होने लगता है । सुख का अर्थी दुःख से घबराता है किन्तु जो दुःख से मुक्त है, उसे तो दुःख में भी सुख के ही दर्शन होते हैं ।

⌘
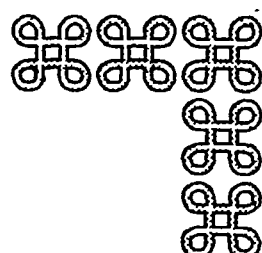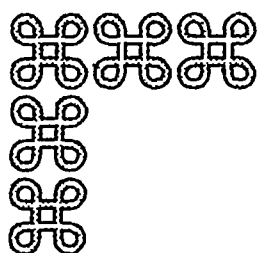
५४. "जहा पुण्णस्स कत्थइ, तहा तुच्छस्स कत्थइ ।
जहा तुच्छस्स कत्थइ, तहा पुण्णस्स कत्थइ ।।"

अर्थ—धर्मोपदेशक जैसे सम्पन्न को उपदेश देता है, वैसे ही विपन्न को देता है । जैसे विपन्न को उपदेश देता है, वैसे ही सम्पन्न को देता है ।
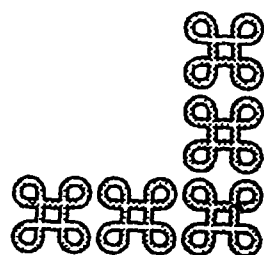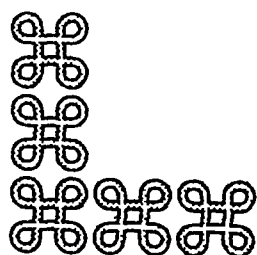
उपदेश से काया-कल्प

पुण्यवान तत्वज्ञ साधक तत्वोपदेश को निर्भय होकर समभाव पूर्वक उपदेश करता है । उनकी निगाह में चाहे कोई पुण्यवान हो या परमात्मा हो, दरिद्र हो या भिखारी हो, गरीब हो या धनाढ्य हो, भेदभाव रहित निस्पृह भाव से उपदेश होता है । भोगी के पास करोड़ों की सम्पत्ति है पर शान्ति नहीं । समाज में बड़ा प्रतिष्ठित है पर जबान पर ब्रेक नहीं । सारे प्रान्त की सत्ता है पर सत्य से प्यार नहीं, वह क्या उपदेश देने का अधिकारी हो सकता है । उपदेश तो वही देने का अधिकारी है जो सम्पत्ति का नहीं शान्ति का चाहक हो, स्वयं शान्ति-प्रिय हो और अन्य को शान्ति की दुआ देता हो ।

धर्म क्षेत्र के मंच पर क्या सम्पन्न क्या विपन्न । दोनों के लिए उपदेश का क्षेत्र एक ही है भिन्न नहीं । भिन्नता है दोनों के श्रवण में, मनन में, चिन्तन में, आचार-विचार और प्रभाव में । मनोविज्ञान का क्षेत्र मन को चेतन और अवचेतन की खोज तक ले गया और सफल भी रहा किन्तु धर्म क्षेत्र तो प्राचीन युग से ही अति सूक्ष्म अवचेतन मन से परे अतीन्द्रिय के स्तर तक पहुँच चुका है । इन्हीं उपदेश के माध्यम से परावाणी का स्रोत बहाया है । इन्हीं उपदेश के माध्यम से साक्षात्कार करने की सफलता पायी है और इन्हीं उपदेश के माध्यम से परमात्मा होने की पूर्णता भी पायी है ।

उपदेश श्रवण के माध्यम से भीतर पड़ा हुआ वर्षों का विरोधाभास मिट जाता है । भाई-भाई का वैर शान्त हो जाता है । आचार और विचार की विशुद्धि हो जाती है । स्वयं सत्य को जानता है । सत्य क्या है उसे मानता है और सत्य है उसे स्वीकार करता है । किसी युग-द्रष्टा ने कहा है, माना है और स्वीकार है अतः मुझे भी उसी लकीर का फकीर बनना पड़ेगा ऐसा नहीं । मैं खुद सत्य का अनुशीलन करूँ, मैं खुद सत्य का अनुभव करूँ, सत्य मैं हूँ और मैं सत्य हूँ ऐसा अनुभव ही सत्य का साक्षात्कार करवाता है । जब तक व्यक्ति का अनुभव जाग न जाय, जब तक साक्षात्कार हो न जाय तब तक व्यक्ति को उपदेश सुनना आवश्यक है । दूसरों के उपदेश की पुनरावृत्ति करने की आवश्यकता है । बाह्य प्रवृत्ति में आशक्त मानव का

उपदेश उपदेश नहीं भाषा है, जो वक्ता के भीतर की ऊर्जा का स्पर्श जब तक श्रोता के जीवन का परिवर्तन न करे उपदेश कोरा उपदेश है । जिस उपदेश में जान नहीं, वह उपदेश भला औरों का क्या भला कर सकता है ।

अहं की मंजिल पर बैठा हुआ मानव क्रोध, काम, मत्सर और लोभ की आग में जलने वाला मानव, राग और द्वेष की अवस्था में जीने वाला मानव, अपने भीतर पड़े हुए कूड़े-कचरे को तो देख ! खुद का कचरा तो साफ कर । जो खुद का कचरा साफ न करता हुआ अन्यों के द्वार को खोलने के लिए जायेगा तो क्या किसी का द्वार खोल पायेगा । जो द्वार ही नहीं खोल पायेगा तो भीतर का कूड़ा कैसे साफ कर सकता है । जो खुद ही अपने जीवन से असफल है वह दूसरो को कैसे सफल बना सकता है ।

वक्ता जिस प्रवाह में वह रहा है उसी प्रवाह में श्रोता को भी बहाता रहेगा । पत्थर की नाव में वक्ता और श्रोता दोनों बैठे हैं कौन किसको उठायेगा । स्थूल मन के आधार पर खींची हुई भेद-रेखा किसका मार्गदर्शन करायेगी । अतः जिसने मूल को पाया है वही मूल का मोल दे सकता है और सम्पन्न-विपन्न को समत्व की नजरों से देख सकता है ।

⌘
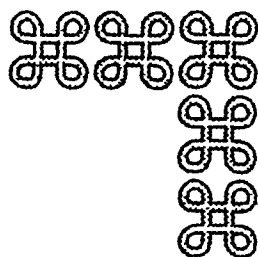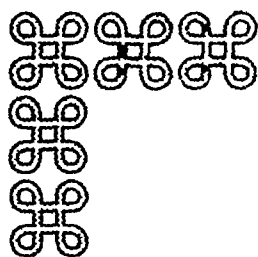
५५. "जे आया से विण्णाया, जे विण्णाया से आया ।
जेण विजाणति से आया ।"

अर्थ—जो आत्मा है, वह ज्ञाता है और जो ज्ञाता है वह आत्मा है क्योंकि वह जानता है, इसलिए वह आत्मा है ।
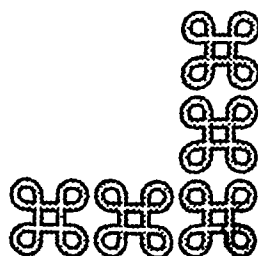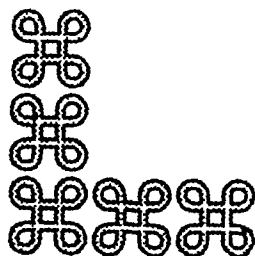
ज्ञान-विज्ञान की विशुद्ध प्रक्रिया

चेतन ज्ञाता है और चैतन्य ज्ञान है । ज्ञानी और ज्ञान दोनों आत्मा हैं चेतन प्रत्यक्ष नहीं होता किन्तु चैतन्य प्रत्यक्ष होता है । बादल सूर्य को छिपा सकता है पर अस्त नहीं कर सकता है । रोशनी को देखकर हम सूर्य के अस्तित्व को जान लेते हैं वैसे ही ज्ञान ज्ञानी का आलोक है अतः ज्ञान को जानने वाला ज्ञानी है ।

प्रिय..........

जो ज्ञाता है वह तू (आत्मा) ही है, जो तू है वही ज्ञाता है, तेरा ज्ञान तुझसे भिन्न नहीं है । तूने आज दिन तक जो कुछ जाना है, जो कुछ माना है, प्रत्यक्ष रूप में, परोक्ष रूप में, सब कुछ स्व और पर का, योग और प्रयोग है । हमने जनम-जनम से तर्क से, प्रेरणा से, निर्णय से, प्रज्ञा से, चिन्तन से, स्फुरण से, स्मरण से, जो कुछ निरीक्षण किया है, वह संयोग और वियोग का अभिनय है । ज्ञान पचाने की क्षमता होनी चाहिए । यदि ज्ञान पचता नहीं तो न जाने क्या-क्या हो जायेगा । बीमार आदमी को अधिक श्रम कराने से, अधिक आहार कराने से, अधिक उलझनों में रखने से, जो हाल होता है उससे भी अधिक ज्ञान के अपाच्य से हानि होती है । जैसे बुरी आदतों से, काम, क्रोध , मदादि से आदमी विक्षिप्त होता है, पागलों की भाँति घूमता है, वैसे ही ज्ञान का अपाच्य मानव को कहीं स्थायित्व दिशा में नहीं ले जाता ।

ज्ञान और विज्ञान की एक ही प्रक्रिया है । जहाँ तक ज्ञान को जानने की जिज्ञासा है वहाँ तक तो सीमित ज्ञान होने पर भी ज्ञान-ज्ञान ही है । किन्तु अन्तर होता है विज्ञान संयोजित तर्क से । वहाँ दोनों की उपयोगिता का क्षेत्र भिन्न हो जाता है । दोनों के योग और प्रयोग के क्षेत्र भिन्न हो जाते हैं । दोनों के भाव, प्रभाव और प्रक्रिया के क्षेत्र भिन्न हो जाते हैं । पत्थर एक ही है किन्तु भिन्न-भिन्न शिल्पियों के हाथों से भिन्न-भिन्न रूप धारण होते हैं । एक ही पत्थर भगवान भी बन सकता है और शैतान भी बन सकता है । शक्ति एक होने पर भी उपयोग भिन्न-भिन्न हो जाता है ।

एक ही शस्त्र शत्रु को मारने का और मित्र को बचाने का कार्य करता है। एक ही शब्द लाखों मानवों का संहार करा देता है और वही एक शब्द लाखों मानवों के संहार को स्थगित करवा देता है। ये शक्ति शब्द की है, ये शक्ति उस शब्द के ज्ञान की है। जब ज्ञान और शब्द में अन्तर होता है तब वही ज्ञान संहार बन जाता है और जब ज्ञान और शब्द में अन्तर नहीं होता तव वही ज्ञान स्थायी और यथार्थ बन जाता है। इससे अज्ञान मिट जाता है और ज्ञान अधिक स्पष्ट हो जाता है। अज्ञान के साथ हमारा रागात्मक और द्वेषात्मक प्रवाह बहता रहता है। अहंकार का तूफान आता रहता है, विचार और विकल्प की वर्षा होती रहती है, इससे बचने के लिए द्वैत और दंदात्मक स्थिति से मुक्त होना ही आवश्यक है। छाते के प्रयोग से वर्षा में बचत होती है, वैसे ही विशुद्ध ज्ञान द्वारा अज्ञान से मुक्त होने में सफलता मिल सकती है। जो साधक जितनी गहराई में उतरता है वह उतना ही अधिक ज्ञाता-द्रष्टा के क्षणों में स्थिर रह पाता है। विकल्पों से मुक्त रह पाता है। निर्विकल्प अवस्था में स्थिर हो पाता है। अवस्था बदलने पर भी ज्ञाता बदलता नहीं किन्तु अवस्था के अनुकूल अपने आपको ढाल देता है। जहाँ प्रतिकूलता भी अनुकूलता में ढालती है, वहाँ किसी भी प्रकार का प्रदूषण नहीं होता है। जो शान्त है, ज्ञाता है, दृष्टा है उसके लिए तो परिषह-उपसर्ग आते भी हैं तो महोत्सव बन जाते हैं।

ॐ

२

स्थूल और सूक्ष्म जगत में बिम्ब और प्रतिबिम्ब

- उत्थान और पतन की उत्पत्ति और विनाश
- प्रतिक्रिया से सावधान
- अहिंसा बुद्धि ही विवेक बुद्धि
- हीन और महान का समन्वय
- प्रियता और अप्रियता में माध्यस्थ
- पदार्थ का आकर्षण और विसर्जन
- सुखद, दु:खद, सत, असत का स्पर्श
- हित, अहित की प्रवृत्ति और प्राप्ति

⌘
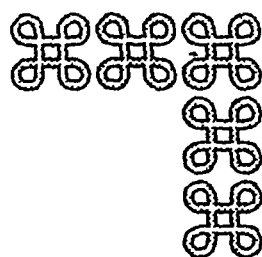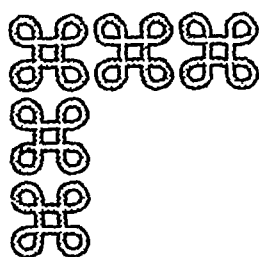
५६. “जे पुव्वुट्ठाई, णो पच्छा-णिवाई ।
जे पुव्वुट्ठाई, पच्छा-णिवाई ।
जे णो पुव्वुट्ठाई, णो पच्छा-णिवाई ।”

अर्थ—जिसके प्रारम्भ में उत्थान है और अंत तक उत्थान ही है । जिसके प्रारम्भ में उत्थान है और अन्त में पतन है । जिसका न तो प्रारम्भ में उत्थान है और न ही अंत में पतन है ।
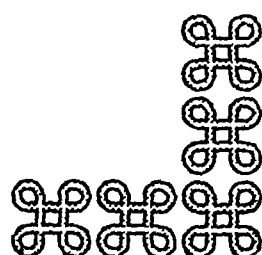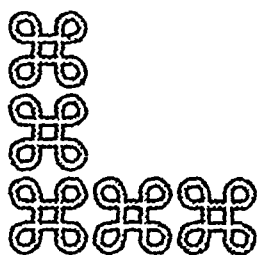
उत्थान-पतन का स्वरूप

साधक की साधना के तीन स्वरूप हैं—उत्थान के साथ उत्थान का, उत्थान के साथ पतन का और तीसरा स्वरूप है उत्थान भी नहीं और पतन भी नहीं। जिसका उत्थान नहीं उसका पतन कैसे हो सकता है। अतः साधना काल में साधकों के जीवन में कई आरोह-अवरोह आते हैं। प्रकाश और तिमिर की भाँति उत्थान और पतन अनादि काल से है। कोई भी युग केवल उत्थान का नहीं होता और कोई भी युग केवल पतन का नहीं होता। आज भी उत्थान है और हजारों वर्षों के पूर्व भी उत्थान था। आज भी पतन है और हजारों वर्षों के पूर्व भी पतन था।

उत्थान के लिए समत्व का बीज बोया जाता है। वात्सल्य का जल सींचा जाता है। तब उसमें से सत्य अंकुरित होता है, जीवन पल्लवित होता है और साधना फलित होती है।

जब समत्व के प्रति प्रगाढ़ आस्था उत्पन्न होती है, तब आस्था की ध्वनि चारों ओर प्रतिध्वनित होने लगती है। उत्थान का मापदण्ड है—ज्ञान और दर्शन से सम्पन्न, तप और त्याग में अनुरक्त, विराग और विरति में मस्त साधक की साधना। उनकी चर्चा में निस्पृहता और सहिष्णुता के बाह्य और आंतरिक बिम्ब और प्रतिबिम्ब झलकते हैं।

साधना अपात्र के हाथ चढ़ जाती है तो उसका पतन हो जाता है। पात्रविहीन साधना, छिलका विहीन फल और भाषा विहीन ज्ञान स्थायी नहीं रह सकता। जब मानव का आचरण अनाचार का आवरण बनकर जीवन पर छा जाता है, तब साधना विफल हो जाती है। केवल छिलके ही नजर आते हैं, और अज्ञान का अन्धकार गहन हो जाता है। यही जीवन का पतन है।

जन्म और मृत्यु के संधि काल में जो साधक न तो कोई साधना करता है जिससे उसका उत्थान होवे और न किसी आचरण का अतिक्रम करता है, जिससे उसका पतन होता है। ऐसा संध्याकाल का जीवन जिसका है उसके

जीवन में न तो प्रकाश है और न अन्धकार है किन्तु दोनों के बीच का संधि काल है ।

योगी योग साधना से पतित हो जाता है तो भोगी बन जाता है और भोगी भोग, वासना से ऊपर उठ जाता है तो योगी बन जाता है । अतः उत्थान यह जीवन का वसन्त है और पतन जीवन का पतझड़ है । दोनों अपनी अमाप शक्ति के मालिक हैं । उत्थान द्वारा अणुशक्ति का विस्फोट आत्मा को परमात्मा बना देता है और पतन द्वारा अणुशक्ति का विस्फोट संत को शैतान बना देता है । इस सूत्र में उत्थान और पतन का सम्यक् निरूपण है, दोनों की त्रैकालिक एवं सार्वभौतिक आस्था का तथ्यात्मक रूप प्रतिपादित किया है ।

⌘
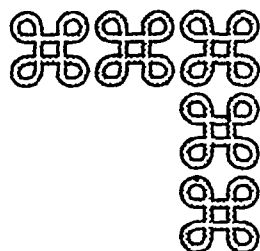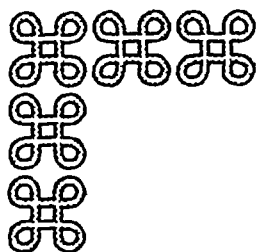
५७. "से अबुज्झमाणे हतोवहते जाइ-मरणं अणुपरियट्टमाणे ।"

अर्थ—प्रमादी पुरुष कर्म सिद्धान्त को नहीं समझता हुआ शारीरिक दुःखों से हत तथा मानसिक पीड़ाओं से अपहत-पुनः-पुनः पीड़ित होता हुआ जन्म-मरण के चक्र में बार-बार भटकता है ।
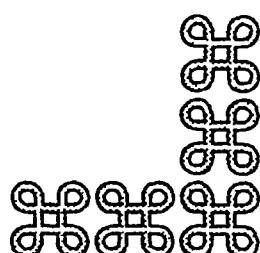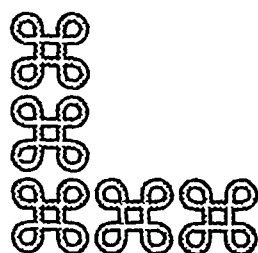
जन्म-मरण की शृंखला

वर्तमान जीवन का आदि बिन्दु है जन्म और अन्तिम बिन्दु है मृत्यु ! जन्म को जानने के पहले जन्म धारण करने वाले का जानना बहुत जरूरी है और मृत्यु को जानने के पहले मरने वाला कौन यह पहचानना जरूरी है । जिसका जन्म नहीं होता जिसकी मृत्यु नहीं होती उसकी पहचान आवश्यक है । क्योंकि जिसका जन्म होता है और जो मरता है उससे अपरिचित रहना सबसे बड़ी गल्ती है । जो अपने से निकटतम है । जिसने अपने लिए आधार का रूप धारण किया है, सर्वप्रथम उससे परिचित होना होगा । क्योंकि उसी के माध्यम से स्वयं का परिचय होगा । जो स्वयं को जानता है वह ज्ञान है और जो जन्म और मृत्यु को जानता है वह विज्ञान है । जिस शरीर का जन्म होता है वही शरीर का संवर्धन होता है और वही शरीर का मरण होता है । इस प्रकार उत्पन्न होना और विनष्ट होना दोनों शरीर के धर्म हैं । इन दोनों के बीच जो ध्रुव है अतीन्द्रिय शक्ति वाला है, जिसका अस्तित्व त्रैकालिक पारिणामिक नित्य है, वह आत्मा है । परिवर्तनशील स्वभाव शरीर का है इसलिए आत्मा एक गति से दूसरी गति में परिणमन करता है और गति के अनुरूप शरीर धारण करता है । अर्थशून्य विकल्पों में विक्षिप्त मानव अपनी ओर निहारना ही भूल जाता है । फलतः अपनी शक्ति को कुंठा की कारा में कैद कर देता है । जिससे उसे प्रतीत होता है कि मैं दुःखों से हत अपहत हूँ । मानसिक पीड़ा से घायल हूँ । जैसे सत्ता और अधिकार के नशे में चूर बलिष्ठ राजा दुर्बल राजा पर आक्रमण करके उसकी सत्ता को हड़प लेता है वैसे ही दुःख, दर्द और पीड़ित मन शरीर पर आक्रमण करता है और समूचे शरीर को घायल कर देता है ।

शरीर की संवेदना से आत्मा पर विकृत आवरण छा जाते हैं । मानसिक पीड़ा की परिस्थिति निमित्त कारण हो सकती है पर वह मूल कारण नहीं है । परिस्थिति की अनुकूलता में अंकुर फूट सकते हैं पर वह भी अंकुर का मूल कारण नहीं है । अंकुर का मूल कारण है बीज । विकृत आवरणों से आच्छादित अंकुर हो सकता है बीज नहीं । विकृति के कारण आत्मा शरीर,

और उसके रोग दर्द, पीड़ा, आदि की परिस्थिति से प्रभावित होता है । इसका मूल कारण कर्म है । कर्म ही जन्म और मृत्यु का मूल कारण है । क्रिया की प्रतिक्रिया होती है । विम्ब का प्रतिबिम्ब होता है । जन्म की मृत्यु होती है ।

संसार में जितने दुःख हैं वे सभी जन्म और मृत्यु की भ्रान्ति से पैदा हुए हैं । भ्रान्ति प्रमाद के कारण होती है । प्रमादी भोगासक्त होने से परिग्रह का संग्रह करता है । उसमें अनुरक्त हो जाता है जिससे वह दूसरों के सुख-दुःख की परवाह नहीं करता, वह शोषक और उत्पीडक बन जाता है । अतः उन कर्मों को भोगने के लिए उसे वार-बार इस संसार में जन्म लेना पड़ता है और मरना पड़ता है ।

⌘
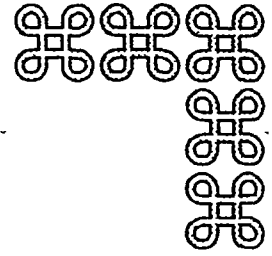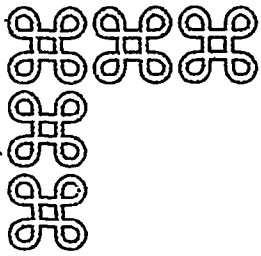
५८. "सव्वतो पमत्तस्स भयं, सव्वतो अप्पमतस्स नत्थि भयं ।"

अर्थ—प्रमत्त को सब ओर से भय होता है । अप्रमत्त को कहीं से भी भय नहीं होता ।
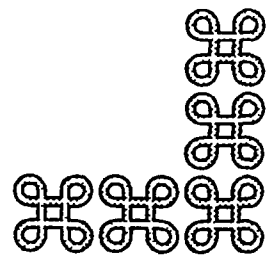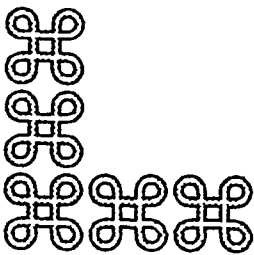
प्रमाद - अप्रमाद का ज्ञान

आवेगों में भय का आवेग समस्त प्रवृत्तियों का मूल कारण है। क्योंकि मानव के पीछे जीवन की कामना और मृत्यु का भय प्रतिक्षण छाया हुआ होता है। यह भय वर्तमान युग की देन है, ऐसा नहीं है। भय से आक्रान्त मानव की व्यथा तो युग-युग से चली आ रही है। बलिष्ठ मानव से दुर्बल भयभीत है। धनाढ्य मानव से दरिद्री भयभीत है। विद्वान पंडित से बुद्धू भयभीत है। राजा से प्रजा भयभीत है। सरकार से जनता भयभीत है। एक राष्ट्र से दूसरा राष्ट्र भयभीत है। इस प्रकार सभी एक दूसरों से भयभीत हैं।

भय के द्वारा शरीर की विभिन्न आकृतियाँ स्वतः निर्मित होने लगती हैं। भीतर के स्नायु घटना के अनुरूप प्रतिबिम्बित होते है। भीतर की धड़कन बाहर की आकृति धारण करती है। अन्तर में उठा हुआ भय का आवेग जैसे ही शरीर पर घटित होता है मन उसी क्षण उस घटना से भयभीत होता हुआ घटनानुसार प्रभावित हो जाता है। भीतर से उठी हुई भय की तरंगें शारीरिक और मानसिक तनाव का रूप धारण करती हैं। जिससे जीवन विकास का ह्रास एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। स्थूल भय की अभिव्यक्ति उत्पन्न होती है पर भीतर गहरा प्रभाव नहीं देती है। सूक्ष्म भय का भीतर गहरा प्रभाव होने से चिन्ता का रूप अंकित हो जाता है और सूक्ष्मतम भय गहरे रोग में पटक देता है तथा जान खतरे में डाल देता है, या जान ही खतम कर देता है। इस प्रकार सूक्ष्म भय के तरंगों को गहराई के तल पर ले जाकर मानव हमेशा अशान्त रहा है। चिन्तित और दुःखी बना है।

जहाँ भय है वहाँ शान्ति की कोई सम्भावना नहीं अतः शान्ति के लिए अभय के द्वार पहुँचना होगा। मानव को भय की शिक्षा जितनी मिली है उतनी अभय की नहीं मिली है। मानव का व्यक्तित्व नकारात्मक है तो व्यक्तित्व प्राणहीन होगा। अतः भय की दीवारें तोड़नी हैं, अभय का आनन्द पाना है। अभय अर्थात् प्राणी मात्र के प्रति प्यार। जिसका हृदय प्यार से भर जाता है, उसे इस संसार में भय का आवेग समाप्त हो जाता है। अभय

आत्म-उपलब्धि में सहयोगी और मित्र बनकर रहता है । जिससे भीतर प्राणी मात्र के प्रति प्यार के झरने फूट पड़ते हैं । इस झरने के प्रभाव में भय बह जाता है और अभय का अस्तित्व स्थायी हो जाता है । प्यार ही तो परमात्मा है । अभय की आँखों में सारा संसार परमात्मा है । सारे शत्रु मित्र हैं । सारे काँटों में फूल हैं । सारे पत्थर में प्रतिमा है । अतः भय को हटाकर अभय को स्थापित करना ही होगा । जहाँ प्रमाद है वहाँ भय टीक सकता है किन्तु जहाँ प्रमाद नहीं है वहाँ भय का नाश और अभय की सुरक्षा होती है । अभय के चरण जिस दिशा में उठते हैं उस दिशा के साधक में सुरक्षा के जल का अभिषेक अवश्य होगा ही । ऐसे साधक की विदेह साधना प्रबल हो जाती है वे मौत के भय से अतीत हो जाता है । फिर वह भय से संत्रस्त, हिंसा से आतंकित और दुःख से पीड़ित कभी नहीं होता है ।

⌘
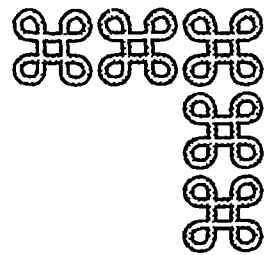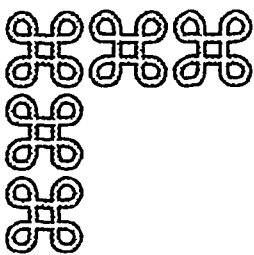
५६. "जस्स णत्थि इमा णाई, अण्णा तस्स कओ सिया ?
दिट्ठं सुयं मयं विण्णायं, जमेयं परिकहिज्जइ ।
समेमाणा पलेमाणा, पुणो-पुणो जातिं पकप्पेंति ।"

अर्थ—जिसे अहिंसा धर्म का ज्ञान नहीं है उसे हिंसात्मक प्रवृत्ति का ज्ञान कैसे होगा या जिसमें अहिंसा बुद्धि नहीं है उसमें विवेक वुद्धि कैसे होगी यह विचारणीय है । यह अहिंसा धर्म सुना हुआ, माना हुआ ही नहीं किन्तु विशेष रूप से अनुभव में आया हुआ धर्म है । इसलिए इस अहिंसा धर्म को छोड़कर जो मानव हिंसावृत्ति में अनुरक्त रहता है वह इस संसार में बार-बार जन्म लेता हुआ परिभ्रमण करता है ।
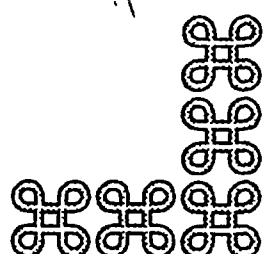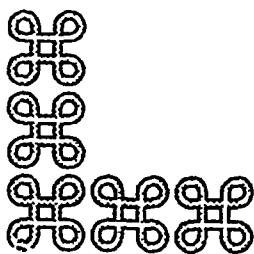
हिंसा - अहिंसा का विवेक

इस संसार में अहिंसा तत्व की त्रैकालिक एवं सार्वभौतिक मान्यता सत्य-तथ्य रूप में स्वीकारी गई है । क्योंकि अहिंसा धर्म में सुदृढ़ रहने वाले साधकों के लिए कहाँ-कहाँ कैसे-कैसे सावधान रहना पड़ता है और अहिंसा के आचरण के लिए कैसा पराक्रम करना पड़ता है इत्यादि विवेक आवश्यक होता है ।

सर्व जीवों के प्रति आत्मीयता, वात्सल्य और प्यार अहिंसा की मौलिक नींव है । सहानुभूति, सहकार और सहिष्णुता का व्यवहार अहिंसा की जन्मस्थली है । मैत्री, प्रमोद और कारुण्य भाव अहिंसा की फलश्रुति है । अहिंसा की प्रतिपक्ष भावना अहिंसा है । प्रतिपक्ष की भावना एक बहुत बड़ा सूत्र है । जैसे ही हिंसात्मक भाव उत्पन्न होते हैं उसके प्रतिपक्षी साधनों का चिन्तन करे ताकि मौलिक गुणों का अनुभव प्रारम्भ हो जाय ।

मानव अपने जीवन में दो विन्दुओं पर संघर्ष करता है । एक इच्छा और दूसरी अतृप्ति; दोनों मौलिक मनोवृत्ति हैं । इच्छा है और पूर्ण नहीं होती संघर्ष तैयार है । इच्छा है और पूर्ण भी होती है किन्तु तृप्ति नहीं होती अतः संघर्ष तैयार है ।

युग-युग से मानव न जाने कितने-कितने संघर्ष करता रहा है । अतः संघर्ष के फलस्वरूप हिंसा तीन स्वरूप में हमारे सामने उभरती है ।

१. **मानसिक हिंसा**—घात प्रत्याघात न करने पर भी मन द्वारा जीवों की हिंसा होती है ।

२. **वाचिक हिंसा**—मैं इसे मारके ही रहूँगा केवल संकल्प द्वारा हिंसा होती है ।

३. **कायिक हिंसा**—प्राणी वध, खून, युद्ध, हत्या इत्यादि काया द्वारा हिंसा होती है ।

जिसकी नीव ही स्वार्थ, द्वेष, घृणा और संघर्ष से निर्मित हुयी है वह हिंसा है । अपने स्वार्थ की पूर्ति को ही प्राथमिकता देना हिंसा की जीवन

पद्धति है । प्राणी को मारकर के भी भौतिक सुख-सुविधा का उपभोग करना हिंसा का परिणाम है ।

इस प्रकार हिंसा और अहिंसा का विवेक ज्ञान होने पर आधि, व्याधि और उपाधि निःशेष हो जाती हैं और समाधि जीवन में घटित हो जाती है । दुःख से मुक्त होने का उपाय सुख है और संतोष प्राप्त करने का उपाय । अहिंसामय धर्म की प्राप्ति है । अतः सुख और संतोष की उपलब्धि के लिए आशा, अपेक्षा और लालसा की दावाग्नि को शान्त करना आवश्यक है । भीतर ही भीतर उत्तेजित वनी ईर्ष्या की वेदना अहिंसा धर्म पर आक्रमण करती रहती है । इसलिए साधक हिंसा से ऊपर उठकर अहिंसा धर्म में संलग्न रहे ।

⌘
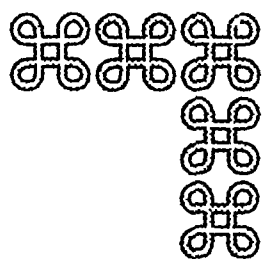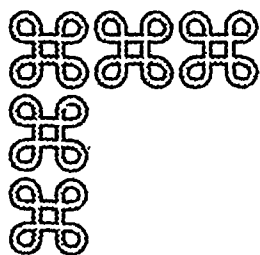
६८. "से असइं उच्चागोए, असइं णीयागोए ।
णो हीणे, णो अइरित्ते, णो पीहए ।"

अर्थ—यह आत्मा अनेक बार उच्च गोत्र और अनेक बार नीच गोत्र में परिभ्रमण कर चुका है । यहाँ न तो कोई हीन है और न कोई विशेष है ऐसा जानकर उच्च गोत्र की स्पृहा न करें ।
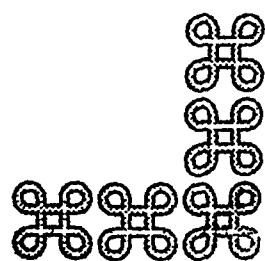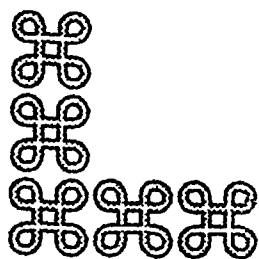
ऊँच-नीच की भावना

यह आत्मा जाति और गोत्र में अनेक बार परिभ्रमण करके आया है और अनेक बार परिभ्रमण करता रहेगा । संसार में एक भी ऐसा स्थान नहीं जहाँ इस सशरीरी आत्मा ने जन्म न लिया हो । एक भी जाति गोत्र और योनी ऐसी नहीं जहाँ इस आत्मा का स्पर्श हुआ न हो तथापि श्रेष्ठ जाति का अहं और तुच्छ जाति का तिरस्कार मिट नहीं सकता । ब्राह्मण जन्मना उच्च है, शूद्र जन्मना नीच है । इस महान और हीन-भावना ने अहं को जन्म दिया । अहं अन्धा होता है वह अपने आपको कुछ विशिष्ठ मानता है । वह धन के मद में भूल जाता है कि प्रत्येक प्राण का मूल्य बराबर है । वह शरीर के सौन्दर्य में भूल जाता है कि इस शरीर के भीतर करोड़ों तुच्छ कीटाणु पनपते हैं । आप जितने मूल्यवान नहीं उससे भी अधिक आपके भीतर रहने वाले प्रत्येक कीटाणु अपने आपको मूल्यवान समझते हैं । वह सत्ता के मोह में भूल जाता है कि तेरे ही जैसा सुख प्रत्येक प्राणी चाहता है । जीव चाहे उच्च जाति का हो या नीच जाति का हो सभी जीना चाहते हैं, कोई मरना नहीं चाहता । सभी सुख चाहते हैं, दुःख किसी को पसन्द नहीं ।

गोत्र का सम्बन्ध स्पृश्यता-अस्पृश्यता के साथ जोड़ना भ्रान्ति है । जिसकी वाणी, विचार, संस्कार और व्यवहार प्रशस्त हो वह उच्च गोत्री है और जिनकी वाणी कर्कसकारी, कठोरकारी, छेदकारी, भेदकारी, क्रोधकारी, मानकारी, मायाकारी, लोभकारी इत्यादि है जिनके विचार में जैलसी के भाव, द्वेषादि के भाव विद्यमान हैं । जो क्रूर संस्कारों में पनपा हुआ है और जिसका व्यवहार अप्रसस्त है, वह नीच गोत्र वाला है । शूद्र जाति में पैदा हुआ मानव तुच्छ जाति का नहीं माना जाता है क्योंकि आत्म दृष्टि से वह आत्मा भी परमात्मा है ।

इस विराट विश्व में एक परमाणु जितना स्थान भी ऐसा नहीं जहाँ जीव न जन्मा हो न मरा हो, फिर कौन ऊँचा है और कौन नीचा है, कौन बड़ा है और कौन छोटा है, कौन महान हैं और कौन हीन है । बड़े-छोटे की

भावना मात्र एक अहंकार है । और अहंकार-मद है, अभिमान है । जो भी अभिमानी है वह अवश्य हीन गति में पैदा होता है और बार-बार जन्म-मृत्यु का दुःख भोगता है । दीनता की भावना ने ही लघुता ग्रन्थि से महान मानव को हीन बना दिया है । अतः इस गोत्रवाद और मानवाद की भावना से मुक्त होकर जो तटस्थ रहता है, वही समत्त्वयोगी बनता है ।

परमात्मा महावीर ने जाति और गोत्र का शासन मिटाकर सभी का आसन समान है उसका प्रमाण करवाया । शूद्र, चांडाल, वैश्य, क्षत्रिय, ब्राह्मण सभी को शासन में समान स्थान मिला, मान मिला, आदर और सत्कार मिला । गोत्र का मद विषम है, भयावना है और गम्भीर समस्या का सर्जक है । ऐसा जानकर, मान, जातिमद का विनाश करने का प्रयास करें । क्योंकि मानव जाति से महान नहीं गुणों से महान है; गुणों का विकास करें ।

⌘
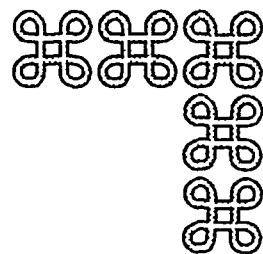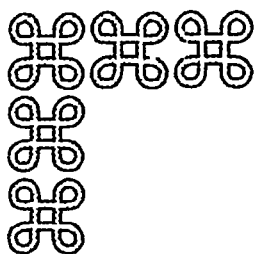
६१. "णारतिं सहते वीरे वीरेणो सहते रतिं ।
जम्हा अविमणे वीरे, तम्हा वीरेण रज्जति ।।"

अर्थ—वीर साधक अरति (संयम साधना में उत्पन्न) को सहन नहीं करता किन्तु अनासक्त भाव से उसका विसर्जन करता है और रति (विषयों में अभिरुचि) को भी सहन नहीं करता किन्तु स्वाध्याय के माध्यम से उसका रेचन कर देता है । ऐसे वीर साधक इष्ट और अनिष्ट विषयों के प्रति माध्यस्थ रहता है तथा स्थिर, शान्त और प्रसन्न रहकर रति-अरति में आसक्त नहीं होता ।
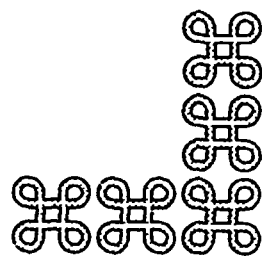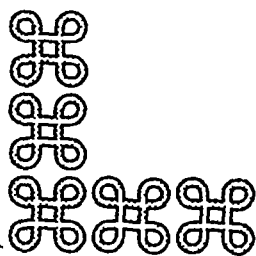
रति-अरति का प्रभाव

रति और अरति—यह मनुष्य के अन्तःकरण में छुपी हुई दुर्बलता है। राग, द्वेष-वृत्ति के गाढ़ या सूक्ष्म जन्मे हुए संस्कार ही मानव को मनोज्ञ विषयों के प्रति आकृष्ट करते हैं। इस प्रकार अमनोज्ञ विषयों का संयोग होने पर स्थान से भटका देता है। इन्द्रियों का जितना आकर्षण विषयों के प्रति प्रगाढ़ होता है, उतना विषय-विरति के प्रति प्रगाढ़ नहीं होता है। अतः साधक का मन अरति की सीमा में आवृत्त हो जाता है। रति और अरति की हजारों सीमाएँ हमारे माध्यम से बदल जाती हैं। सीमा के कैद में कैदी बना हुआ मानव पराधीनता का दुःख भोगता है। अपनी स्वतन्त्र दुनिया में वह रह नहीं सकता। उसे स्वतन्त्र रहने के लिए रति और अरति की सारी सीमाओं को तोड़ना होगा। असीम की ओर बढ़ना होगा। मानव ने अपनी जीवन कथा कितनी दर्दपूर्ण कितनी दुःखभरी व्यतीत की है जिसका कोई हिसाब नहीं। कितने जीवों की हत्या हुई है इस जीवन में इसका भी कोई हिसाब नहीं। स्टॉलिन और हिटलर की हत्या हमें पता है। तैमूरलंग, नादिरशाह या चंगेज खाँ ने क्या-क्या किया हमें पता है। पीछे से तीन हजार वर्ष में इस दुनिया में पन्द्रह हजार से अधिक युद्ध हुए हैं—जमीन पर होने वाला युद्ध, पानी पर होने वाला युद्ध, आकाश पर उड़ते हुए होने वाला युद्ध न जाने कितने रूप में इस संसार को नष्ट करने के आयोजन में संलग्न हैं।

रति और अरति के चाक से चलने वाली जीवन-गाड़ी की दुर्घटनाएँ कैसे हो जायेगी इसका पता नहीं चलता है। क्योंकि दोनों चाक बिलकुल जाम हैं। शक्ति का अपव्यय होता है या उपयोग सोचा नहीं जा सकता है। अपव्यय और उपयोग गलत दिशाओं में हो रहा है इससे बड़ा दुर्भाग्य और कौन-सा हो सकता है। गलत दिशा में अनुरक्त रति जीवन का सारा आनन्द और जीवन का सारा आकर्षण नष्ट कर देगी और विषाद व पीड़ा से जीवन को भर देगी। अहंकार किसी भी भाँति अपने को भर सकता है, धन से, ज्ञान से, स्वार्थ से, रूप से। मुझे कहने वाला कौन ? मैं क्या नहीं कर सकता ? इत्यादि की बुनियाद पर खड़ा मानव अपने आपको ही विस्मृत कर

देता है । यदि भीतर से मैं को उठालो । मैं के भ्रम को विसर्जित करने में मन डरता है फिर भी जाग्रत करलो । प्रिय, अप्रिय, अनुकूल, प्रतिकूल रति और अरति दोनों प्रकार की प्रवृत्ति में समभाव रखना ही विरक्ति है ।

राग खतरा है किन्तु राग का राग बहुत बड़ा खतरा है अतः राग के राग से सावधान रहना रति-अरति से ऊपर उठना है ।

⌘
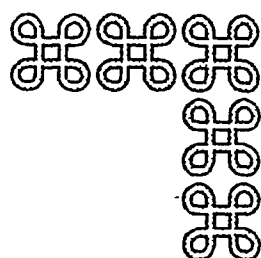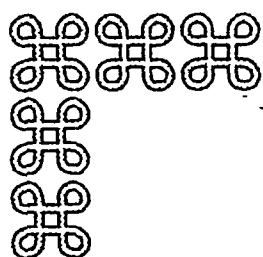
६२. "जं जाणेज्जा उच्चालइयं, तं जाणेज्जा दूरालइयं ।
जं जाणेज्जा दूरालइयं, तं जाणेज्जा उच्चालइयं ।।"

अर्थ—जो साधक परम तत्व की श्रेष्ठ भूमिका पर स्थित होता है उसे तुम अत्यन्त दूर आसक्ति से परे समझो । जिसे तुम अत्यन्त दूर आसक्ति से परे समझते हो उसे परम तत्व की श्रेष्ठ भूमिका पर स्थित समझो ।
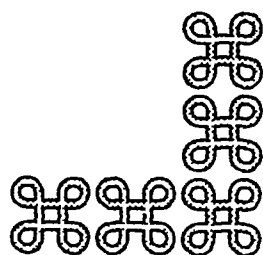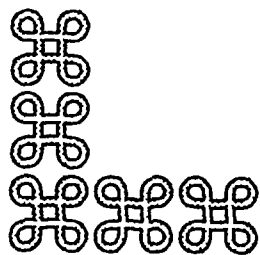
आसक्त-अनासक्त का प्रमाण

साधक परम तत्व की भूमि का स्पर्श तव तक कर सकता है जव ममकार और अहंकार का बंधन टूट जाता है । अंतर की ज्योति प्रज्वलित हो जाती है । चैतन्य का प्रकाश झलक उठता है । भीतर में जागने का जितना प्रयास है सारा ही परमतत्व की स्पर्शना से होता है । चेतना के अनुभव से होता है । जिस साधक को आत्मा की त्रैकालिक सत्य का अनुभव हो जाता है । जिसे विश्वास है कि उसका अस्तित्व तीनों कालों में है उसके मन में से किसी भी प्रकार की भेद रेखा प्रस्फुटित नहीं होती है । वह सोचता है । मेरा अपना स्वतंत्र अस्तित्व है, मेरा अपना स्वतंत्र कर्तृत्व है । सत्य और आनन्द मेरा अपना स्वभाव है । इस प्रकार अनासक्ति की साधना करने वाले प्रत्येक साधक में अपने अस्तित्व और कर्तृव्य के प्रति आस्था हो, उसका बोध हो, वही परमतत्व की भूमिका है । जैसे-जैसे आत्मज्ञान की उपलब्धि होती है साधक अपनी साधना के अस्तित्व में जागरूक हो जाता है । उसे इस सच्चाई का ज्ञान स्पष्ट होता है कि मैं अनासक्त, विरक्त साधक हूँ ।

कोई व्यक्ति रोगी होकर जीना नहीं चाहता । कोई व्यक्ति दुःखी जिन्दगी विताना नहीं चाहता । कोई व्यक्ति वियोग अवस्था में रहना नहीं चाहता । किन्तु हमेशा आरोग्य, सुख और संयोग पसंद करता है । क्रोधी मानव निरंतर क्रोध नहीं कर सकता, रोता मानव निरंतर रो नहीं सकता, मानव निरंतर हंस नहीं सकता, मानव निरंतर चल नहीं सकता । हरेक प्रवृत्ति में परिवर्तन होता है । कभी हंसता है, कभी रोता है, कभी चलता है, कभी बैठता है अतः प्रवृत्ति, प्रवृत्ति ही रहेगी जैसी भी हो कोई महत्त्व नहीं । महत्त्व है प्रवृत्ति से आप कैसे जुड़ गये हो । हमारी सबसे बड़ी बीमारी है, आकांक्षा, इच्छा, चाह, अतृप्ति । आकांक्षा मिट जाएँ, इच्छाएँ समाप्त हो जाएँ, सारी अतृप्ति की जड़े मिट जाएँ, तब अनासक्ति का जन्म होता है । हम इस सच्चाई को देखें । हम इस सच्चाई को जानें । उसका अनुभव करें । कुछ क्षण प्रारंभ में अभ्यास करें । जो क्रोधी होना चाहता है वही क्रोधी वन सकता है । जो क्रोधी होना नहीं चाहता क्या वह क्रोधी हो सकता है ।

क्रोध आत्मा का स्वभाव नहीं है विभाव है । स्वभाव स्वतः होता है विभाव नहीं अतः स्व में रहने वाला साधक ही अनासक्त साधना का अधिकारी हो सकता है ।

अनासक्त की साधना राग और विराग के आंचलों से अतीत होती है । वह जागृति के उस क्षितिज पर पहुंच जाता है जहाँ प्रिय और अप्रिय के भाव समाप्त हो जाते हैं । इस शिखर तक पहुँचने वाले की विशेष भूमिका है सतत जागृति, निरंतर प्रसन्नता, भीतर का आनंद ।

⌘
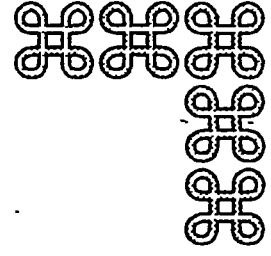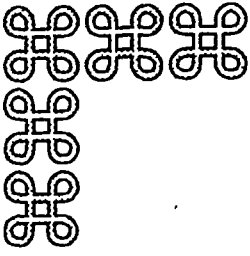
"पुव्वं दंडा पच्छा फासा, पुव्वं फासा पच्छा दंडा ।"

अर्थ—कभी दंड के पश्चात् स्पर्श होता है कभी स्पर्श के पश्चात् दंड मिलता है ।
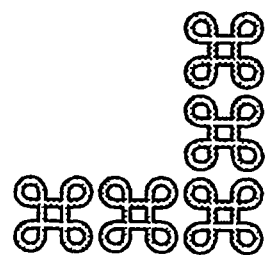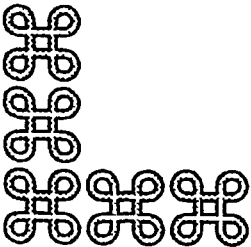
दंड-स्पर्श की सार्थकता

दण्ड तीन प्रकार के हैं—मनसा, वाचा, और कर्मणा । मन (देह) सुख का अनुभव करता है स्पर्श सुखद होता है, मन दुःख का अनुभव करता है स्पर्श दुखद होता है । अतः सुख का घटक भी मन है और दुःख का घटक भी मन है । हमारा मन ही सुख और दुःख का बीज बोता है तथा अंकुरित, पुष्पित और पल्लवित करता है, यह हमारी बहुत बड़ी भ्रान्ति है कि हम दूसरों को सुख दुःख देने वाला मानते हैं । सुख की सुविधा उपलब्ध होने पर भी सुखद स्पर्श संवेदन नहीं करते तो सुख का अनुभव नहीं होता है । हजारों प्रतिकूलता उपलब्ध होने पर भी दुखद स्पर्श की संवेदना का अनुभव नहीं होता है, ऐसा क्यों ? क्योंकि सुख और दुःख हमारे माने हुए हैं । सुख के संवेदन से मन जुड़ गया सुख की अनुभूति होती है । परिजन की मृत्यु दुःखद संवेदन है किन्तु उन्हीं परिजनों में मेरा जो दुश्मन है उसकी मृत्यु मेरे लिए संवेदन है । इस प्रकार मन दंड से सुख और दुःख दोनों का स्पर्श होता है । दोनों का स्पर्श जिस स्वरूप में होगा उसी स्वरूप का परिणाम प्राप्त होगा अतः स्पर्श के पश्चात् पुनः दंड मिलता है यह भी प्रमाणित होता है ।

संकल्प-विकल्पों के जाल में फंसा हुआ मानव अतीत की स्मृति और भावी की कल्पना को संजोया करता है । दंड भोगने पर भी सत्य का निर्णय नहीं कर पाता । दंड भोगता है तो स्पर्श का अनुभव होता है, स्पर्श का अनुभव होता है तो दंड भोगता है, केवल क्रिया या प्रतिक्रिया से कोई सम्बन्ध नहीं होता, केवल वासना से कोई सम्बन्ध नहीं होता, केवल संस्कार से कोई परिणाम नहीं भोगता । हर क्रिया की प्रतिक्रिया से हम जुड़े हुये हैं । हर वासना के संस्कारों से हम मिले हुए हैं । जहाँ हम जुड़ जाते हैं, जहाँ हम मिल जाते हैं वहाँ दंड भी मिलता है और स्पर्श भी होता है ।

प्रथम दंड और पश्चात् स्पर्श का परिणाम होता है, वैसे ही प्रथम परिणाम और पश्चात् दंड मिलता है । यह कैसा चक्र, यह कैसी उलझन, इस का न तो आदि समझा जाता है न अंत । न ओर न छोर यह तो एक वलय है । पाप किया है तो दुःख मिलेगा ही । दुःख में दुःखी है तो परिणाम मिलेगा

ही । राग-द्वेष के आधार पर कर्म का संचय और कर्म के संचय से राग-द्वेष का जीवित रहना अनिवार्य है । राग द्वेष का कारण है कर्म और कर्म का कारण है राग-द्वेष । जैसे दोनों का चक्र सहयोगी है वैसे ही दंड और स्पर्श का सुख और दुःख का, प्रियता और अप्रियता का चक्र सहयोगी है । घटना (दंड) के अनुरूप परिणाम भोगना ही पड़ता है और परिणाम के अनुरूप घटना (दंड) घटित होती रहती है । ऐसा चक्र निरंतर गतिमान है ।

आत्मा की विस्मृति की दिशा दुर्घटना की दिशा है, मानवीय जीवन में जितनी दुर्घटनाएँ घटित होती हैं वे सब इन्हीं विभिन्न दिशाओं का ही परिणाम है । दिशा का बदलता रूप आत्मा की स्मृति का, आत्मा की जागृति का रूप धारण करता है ।

⌘
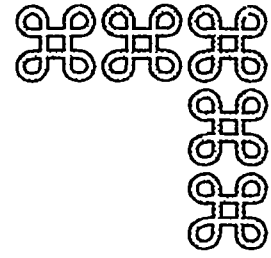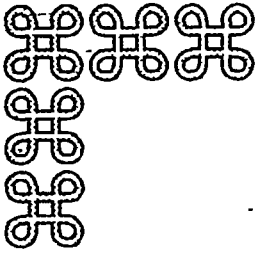
६३. "आयाणिज्जं च आयाम, तम्मि ठाणे ण चिट्ठइ ।
वितहं पप्पखेयण्णे, तम्मि ठाणम्मि चिट्ठइ ।।"

अर्थ—अनात्मज्ञ पुरुष, सत्य को प्राप्त कर उस स्थान में स्थित नहीं होता । वह असत्य को प्राप्त कर उस स्थान में स्थित होता है ।
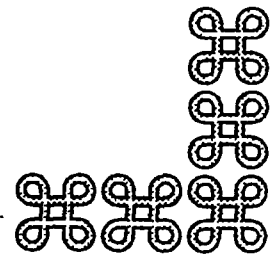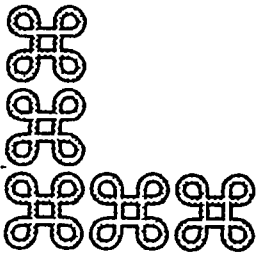
सत-असत का प्रमाण

अज्ञानी मानव की स्थिति बहुत विचित्र होती है । वह अपने आप का निर्णय नहीं कर पाता इसलिए वह भोगों में भटक जाता है । सत्य का निर्णय वही कर पाता है जो अपना निर्णय कर पाता है । हमें सत और असत का निर्णय करना है । संसार में विनाशी और अविनाशी, नित्य और अनित्य, नश्वर और अनश्वर, शाश्वत और अशाश्वत का निर्णय उत्पाद व्यय और ध्रुव रूप सत से ही होता है । यह संसार न कभी खाली हुआ और न कभी पूर्ण हुआ है । कोई यहाँ आता है तो कोई यहाँ से जाता है । जन्म और मृत्यु सनातन सत्य है । फिर भी परिवर्तनशील है । परिस्थिति के अनुरूप रूपांतरण होता रहता है ।

परिस्थिति का बीज वपन वर्तमान स्थिति में उतना ही सही है जितना पूर्वकृत कर्म का वर्तमान जीवन में फल का उपार्जन होना । फल के अनुरूप घात-प्रत्याघात या आनंद-प्रमोद का प्रादुर्भाव होता है । तथापि इस जीवन में प्राप्त प्रसन्न पल या विषाद की झलक पूर्वकृत कर्म का ही फल है ऐसा नियम नहीं । इस जन्म का भी परिणाम होता है ।

जे. बी. एस. हेल्डन के अनुसार विश्व का मौलिक तत्व जड़ (Matter) नहीं, बल (Force) नहीं, भौतिक पदार्थ (Physical Substance) नहीं किन्तु मन और चेतना है । हमारे विचारों का प्रभाव मन और चेतना से जुड़ा हुआ है । सत और असत सम्बन्ध से स्थापित हुआ है । विचार असत है, रागात्मक है, कामना की अनुभूति जाग्रत होगी, क्योंकि व्यक्ति को व्यक्ति से जोड़ने वाला ही राग है । एक दूसरों को बांधने वाला ही राग है । जहाँ राग होता है वहाँ सत स्थिर नहीं रह पाता, वहाँ असत का स्थान होता है । व्यक्ति का व्यंक्तित्व केवल व्यवहार का प्रतिफलन ही नहीं है वह तो किसी और तत्व का प्रतिफलन भी है जहाँ से सत्य फलित हो रहा है । सत स्थायी है । स्थायी वही होता है जो सहज होता है । असत सहज नहीं होता वह स्वभाव नहीं है । वह सत्य नहीं होता । सत्य है चैतन्य, सत्य है आनंद, सत्य है शक्ति, सत्य को पाने वाला नयी उपलब्धि, नया प्रजनन, नयी चेतना

को अवश्य पायेगा । चेतना का सतत अनुभव करने लगेगा । संसार के मम्बन्धों का विच्छेद करने लगेगा केवल आत्म तत्व का स्पर्शन ही उसके लिए लक्ष रहेगा । सत की पूर्णता असत का विनाश है और असत का विनाश सत की पूर्णता है ।

तात्विक दृष्टिकोणों के कोई भी मनके व्यवहार के धागों में पिरोए हुए हों सब सत्य हैं । यदि ये मनके अपनी सत्यता प्रमाणित कर दूसरों के अस्तित्व पर कुठाराघात करते हों तो हर व्यवहार असत्य है । तात्विक बोध सत्य का बोध है । तात्विक समस्या सत्य की समस्या है और तात्विक चिन्तन सत्य का चिन्तन है । जो भी इस तात्त्विक मंच पर उपस्थित होता है उसे इस दर्शन जगत में सत्य की शक्ति का उपहार मिलता है ।

⌘
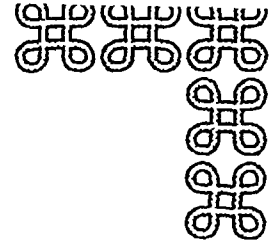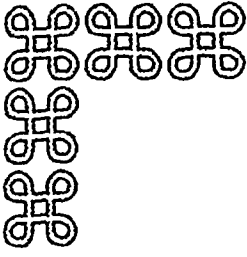
६४. "सुहट्ठी लालप्पमाणे सएण दुक्खेण मूढे
विप्परियासमुवेति ।"

अर्थ—सुख का चाहक बार-बार सुख की कामना करता है और अपने ही द्वारा कृत कर्मों का फल भोगता हुआ दुःख को प्राप्त करता है ।
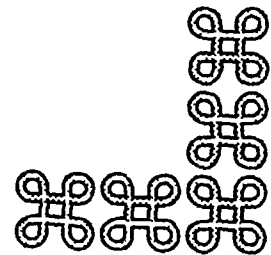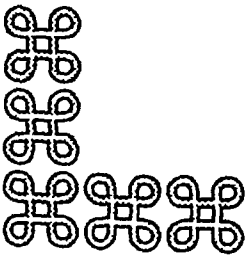
सुख-दुःख का उपाय

सुख और दुःख पाप और पुण्य का फल है । पाप और पुण्य का सम्बन्ध स्थूल शरीर से नहीं है, उसका सम्बन्ध सूक्ष्म शरीर से है । उसका सम्बन्ध योग-प्रयोग और उपयोग से है । उसका सम्बन्ध भाव, प्रभाव और अध्यवसाय से है । उसका परिणाम सुख और दुःख के रूप में स्थूल शरीर के माध्यम से भोगा जाता है ।

सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख इस प्रकार भौतिक सुख दुःख का क्रम निरंतर चलता रहता है । सुख प्रिय और दुःख अप्रिय होने पर भी सुख टिकता नहीं और दुःख हटता नहीं ऐसा क्रम भी चलता रहता है । हम परिस्थिति को रोक नहीं सकते । हम प्राकृतिक घटनाओं में हस्तक्षेप कर नहीं सकते । फलतः सुख और दुःख का क्रम गतिमान होगा ही होगा । किन्तु जिसके द्वारा सुख और दुःख का संवेदन होता है । उस पर हम नियंत्रण कर सकते हैं । मानव छटपटाता है वह चाहता है कि दुःख की सीमा समाप्त हो जाय और सुख की सीमा निरंतर बनी रहे । पर हम अपने आप पर नियंत्रण को हावी करना नहीं चाहते । नियंत्रण जीवन की स्वाभाविक प्रक्रिया है । प्राकृतिक नियंत्रण न रहेगा तो सारा संसार अस्त-व्यस्त हो जायेगा । दुःख प्रतिपल सताने लगेगा । कदम-कदम पर अपनी समस्या लेकर के आयेगा । शारीरिक और मानसिक दोनों अवस्था को अस्वस्थ बनायेगा और विपत्ति का संसार बसायेगा । ऐसी स्थिति से बचने के लिए अनियंत्रण के आक्रमण से बचना आवश्यक है ।

सुख और दुःख दोनों एक दूसरे के विरोधी हैं । सुख दुःख नहीं और दुःख सुख नहीं है । मन का अनियंत्रण, वाणी का अनियंत्रण, शरीर का अनियंत्रण, इन्द्रियों का अनियंत्रण दुःख का द्वार खोलता है । और इन सबका नियंत्रण सुख का द्वार खोलता है । सुख और दुःख राग और द्वेष का ही परिणाम है । राग द्वेष की जो धारा प्रवाहित होती है वह आत्मा के साथ परमाणु के रूप में जुड़ जाती है । जुड़ी हुयी परमाणु की धारा आत्मा को प्रभावित करती है, आत्मा के कार्य को, आत्मा के कर्तृत्व को प्रभावित करती

है । जिससे अनेक वृत्तियाँ उत्तेजित होती हैं । सूर्य के ऊपर बादल छा जाते हैं, अंधकार छा जाता है । फिर भी दिन, दिन रहेगा यह सत नहीं हो सकता । वृत्तियाँ आत्मा पर प्रभाव डाल सकती हैं पर उसके अस्तित्व को नहीं मिटा पाती हैं ।

चैतन्य का, शक्ति का, जागरण का, आनंद का विकास आत्मा के आवरण को तोड़ देता है और नित्य सुख के दर्शन कराता है । शाश्वत सुख वही है जो कभी दुःख का रूप धारण न करे । दुःख शाश्वत नहीं होता वह परिस्थिति के अनुरूप रूपांतरित होता है । भौतिक सुख भी शाश्वत नहीं होता वह भी परिस्थिति के अनुरूप रूपांतरित होता है । अतः सुख और दुःख से मुक्त होना ही शाश्वत सुख है, नित्य सुख है, आनंदमय सुख है ।

अतः सुख और दुःख का संयोग संसार है जन्म है, मृत्यु है और सुख और दुःख का वियोग मोक्ष है अमर है और पूर्ण है ।

⌘
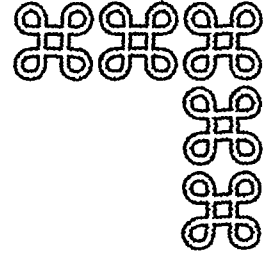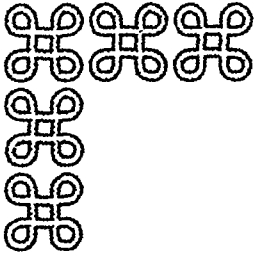
६५. "लोभं अलोभेण दुगंछमाणे, लद्धे कामे नाभिगाहइ ।"

अर्थ—जो पुरुष अलोभ से लोभ को पराजित कर देता है, वह प्राप्त कामों का सेवन नहीं करता ।
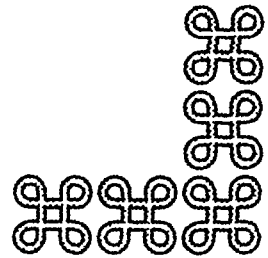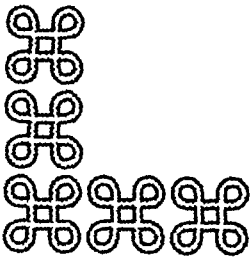
लोभ अलोभ की प्रवृत्ति

लोभ और अलोभ दोनों प्रतिपक्ष का सिद्धान्त होने पर भी क्षमा से क्रोध पर, मृदुता से मान पर, ऋजुसा से माया पर विजय होता है वैसे ही अलोभ से लोभ पर विजय पाया जाता है ।

क्रोध लोभादि चारों ही आवेग उत्तेजित होने पर स्नायु तंत्र पर, ह्रदय की गति पर, श्वास के लय पर और ग्रन्थियों के स्राव पर गहरा प्रभाव पड़ता है । आवेग जितना उत्तेजित होता है, ग्रंथियों का स्राव भी उतना ही गहरा होता है ।

काष्ट को खाने वाले कीटाणु (उधय) जैसे त्वरित गति से फैल जाते हैं वैसे ही लोभ का आवेग तीव्रतम गति से सारे शरीर में व्याप्त हो जाता है । क्योंकि भीतर मूर्च्छा के संस्कार डट कर जमे पड़े हैं । एक मूर्च्छा दूसरी मूर्च्छा को और दूसरी मूर्च्छा तीसरी मूर्च्छा को जन्म देती है । यथार्थ में लोभ का आवेग निराशा का सूत्र है, संशय का सूत्र है, भ्रम का सूत्र है । जो साधक लोभ से अलोभ वृत्ति में चला जाता है वह बुराइयों से अपने आपको बहुत बचा लेता है । अच्छे कर्म का अच्छा फल तथा बुरे कर्म का बुरा फल मिलता ही है ऐसी अवधारणा होने पर भी लोभ का आवेग बुरे कर्मो से विफल नहीं होने देता । किन्तु वह मानव को अपने बन्धन में जकड़ देता है और भीतर अनेक प्रकार की विकृतियां पैदा कर बैठता है ।

क्रोध का स्थान ललाट है, मान का स्थान ग्रीवा है, माया का स्थान उदर है किन्तु लोभ का स्थान संपूर्ण वदन है । समूचे शरीर में लोभ व्याप्त है । धन का, सत्ता का, अधिकार का, पद का, स्त्री का, संतान का, पदार्थो का इत्यादि सभी प्रकार के परिग्रह की मूर्च्छा लोभ ही होता है । परमाणुओं का संग्रह हुआ पुण्य रूप में, किन्तु उसका परिणाम पाप रूप में घटित हुआ । परमाणु का संग्रह हुआ पाप रूप में और उसका परिणाम घटित हुआ पुण्य रूप में । यह कैसा परिवर्तन ! जो पुण्य देने वाले थे वे पाप देने वाले और जो पाप देने वाले थे वे पुण्य देने वाले ऐसा आमूल परिवर्तन कैसे घटित होता है । सोचा था सुख और मिला दुःख । सोचा था दुःख और मिल

गया सुख । सारे परमाणु-संग्रह पाप से जुड़े हुए होने पर भी भावों ने अपना करवट बदल दिया । मन पर अनुशासन हो गया । अलोभ ने लोभ पर विजय पा लिया । अलोभ का स्वामित्व होते ही लोभ की सत्ता समाप्त हो गई । लोभ का स्वामित्व था तव अनेक विषमताओं का बोझ ढोता था । जैसे ही लोभ परास्त हुआ साधक बोझ से हल्का हो गया । अब तो वह सदा के लिए अधीन हो गया । खतरा समाप्त हो गया । हानि ने लाभ का स्थान ग्रहण कर लिया । लाभ सबको प्रिय है, क्योंकि वह अभय का स्थान है । काम भोग उपलब्ध होने पर भी साधक उसका उपभोग नहीं करता क्योंकि उसने अलोभ से लोभ को पराजित किया है ।

लोभ मानव की इतना उत्तेजित कर देता है कि वह सोचे-विचारे बिना ही कल्पना लोक की उड़ान भरने लगता है । पाप की प्रवृत्ति का मूल्यांकन करने लगता है । अलोभ दुर्बल होते ही लोभ का बोझा ढोने लगता है ।

⌘
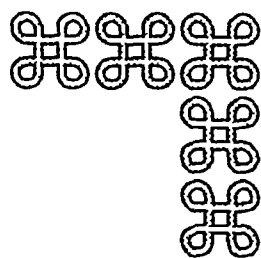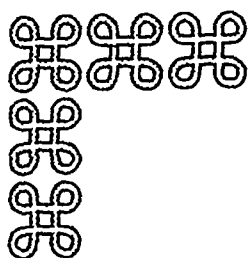
"आयंकदंसी अहियं तिं नच्चा ।"

अर्थ—जो मानव हिंसा में आतंक देखता है, अहित देखता है वही उससे निवृत्त होता है ।
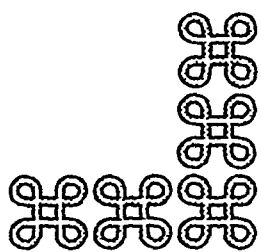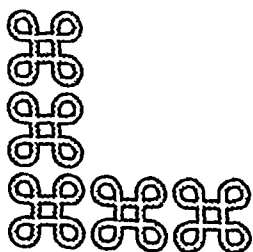
हित और अहित का बोध

प्राणी मात्र के कष्ट को स्वयं का कष्ट समझने वाला साधनाशील मानव हिंसा में आतंक देखता है, किसी भी जीव की हिंसा करने से सिर्फ उन्हें ही कष्ट होता है ऐसा नहीं, स्वयं का भी अहित होता है । तथापि मानव हिंसा में आसक्त होने से अनेक प्रकार की हिंसा करता है ।

हमें पाप का नाश करना है पापी का नहीं । पाप से घृणा करनी है पापी से नहीं । अतः पाप को धिक्कारो पापी को नहीं । पापी का नाश, घृणा या धिक्कार ही हिंसा है । पारस्परिक हिंसात्मक व्यवहार होने से एक चोर अपने घर की सुरक्षा करता है । और दूसरों के घरों को लूटता है । एक खूनी अपने शरीर की सुरक्षा करता है और दूसरे को जान से खत्म करता है । एक सत्ताधीश अपने परिवार की सुरक्षा करता है और दूसरों के परिवार का शोषण करता है । एक मिनिस्टर अपने देश का हित सोचता है और दूसरों के देश में बम्ब विस्फोट करवाता है । इस प्रकार हिंसा से आतंक होता है दूसरों का अहित देखा जाता है ।

अतः हिंसा निवृत्ति के तीन विशेष आलंबन हैं जिससे अपना और सारे संसार का हित सोचा जाता है—

१. आतंक दर्शन—हिंसा से होने वाले आतंक को आत्म अनुभव से देखना ।

२. अहित चिन्तन—हिंसा से आत्मा का अहित होता है, ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि की उपलब्धि दुर्लभ होती है इत्यादि का बोध होना ।

३. आत्म तुला—प्राणी मात्र के सुख दुःख के अनुभव की साम्यता जैसे मुझे सुख प्रिय है, दुःख अप्रिय है, वैसे ही दूसरों को सुख प्रिय है, दुःख अप्रिय है ।

हमारी भावना अच्छी है या बुरी, हमारी भावना का अच्छा परिणाम है या बुरा, हमारे संस्कार रागात्मक हैं या द्वेषात्मक इत्यादि हित चिन्तन करने से कोई परिस्थिति, कोई परिवेश, कोई परिणाम अपने आप उभर आता है ।

कुछ सुना हुआ कुछ देखा हुआ सचित्र स्मृति पटल पर जाग जाता है । हित और अहित रूप स्मृति के उभरने के बाद अच्छाई और बुराई को जोड़ने वाला सेतु कर्म है ।

दूसरों का भला सोचना अपना ही हित है, दूसरों का बुरा सोचना अपना ही अहित है । जैसे-जैसे हित चिन्तन सोचा जायेगा चेतना का विकास होता जायेगा चिन्तन की क्षमता का संवर्धन होता जायेगा । हित की पृष्ठभूमि में स्वार्थ नहीं होगा, राग नहीं होगा, द्वेष नहीं होगा केवल हित ही सोचा जायेगा तब सभी जीवों के प्रति प्यार ही प्यार होगा । सारी अनुभूतियां सारी संवेदनाएं—

प्यार भरे हित में ही संलग्न रहेंगी । हममें जब तक कष्टों को सहने की क्षमता होती है तब तक हम जाग्रत रहते हैं । जैसे ही क्षमता असमर्थ हुयी अनेक रोग, शोक और वेदनाओं के आतंक का अनुभव होने लगेगा । इन आतंकों से सावधान होना है । मूर्च्छा से जाग्रत होना है । बाहर से भीतर पहुंचना है ।

⌘

चतुर्थ चरण

१

जीवन परिवर्तन की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया के उपाय

- अध्यात्म की शुद्ध एषणा
- क्षणिक और गंभीर अन्वेषण
- अनित्य क्षण का उत्तम अवसर
- अशरण को शरण मानना
- गमनागमन का केन्द्र
- एकाकी अनुभव से भावित
- न कोई मेरा है और न मैं किसी का हूँ
- असुचि में आकर्षण और राग
- महातृष्णा ही संहार का साधन
- आज्ञा का अनुपालन
- अनासक्त भावों में संलग्न
- लोग दर्शन-अनुपरिवर्तन का बोध
- धर्म बोध की दुर्लभता का प्रतिपादन

⌘
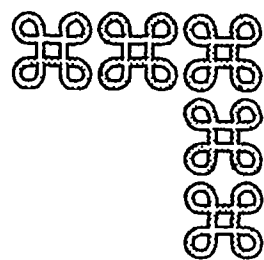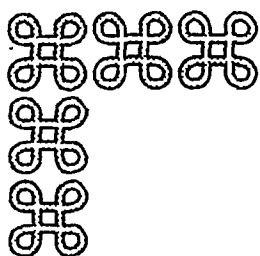
६६. जे अज्झत्थं जाणइ

अर्थ—अध्यात्म को जानना अर्थात् आत्मा को जानना । जो आत्मा को जानता है, वह आत्मा को देखता है । शरीर को बाहर से जानना या शरीर को भीतर से जानना अध्यात्म नहीं है ।
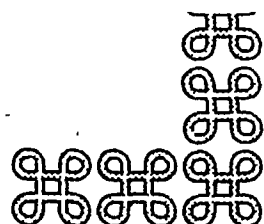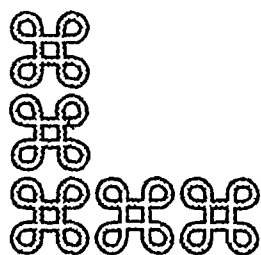
अध्यात्म साधना का स्रोत

अज्झत्थं सुद्धमेसए ।

किन्तु आत्मा को भीतर से और आत्मा को बाहर से जानने से अध्यात्म की शुद्ध एषणा होती है । अध्यात्म की एषणा अर्थात् शरीर के प्रति ममत्व का विसर्जन ।

ममत्व राग द्वेष-की ग्रंथियों से स्रवित होता है अतः हम भ्रम कर बैठते हैं कि यही अध्यात्म है । हमें भीतर प्रवेश करना है जहाँ शुद्ध अध्यात्म का स्पर्श होता है । विशुद्ध आत्म तत्व का दर्शन होता है । क्योंकि बंध और मोक्ष तुम्हारी आत्मा में ही है ।

"वंध-पमोक्खो तुज्झ अज्झत्थेव"
संधिं लोगस्स जाणित्ता ।
आयओ वहिया पास ।
विरागं रुवेहिं गच्छेज्जा,
महया खुड्डएहि वा ।

आत्मा के स्वरूप को जानने वाला अप्रमत्त होता है । अतः वह बाह्य जगत को अपनी आत्मा के समान देखता है । जीवन में वैराग्यमय रहने वाला आत्मा को प्रसन्न करता है ।

आत्म-विकास, आत्म-समता, आत्म-शुद्धि, आत्म-प्रसन्नता, आत्म-जागृति, आत्म-रक्षा, आत्मा का अतीत और अनागत, आत्मा की मित्रता, आत्म निग्रह इत्यादि को अध्यात्म कहा जाता है । अध्यात्म योगी के लिए क्या आनंद और क्या विषाद ! वह तो उन दोनों विकल्प से परे है ।

पुरिसा ! अत्ताणमेव अभिणिगिज्झ, एवं दुक्खा पमोक्खसि ।	जो विकल्पों से परे है वही आत्म-निग्रह करने में समर्थ है । और सभी दुःखों से मुक्त होने में सफल है ।

⌘

भावना की प्रबलता का विकास

अनित्य क्षणभंगुर जीवन

से पुव्वं पेयं पच्छा पेयं भेउर-धम्मं, विद्धंसण-धम्मं, अधुवं, अणितियं, असासयं, चयावचइयं, विपरिणाम-धम्मं, पासह एयं रुवं ।

जिस शरीर के प्रति अत्यधिक ममत्त्व है, उस शरीर को देखो । वह एक न एक दिन पहले या पीछे अवश्य छूट जायेगा, क्योंकि विनाश और विध्वंश इसका स्वभाव है । यह अध्रुव अनित्य और अशाश्वत है इसमें उपचय-अपचय (घट-बढ़) होता रहता है तथा यह परिवर्तनशील होने से विविध अवस्था को धारण करता है ।

साधक शरीर के वर्तमान क्षण पर चिन्तन करे । शरीर के भीतर प्रतिक्षण जो परिवर्तन हो रहे हैं, उस पर चिन्तन करे । रोग-पीड़ा आदि वेदना में जो नये-नये रूप उभरते हैं, उस पर चिन्तन करे । तथा क्षणिक फिर भी गंभीर अन्वेषण शरीर की नश्वरता को स्पष्ट करता है, उस पर चिन्तन करे । क्योंकि शरीर नश्वर है । यह शरीर क्षणभंगुर है । जैसे—

से पासति फुसियमिव, कुसग्गे पणुन्नं णिवतितं वातेरितं । एवं वालस्स जीवियं, मंदस्स अविजाणओ ।

कुशाग्र के अग्रभाग पर पड़ा हुआ बिन्दु वायु के झोंके से प्रकंपित होकर विनष्ट हो जाता है वैसे ही बाल, मन्द और अज्ञानी का जीवन भी ऐसा ही अनित्य होता है किन्तु मोहवस वह उस अनित्यता को देख नहीं पाता ।

१. वाल—अनित्य, क्षण भंगुर जीवन को शाश्वत मानना ।

२. मंद—सद सद विवेक, बुद्धि का अभाव ।

३. अविजान—यथार्थ ज्ञान का अभाव ।

खणं जाणाहि पंडिए !

इस प्रकार अवस्था व्यतीत होने के पूर्व क्षण या अवसर को जानना आवश्यक है । क्षण जीवन का एक महत्वपूर्ण अवसर है । जैसे—

१. काल रूप क्षण — समय ।
२. भाव रूप क्षण — ज़न्म ।
३. द्रव्य क्षण — जन्म ।
४. क्षेत्र क्षण — आर्य क्षेत्र ।
५. काल क्षण — मृत्यु ।
६. भाव क्षण —क्षायिक क्षण ।

क्षण अनित्य होने पर भी उस अनित्य क्षण के उत्तम अवसर का लाभ उठाना साधना है ।

⌘
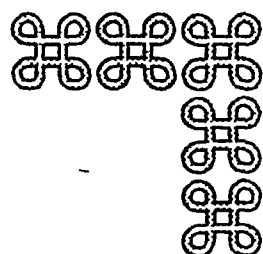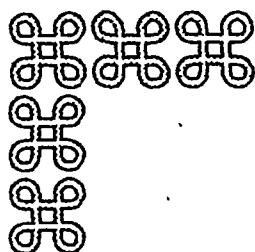
६७. नालं ते तव ताणाए वा,
सरणाए वा ।
तुमं पि तेसिं नालं ताणाए वा,
सरणाए वा ।

अर्थ—वे स्वजन तुम्हें त्राण या शरण देने में समर्थ नहीं है । तुम भी उन्हें त्राण या शरण देने में समर्थ नहीं हो ।

मानव को अपनी सत्ता, शक्ति और वैभव का अहं होने से अनेक लोग मेरे शरण में हैं, ऐसा दावा रखते हैं । जब तक स्वार्थ जुड़ा हुआ है तब तक मानव एक दूसरे के लिए शरण बनता है । स्वार्थ समाप्त होते ही शरण भी समाप्त हो जाता है । यह हमारी भ्रान्ति है कि मेरा शरण किसी ने स्वीकार किया है अथवा यह भी भ्रान्ति है कि मैं किसी के शरण हूँ । यह तो व्यवहार है और व्यवहार कोई अन्तिम सचाई नहीं । अतः व्यवहार के कारण ही मानव दुःखी होता है । परिस्थिति, पदार्थ, व्यक्ति, वस्तु और व्यवहार को हमने सत्य मान रखा है और उसी सत्य के शरण को स्वीकार किया है । किन्तु याद रहे न मैं किसी का शरणार्थी हूँ ना मेरा कोई शरण्य है ।
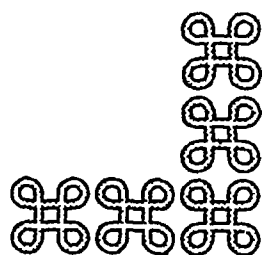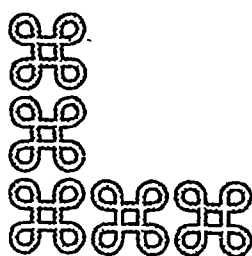
अशरण शरण की मांग

एत्थ वि वाले परिपच्चमाणे
रमति पावेहिं कम्मेहिं,
'असरणे सरणं' ति
मण्णमाणे ।

अज्ञानी साधक संयम-जीवन में भी विषय वासना में आसक्त होने से अशरण को शरण मानता हुआ पाप कर्मों में रमण करता है ।

इस संसार में जितने भी मानव हिंसादि पापकर्म करके जीवन व्यतीत करते हैं, वे विषयासक्ति में, कामनाओं की अपूर्ति में विह्वल होते हैं । विषय विकारों में गृद्ध होने से काम-वासना जाग्रत हो जाती है । फिर मानव जो अशरण है उसे ही शरण मान कर पाप कर्मों में लिप्त रहता है । उन्हें अपनी शक्ति का ज्ञान न होने से दूसरों की शरण स्वीकार कर लेते हैं । दूसरों की शक्ति को देखकर झुक जाते हैं । कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं, जिसमें शक्तियाँ विद्यमान न हों । किन्तु जब तक अपनी शक्ति का भान नहीं, तब तक पर की शरण में वह भटकता रहता है ।

से अणासादए अणासादमाणे
वुज्झमाणाणं पाणाणं भूयाणं
जीवाणं सत्ताणं, जहा से दीवे
असंदीणे, एवं से भवइ सरणं
महामुणी ।

इसलिए प्रत्यक्ष शरण उन्हीं का स्वीकार करना चाहिए जो साधक स्वयं किसी भी प्राणी के लिए बाधा-पीड़ा पहुंचाने वाला न हो । जिससे प्राण, भूत जीव और सत्व का वध हो ऐसा उपदेश के प्ररूपणा करने वाला न हो । आहारादि प्राप्ति हेतु उपदेश देने वाला न हो । ऐसा साधक महामुनि

संसार प्रवाह में डूबते हुए जीवों के लिए अंसदान द्वीप की तरह शरण भूत होता है ।

गच्छइ णाय पुत्ते असरणाए

भगवान महावीर ने कभी किसी का शरण स्वीकार नहीं किया था । परिषह और उपसर्ग आने पर, इन्द्र की सहायता मिलने पर, या सिद्धार्थ पुत्र है ऐसा परिचय मिलने पर या अनेक कष्ट आने पर भी किसी की शरण को ग्रहण नहीं किया था ।

सरणं तत्थणो समेति ।

अतः ज्ञानी पुरुष किसी की शरण में नहीं जाता ।

⌘
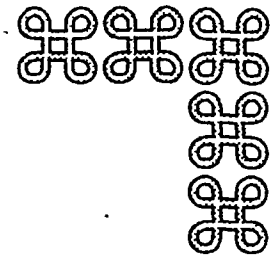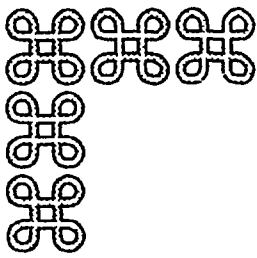
६८. एस संसारेत्ति पवुच्चति ।
मंदस्स अवियाणओ ।

अर्थ—यह (त्रसलोक) संसार कहलाता है ।

(यह संसार) मंद और अज्ञानी के होता है ।

जीवों के जन्म-मरण तथा गमनागमन का केन्द्र संसार है । इस परिभ्रमणात्म संसार में जीव अनंतकाल तक चतुर्गति में जन्म धारण करता है और गति अनुरूप संसार का उपभोग करता है । संसार भ्रमण के मुख्य दो कारण हैं—१. मंदता २. अज्ञानता ।

विवेक बुद्धि की अल्पता होने से जीव मंद और अज्ञान अवस्था में अनंतकाल तक परिभ्रमण करता है । जब विवेक दृष्टि का विकास होता है । जब व्यक्ति, वस्तु और अवस्था का ज्ञान जाग्रत रूप में प्राप्त होता है तब मनुष्य संसार से मुक्त होने का प्रयास करने में सफल होता है ।
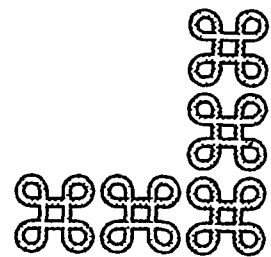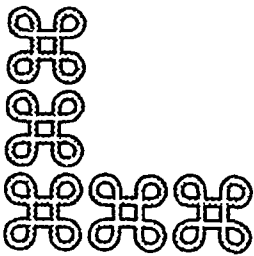
संसार असारता का स्वरूप

संसारे अपरिणाते भवति
एत्थ मोहे पुणो पुणो
जे गुणे से मूलट्ठाणे,
जे मूलट्ठाणे से गुणे ।

जो संसार को नहीं जानता है, उसको जन्म-मरण की शृंखला में बार-बार मोह उत्पन्न होता है । अतः जो विषय है, वह संसार है; और जो संसार है वह विषय है ।

इन्द्रिय विषय कुछ इष्ट और कुछ अनिष्ट होते हैं । इष्ट विषयों के प्रति राग और अनिष्ट विषयों के प्रति द्वेष होता है । इस प्रकार विषय से कषाय बढ़ता है और कषाय से संसार बढ़ता है । विषय और कषाय को ही संसार कहा जाता है । गुण अर्थात् विषय-मूलस्थान अर्थात् संसार । विषय ही संसार है संसार ही विषय है ।

अणोहंतरा ऐते, नो य ओहं तरित्तए ।
अतीरंगमा एते, नो य तीरं गमित्तए ।
अपारंगमा एते, नो य पारं गमित्तए ।।

१. ये अनोहांतर है—संसार-प्रवाह को तैरने में समर्थ नहीं है ।

२. ये अतीरंगम है—तीर तक पहुंचने में समर्थ नहीं है ।

३. ये अपारंगम है—पार तक पहुंचने में समर्थ नहीं है ।

जो क्रूर कर्म करता है, वह अज्ञानी होता है अतः सुख की खोज में बार-बार दुःख प्राप्त करता है । वह कभी संसार से विरक्त होने में समर्थ नहीं हो सकता । यदि कभी कुछ संस्कार वश विरक्त होने का प्रयास करे तो भी पूर्णता का स्पर्श कभी नहीं कर सकता और पूर्णता के लिए साहस

करता है तो भी संसार को पार निर्वाण प्राप्त कभी नहीं कर सकता । क्योंकि लेशमात्र भी परिग्रह की मूर्च्छा उसे संसार से मुक्त नहीं होने देगी ।

आगतिं गतिं परिण्णाय,
दोहिं वि अंतेहिं अदिस्समाणे ।
से ण छिज्जइ ण भिज्जइ ण डज्झइ,
ण हम्मइ कंचणं सव्वलोए ।।

आगति और गति (संसार-भ्रमण) को जानकर जो राग और द्वेष —इन दोनों अंतों से दूर रहता है, वह लोक के किसी भी कोने में छेदा नहीं जाता, भेदा नहीं जाता, जलाया नहीं जाता और मारा नहीं जाता ।

गति और अगति अर्थात् संसार का परिभ्रमण । अतः संसार भावना का अनुचिन्तन करने वाला साधक विविध गति में परिभ्रमण करने वाला हूँ ऐसा जानकर परिभ्रमणात्म गति, आगति का विसर्जन करें संसार से मुक्त होने का प्रयास करें । जो संसार में रहने पर भी संसार से मुक्त रहता है वही संसार भावना को जानता है, मानता है और पाता है ।

ꕥ

एकत्व का अनुचिन्तन

"अइअच्च सव्वतो संगं
ण महं अत्थित्ति इति
एगोहमंसि ।"

मानव सव प्रकार से संग को परित्याग कर चिन्तन करे कि मेरा कोई नहीं है, मैं अकेला हूँ । न मुझे किसी के साथ की आवश्यकता है और न किसी को मेरे साथ की आवश्यकता है जो भी है वह तो व्यवहार मात्र है ।

सर्वसंघ परित्याग यह साधक की उत्कृष्ट साधना है । इस साधना के माध्यम से आसक्ति या ममत्व युक्त सम्बंध का सर्वथा अतिक्रमण होता है । फलतः साधक अपनी प्रक्रिया से ऊपर उठता है । संसार में किसी भी प्रकार का प्रतिवन्धात्मक संबंध उत्तेजित हो उठता है । तब साधक भ्रान्ति को भी यथार्थ मान बैठता है । साधक के लिए जड़-चैतन्य का विवेक होना अनिवार्य है अतः मेरा कोई नहीं है, मैं अकेला हूँ । अकेला आया हूँ अकेला जाऊंगा ऐसी एकत्व भावना का अनुचिन्तन करें ।

एगन्तगए मिहियच्चे

भगवान महावीर परिवार के साथ रहने पर भी भीतर से मैं अकेला हूँ ऐसे एकत्व भावना का निरंतर चिन्तन करते थे ।

एकत्व भावना से भावित साधक का अंतःकरण जाग्रत होने से सामाजिक, पारिवारिक, धर्मिक कार्य करने पर भी निःसंग रहता है । वह अकेला हो या सभी के बीच में हो, जंगल में हो या भीड़ में

हो, सोया हुआ हो या जाग्रत हो । एकत्व भाव में ही संलग्न रहता है ।

जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ एगो अहमंसि, न मे अत्थि कोइ, न याहभवि कस्सइ, एवं से एगागिणमेव अप्पाणं समभिजाणिज्जा ।

जिस भिक्षु को ऐसा अध्यवसाय (बुद्धि या निश्चय) होता है—मैं अकेला हूँ, मेरा कोई नहीं, मैं भी किसी का नहीं हूँ : इस प्रकार वह भिक्षु अपनी आत्मा को एकाकी ही अनुभव करें ।

आत्म विकास के लिए साधक स्वयं स्वतंत्र है उसे पर सहाय की आवश्यकता नहीं । साधक की स्वतंत्रता तभी सिद्ध होती है, जब वह उपकरण, आहार, शरीर, संघ तथा सहायक परिजन आदि से निरपेक्ष होकर एक मात्र आत्मावलंबी बनकर जीवन-यापन करें । पर सहाय के परित्याग से साधक एकत्वभाव में संलग्न रहने में सफल होता है । मेरी पीड़ा, मेरा दुःख—मुझे ही भोगना है न मेरे सुख दुःख का कोई कर्त्ता है न कोई भोगता है न मैं किसी के दुख का निवारण कर सकता हूँ न मेरे दुःख का कोई निवारण कर सकता है ।

एकत्व भाव से प्राप्त लाभ—

१. अल्पभाषी-प्रायः मौन,
२. संक्लेश मुक्त-प्रायः प्रसन्न
३. कषाय मंद-प्रायः संयम
४. सहाय विमोक्ष-प्रायः एकाकी
५. उपकरण अल्प-प्रायः सहजतप

⌘

अन्यत्व का अनुराग

शरीर में वल, आभा, कान्ति ऊर्जा, आदि क्षीण होने पर मानव स्वाभाविक चिन्ता, भय और व्याधि से पीड़ित हो जाता है, अर्थ के अभाव में या कुष्ठादि रोग में जव वह कराहता है तव उसके प्रति घृणा के भाव को देखकर साधक सोचता है कौन किसका है ।

जेहिं वा सद्धिं संवसति ते वा णं एगया णियगा तं पुव्विं परिहरंति, सो वा ते णियगे पच्छा परिहरेज्जा ।

न मेरा कोई है और न मैं किसी का हूँ । जिसको मैंने मेरे माने थे वे ही पराये हो गये । इस प्रकार का चिन्तन और मनन करना अन्यत्व भावना है ।

यह शरीर भी मेरा नहीं है । मैं और शरीर दोनों भिन्न हैं । मैं न तो अपने आपको किसी का हूँ ऐसा बता सकता हूँ और न तो कोई मेरे हैं ऐसा कह सकता हूँ क्योंकि सवसे अधिक इस शरीर को मैंने मेरा माना या कहा वही मेरें लिए धोका वन गया । अतः स्वजन, परजन, सभी मेरे लिए अन्य है, पर है, भिन्न है किन्तु मेरा शरीर भी मुझसे अन्य है, भिन्न है ऐसी भावना अन्यत्व भावना है ।

⌘
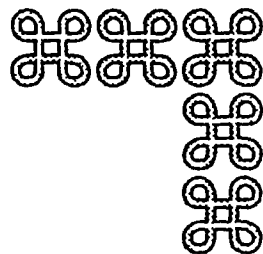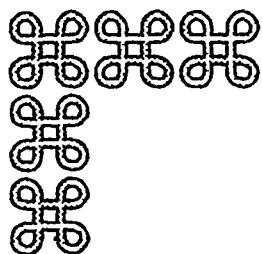
६९. अंतो अंतो देहंतरणि पासति पुढोवि सवंताइं ।

अर्थ—यह शरीर अशुचि का भंडार है अतः इसके भीतर अशुद्धि भरी हुई है । साधक उसे देखें । देह से झरते हुए विविध अशुचि-स्रोतों का भी निरीक्षण करें । इस प्रकार साधक अपने नश्वर शरीर की अशुचिता को भली भांति देखें और चिन्तन करें ।

शरीर की अशुचिता और असारता का चिन्तन करने से उसके प्रति होने वाली आसक्ति और ममत्व बुद्धि अल्प होती है । शरीर में दस छिद्र हैं । दसों छिद्रों से तथा शरीर के रोम-कूपों से प्रतिक्षण अशुचि का स्राव होता रहता है । इन स्रावों को देखने से, चिन्तन करने से, शरीर की सुन्दरता, रूप और लावण्य के मद के प्रति राग तथा मोह कम होता है ।
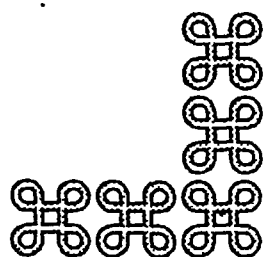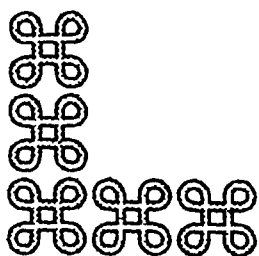
अशुचिमय - शरीर

पंडिए पडिलेहाए ।

अतः बुद्धि संपन्न साधक काम के विपाक और शरीर की अशुचिता को देखें, जाने और समझे ।

कामभोगों की उत्तेजना के साधनों से ऊपर उठे । कामभोग के खाद्य-पदार्थों का परित्याग करें । कामभोगों वाले स्थानों से अपने आपको दूर रखें ।

से मइमं परिण्णाय,
मा य हु लालं पच्चासी ।

इस प्रकार रहने वाले साधक को कहा है कि मतिमान् साधक ! तू काम और शरीर के यथार्थ स्वरूप को जानकर और त्याग कर लार को न चाटे अर्थात् वान्त भोग का सेवन न करें ।

इह खलु अत्तत्ताए तेहिं-तेहिं कुलेहिं अभिसेएण अभिसंभूता, अभिसंजाता, अभिणिव्वट्टा ।

मनुष्य नाना कुलों में आत्म-भाव (अपने-अपने कर्मोदय) से प्रेरित हो शुक्रशोणित के निषेक से उत्पन्न होते हैं, अर्बुद और पेशी का निर्माण करते हैं, अंग-उपांग के रूप में विकसित होते हैं, जन्म प्राप्त कर बढ़ते हैं ।

अतः हे साधक । तुम इस संसार में आत्मत्व (स्वकृत-कर्म के उदय) से प्रेरित होकर उन-उन कुलों में शुक्र-शोणित के अभिषेक-अभिसिंचन से माता के गर्भ में कललरूप हुए, इर अर्बुद (मांस) और पेशी रूप बने, तदनन्तर अंगोपांग—स्नायु, नस,

रोम आदि के क्रम से अभिनिष्पन्न हुए, फिर प्रसव होकर संवर्द्धित हुए हो अतः ऐसे मलमूत्र के अशुचिमय संसार में कब तक भ्रमण करोगे । ऐसी भावना का अनुचिन्तन करो ।

⌘
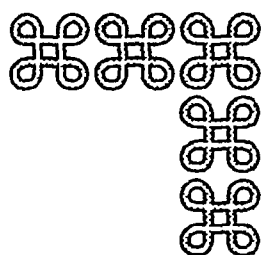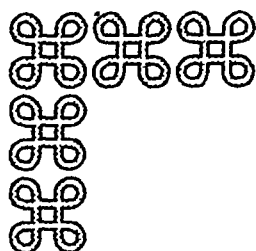
७०. से अण्णवहाए अण्णपरियावाए
अण्णपरिग्गहाए, जणवयवहाए
जणवयपरियावाए जणवयपरिग्गहाए ।

अर्थ—तृष्णा की पूर्ति के हेतु व्याकुल मनुष्य दूसरों के वध के लिए, दूसरों के परिताप के लिए, दूसरों के परिग्रह के लिए, तथा जनपद के वध के लिए, जनपद के परिताप के लिए और जनपद के परिग्रह के लिए प्रवृत्ति करता है ।

चित्त विक्षिप्त मानव असंभव इच्छा आशा और अपेक्षा की कल्पना की उधेड़बुन में लगा रहता है और अनर्थों का सेवन करता हुआ आश्रव का सेवन करता रहता है। महाआरंभ और महापरिग्रह का सेवन करने वाले को कहा है कि—वे चलनी को जल से भरना चाहते हैं । अर्थात् चलनी रूपी महातृष्णा को धनरूपी जल से भरना चाहता है । वह तृषातुर अपनी तृष्णा हेतु अनेक प्राणियों को शारीरिक तथा मानसिक पीड़ा पहुँचाता है ।
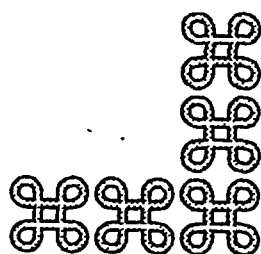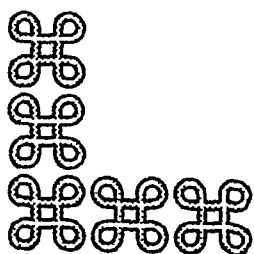
आस्रव के बंध द्वार

अट्टा वि संता अदुवा पमत्ता ।

आसव सक्की-
सम्ममेयंति पासह-
जेण बंधं वहं घोरं,
परितावं च दारुणं ।
कम्मुणा सफलं दट्ठुं,
तओ णिज्ञाइ वेयवी ।

अनेक मानवों का संहार करता है । अभाव ग्रस्त होने से अनर्थ आस्रवों में प्रमत्त रहता है । जो आरंभ परिग्रह रूप आश्रव में मस्त रहता है वह "आर्त या प्रमत्त होने से दुःखों का निरंतर संवेदन करता है ।"

हिंसादि आस्रवों में आसक्त मानव के लिए कहा है कि—भोगेच्छा की निवृत्ति होने पर ही हिंसा की निवृत्ति होती है । यह सत्य है फिर भी भोगेच्छा से प्रेरित पुरुष बन्ध, घोर वध और दारुण परिताप का प्रयोग करता है । कर्म अपना फल देते हैं, यह देखकर ज्ञानी मनुष्य उन कर्मों के बंध, आश्रव या संचय से निवृत्त हो जाता है ।

⌘
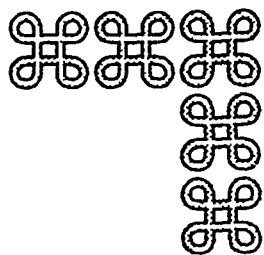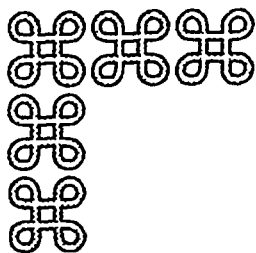
**७१. पलिछिंदिय बाहिरगं च सोयं,
णिक्कम्मदंसी इह मच्चिएहिं ।**

अर्थ—संवर साधना में संलग्न साधक इन्द्रियों की बहिर्मुखी प्रवृत्ति को रोककर इस मरण धर्मा जगत में निष्कर्म साधना करने में समर्थ होता है । निष्कर्म के पांच अर्थ यहाँ प्राप्त होते हैं—मोक्ष, संवर, कर्म रहित आत्मा, अमृत और शाश्वत् ।
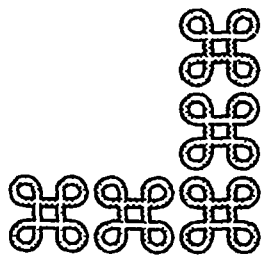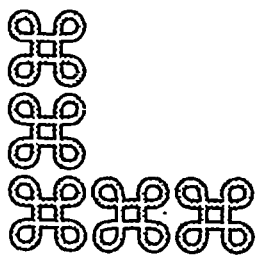
संवर के बढ़ते चरण

जस्स नत्थि पुरा पच्छा,
मज्झे तस्स कओ सिया ?

जिस साधक के अन्तःकरण में भोगासक्ति का पूर्व संस्कार ही नहीं है और भविष्य का संकल्प भी नहीं है । ऐसे संवर साधक के मन में संभव ही नहीं किसी प्रकार का विकल्प उठ सके । क्योंकि "जिसका आदि अंत नहीं उसका मध्य भी नहीं ।"

से हु पण्णाणमंते
बुद्धे आरंभोवरए ।

वास्तव में ऐसे साधक प्रज्ञावान बुद्ध और हिंसा से विरत होते हैं । उनकी भोगाकांक्षाएँ शान्त हो चुकी होती हैं ।

संवर प्रवृत्त साधक वीर, इन्द्रियजयी, प्रतिपल जागरूक, पाप भीरु, यथार्थ दृष्टा, चारों ओर से सत्य में स्थित, समित, सहित, यत्नशील, शुभाशुभदर्शी स्व में स्थिर होते हैं ।

एवं से उट्ठिए ठियप्पा,
अणिहे अचले चले,
अवहिलेस्से परिव्वए ।
तद्दिट्ठीए तम्मोत्तीए
तप्पुरक्कारे तस्सण्णी
तन्निवेसणे ।

संवर साधना में संलग्न साधक-उत्थित और स्थितात्मा होते हैं । अपनी शक्ति के अनुरूप वे अस्नेह, अनासक्त, अविचल रहकर प्रतिकूल उपसर्ग-परिषहों को प्रसन्नता से सहते हुए विभिन्न ग्रामों में विचरण करते हैं ।

संवर साधना में संलग्न साधक-गुरु प्रदत्त दो आज्ञा, जो दृष्टि, जो विचार प्राप्त है, उसे उसी रूप में अपनाता है और चिन्तन करता है ।

१. तद्दिट्ठीए—गुरु प्रदत्त दृष्टि से चिन्तन करता है ।

२. तम्मोत्तीए—वह गुरु की आज्ञा में ही तन्मय रहता है ।

३. तप्पुरक्कारे—गुरु का आदेश ही शिरोधार्य होता है ।

४. तस्सण्णी—गुरु के विचारों की स्मृति में खोया रहता है ।

५. तन्निवेसणे—गुरु के चिन्तन में ही स्वयं को केन्द्रित रखता है ।

जयंविहारी चित्तणिवाती
पंथणिज्झाती पलीवाहरे,
पासिय पाणे गच्छेज्जा ।
से अभिक्कममाणे पडिक्कममाणे
संकुचेमाणे पसारेमाणे
विणियट्टमाणे संपलिमज्जमाणे ।

मुनि संयमपूर्वक चित्त को गति में एकाग्र कर, पंथ पर दृष्टि टिका कर चले । जीव जन्तु को देखकर पैर को संकुचित कर ले और मार्ग में आने वाले प्राणियों को देखकर चले । वे प्राणी सामने आ रहे हों, लौट रहे हों, संकुचित हो रहे हों, फैल रहे हों, ठहरे हुए हों या धूलि में डूबते तैरते हों । सभी जीवों की यत्ना करता हुआ संवर भावना में संलग्न रहे ।

⌘
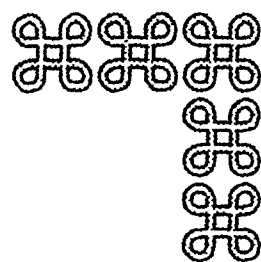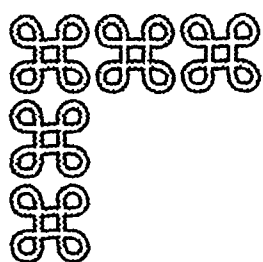
७२. धुणे कम्म-सरीरगं ।

अर्थ—कर्म शरीर को प्रकाम्पित करना यानि कर्म निर्जरा करना । इस पार्थिव शरीर को धुनने से, क्षीण करने से, विशेष उपलब्धि नहीं होती । उपलब्धि के लिए तो राग-द्वेष जनित कर्म की ही निर्जरा करना आवश्यक है । साधना का लक्ष है कर्म निर्जरा । यदि निर्जरा न हो तो साधना की सफलता ही क्या ?

साधना के लिए शरीर साधन है । स्वादिष्ट अनुपयुक्त आहार से उसे न तो पुष्ट करें और न ही ममत्व द्वारा उसको विशेष संवारा करें । किन्तु तप, त्याग और शरीर साधना के माध्यम से कर्म निर्जरा करना ही निर्जरा भावना है ।
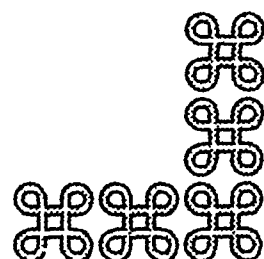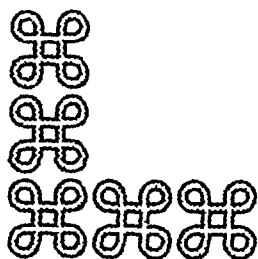
निर्जरा कर्म रेचन की विधि

इह आणाकंखी पंडिए अणि हे एगमप्पाणं संपेहाए धुणे सरीरं, कसेहि अप्पाणं, जरेहि अप्पाणं ।

निर्जरा भावना में संलग्न साधक-आज्ञाप्रिय पंडित होने से आत्म संप्रेक्षण करता हुआ अनासक्त भाव में रमण करता है । वह कर्म-शरीर को प्रकंपित करता हुआ कषाय आत्मा को कृश करे, जीर्ण करे ।

जहा जुण्णाइ कट्ठाइं, हव्ववाहो पमत्थति, एवं अत्तसमाहिए अणिहे ।

जैसे-अग्नि, जीर्ण काष्ठ को शीघ्र जला देती है, वैसे ही समाहित आत्मा वाला तथा अनासक्त पुरुष कर्म-शरीर को प्रकम्पित, कृश और जीर्ण कर देता है ।

तप, त्याग, ध्यान और समाधि में संलग्न साधक को अनेक प्रकार के परिषह-उपसर्ग आते रहते हैं । उन कष्टों को समभाव से जो सहन करता है वह कर्म-निर्जरा करता है । कर्म को कृश, जीर्ण और दग्ध करने हेतु जीर्ण काष्ठ और अग्नि की उपमा दी गई है । समाधिस्थ और अनासक्त साधक ही निर्जरा भावना का अधिकारी होता है । अन्यथा कर्म का बन्ध और क्षय की प्रवृत्ति निरन्तर चलती रहती है ।

⌘
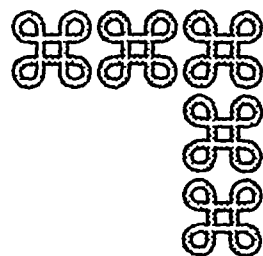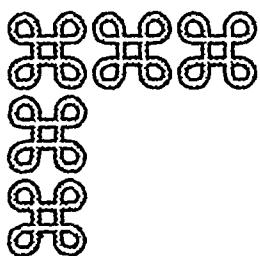
७३. अत्थि लोए, णत्थि लोए, धुवे लोए,
अधुवे लोए, साइए लोए, अणाइए लोए,
सपज्जवसिते लोए, अपज्जवसिते लोए ।

अर्थ—अनेक दार्शनिक लोक को वास्तविक मानते हैं, अनेक दार्शनिक अवास्तविक मानते हैं । कोई स्थिर मानते हैं कोई अस्थिर मानते हैं । कोई लोक को सादि मानते हैं कोई लोक को अनादि मानते हैं । कोई लोक को अन्त मानते हैं तो कोई लोक को अनंत मानते हैं ।
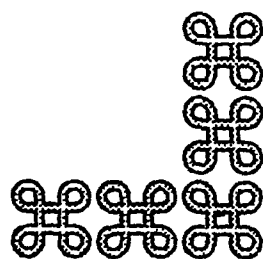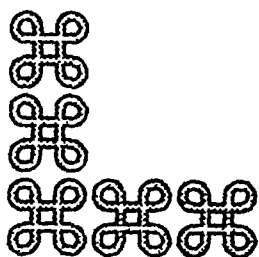
लोक का स्वरूप

आयतचक्खू लोग-विपस्सी
लोगस्स अहो भागं जाणइ,
उड्ढं भागं जाणइ,
तिरियं भागं जाणइ ।

दीर्घदर्शी पुरुष लोकदर्शी होता है । वह लोक के अधोभाग को जानता है, उर्ध्वभाग को जानता है और तिरछे भाग को जानता है ।

लोक भावना में संलग्न साधक को इहलोक-परलोक के उपाय जानने की क्षमता होने से वह संसार से मुक्त होने के उपाय का चिन्तन करता है । यह चिन्तन तीन स्वरूप में होता है—१. लोक-दर्शन २. अनुपरिवर्तन का बोध ३. संधि दर्शन ।

१. लोक-दर्शन—अधोलोक, उर्ध्वलोक और मध्यलोक तीन प्रकार से लोक का दर्शन, चिन्तन और मनन होता है ।

लोक के अधोभाग में नारकीय जीवों का आवास है । वे नैरयिक विषय-कषाय और वासनात्मक पीड़ा से पीड़ित होने से तीव्र संवेदनाओं को भोगते हैं ।

उर्ध्वभाग में देवताओं का निवास होता है । वे पूर्वकृत पुण्य उपार्जन होने से भोगोपभोग में आसक्त रहने से परस्पर वैमनस्य होने से पीड़ित रहते हैं ।

मध्यलोक में मानव तथा तिर्यंच (पशु-पंछी) का आवास होता है । वे भी कामयोग की तीव्र कामना में आँसू बहाते हैं और शोक, पीड़ा और परिताप से दुःखी होते हैं । इस प्रकार तीनों लोक के जीव की क्षणभंगुरता, असारंता और विविधता पर अनुचिन्तन होता है ।

२. अनुपरिवर्तन—अर्थात् पुनः पुनः परिभ्रमण । दीर्घदर्शी साधक, कामभोग में गृद्ध, आसक्त और पीड़ित मानव को देखता है और जानता है । इस अनुपरिवर्तन का बोध जब मानव को होता है तब वह विरक्ति की भावना में संलग्न हो जाता है ।

३. संधि दर्शन—अर्थात् समय ! जैसे रात और दिन के बीच का समय उषा और संध्याकाल होता है, वैसे ही जीवन में जन्म और मृत्यु के बीच का समय संधि दर्शन का होता है । यह समय ज्ञानादि की प्राप्ति का, आत्मविकास करने का, तथा आत्म वैभव पाने का समय है । अतः समय को जानना ही लोक भावना का महत्त्व है ।

संधि दर्शन का एक अर्थ शरीर दर्शन भी है । इस लोक में रहने वाले जीवात्मा को शरीर के ममत्व से विरक्त होने के लिए चिन्तन आवश्यक है । शरीर को अस्थि-कंकाल समझने वाला शरीर के ममत्व से मुक्त हो जाता है । शरीर में एक सौ अस्सी संधियां है उनका चिन्तन करना इत्यादि संधि दर्शन है ।

अवि झाति से महावीरे,
आसणत्थे अकुक्कुए झाणं ।
उड्ढमहे तिरियं च, पेहमाणे
समाहिम पडिण्णे ।।

भगवान महावीर अपने साधना काल में उर्ध्वलोक और मध्यलोक में स्थित तत्वों पर ध्यान लगाकर समाधिस्थ हो जाते थे ।

इस प्रकार लोक भावना में तीनों लोक के स्वरूप का चिन्तन तथा तीनों लोक में स्थित वस्तु स्थिति का ध्यान केन्द्रित कर साधना का दिग्दर्शन कराया है ।
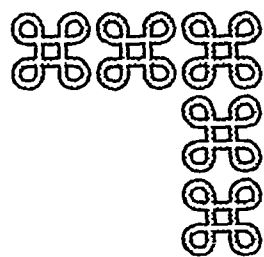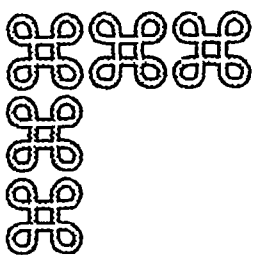
७४. एस धम्मे सुद्धे णिइए सासए समिच्च लोयं
खेयण्णेहिं पवेइए । उट्ठिएसु वा, अणुट्ठिएसु वा ।
उवट्ठिएसु वा, अणुवट्ठिएसु वा । उवरयदंडेसु वा,
अणुवरयदंडेसु वा । सोवहिएसु वा, अणोवहिएसु वा ।
संजोगरएसु वा, असंजोगरएसु वा ।

अर्थ—धर्म भावना में संलग्न साधक चिन्तन करता है कि—अहिंसा धर्म शुद्ध, नित्य और शाश्वत है । खेदज्ञ अर्हन्तो ने जीवलोक को सम्यक् जानकर इस (धर्म) का प्रतिपादन किया है जो भी साधक इसका आचरण करने के लिए उठे है या नहीं उठे हैं । धर्म श्रवण के लिए उपस्थित हुए हैं, या नहीं हुए हैं । जो मन, वचन और कायिक दंड देने से उपरत हैं अथवा अनुपरत हैं । जो परिग्रहादि उपधि से युक्त है अथवा उपधि से रहित है । जो संयोगों में अनुरक्त है अथवा संयोगों में अनुरक्त नहीं है किन्तु अहिंसा धर्म सत्य है, तथ्य है, और ग्रहण करने योग्य है ऐसा जानकर निरंतर उसका आचरण करें ।
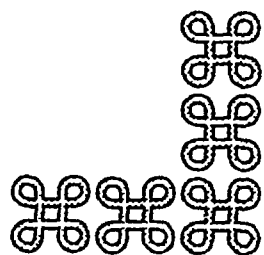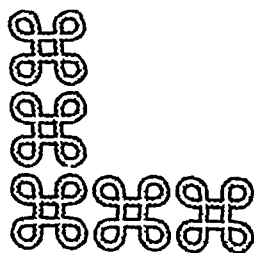
धर्म की सुरक्षा

नरा मुयच्चा धम्मविदु त्ति अंजू ।
सततं मूढे धम्मं णाभिजाणइ ।
से उट्ठिएसु वा अणुट्ठिएसु वा सुस्सूसमाणेसु पवेदए—संतिं, विरतिं, उवसमं, णिव्वाणं, सोयवियं, अज्जवियं, मद्दवियं, लाघवियं, अणइवत्तियं ।

देह के प्रति अनासक्त मनुष्य ही धर्म को जान पाते हैं और धर्म को जानने वाले ही ऋजु होते हैं ।

सतत मूढ़ मनुष्य धर्म को नहीं जान पाता ।

धर्म को सुनने के इच्छुक मनुष्यों के बीच, वे फिर (धर्माचरण के लिए) उत्थित हो या अनुत्थित, मुनि शांति, विरति, उपशम, निर्वाण, शौच (अलोभ), आर्जव, मार्दव, लाघव (उपकरण आदि की अल्पता) और अहिंसा का प्रतिपादन करें । जो सत्वशील मनुष्य धर्म के सम्यक् विशेषज्ञ होते हैं, वे ही कर्म का क्षय करते हैं । ऐसे मानव धर्मवेत्ता होते हैं, कुटिलता रहित होते हैं, तथा अनासक्त या कषायचर्या को विनष्ट किये हुए होते हैं ।

एवं से अहाकिट्टियमेव धम्मं समहिजाणमाणे संते विरते सुसमाहितलेसे

इस प्रकार वह भिक्षु तीर्थंकरों के द्वारा निरूपित धर्म को जानता हुआ शान्त, विरत और प्रशस्त लेश्या (विचारधारा) में नियोजित आत्मा वाला बने ।

इस प्रकार यह धर्म शरीरादि मोह से विमुक्त कराने वाला है, हितकर है, सुखकर है, सक्षम है, निःश्रेयस्कर है और भवान्तर में भी साथ चलने वाला है ।

बोधि दुर्लभ की दुर्लभता

अट्टे लोए परिजुण्णे, दुस्सं बोहे अविजाणए ।

अज्ञानी मानव इस लोक में व्यथा-पीड़ा का अनुभव करते हैं । काम, भोग और सुख के लिए आतुर होने से परिताप पाते रहते हैं ऐसे मानव आर्त होते हैं; ज्ञान, दर्शन से परिजीर्ण होते हैं । अतः ऐसे मानव के लिए बोधि दुर्लभ होती है ।

जहेत्थ मए संधी झोसिए, एवमण्णत्थ संधी दुज्झोसिए भवति,

जैसे मैंने ज्ञान, दर्शन और चारित्र की समन्वित आराधना की है, वैसी आराधना अन्यत्र दुर्लभ है । अतः साधक को अपने पूर्वकृत कर्मों की परंपरा का क्षय स्वयं को करना है ऐसा बोध अवश्य होना चाहिए ।

इमेणं चेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण वज्झओ । जुद्धारिंह खलु दुल्लहं । से वसुमं सव्व-समन्नागय-पण्णाणेणं अप्पाणेणं अकरणिज्जं पावं कम्मं । अभिसंवुड्ढा, अभिसंबुद्धा अभिणिक्खंता,

हमें कर्मों से लड़ना है । कर्मों से युद्ध करने वाली सामग्री निश्चित ही संसार में दुर्लभ है । बोधि-सम्पन्न साधक के लिए पूर्ण सत्य-प्रज्ञ अन्तःकरण से पाप-कर्म अकरणीय हैं । जो साधक सम्बोधि को प्राप्त होते हैं और संबुद्ध होकर अभिनिष्क्रमण करते हैं वे ही निग्रंथ होते हैं । वे ही साधक साधना के दुष्परिणामों को जानता है और स्वचिन्तन का अनुभव पाता है बोधि-दुर्लभ है अतः उसकी स्पर्शना होना ही संयम साधना की उपलब्धि है ।

ॐ

२

अभेद ज्ञान की प्राप्ति हेतु विशुद्ध साधना की प्रक्रिया

- अशन पान खाद्य स्वाद का विसर्जन
- संतुलित आहार की गवेषणा
- खाने की प्रक्रिया प्रयोग और परिणाम
- परिषह उपसर्ग से विरत
- साधना में संलग्न
- प्रायश्चित्त का पश्चाताप
- स्वयं की साधना में आसीन
- ध्यान और कायोत्सर्ग का समन्वय
- आराधना की फलश्रुति
- महावीर की ध्यान विधि
- जाग्रत अवस्था का प्रमाण
- कर्म क्षय और विशुद्ध अवस्था

⌘

साध्य प्राप्ति का परम उपाय-तप

अनशण की उपासना

७५.

अवि आहारं वोच्छिंदेज्जा ।

आहार का परित्याग (अनशन) करें ।

उणोदरिका—अल्प आहार

लाघवियं आगममाणे, तवे से अभिसमन्नागए भवइ ।

वह लाघव का चिन्तन करता हुआ (स्वाद का विसर्जन करे) अस्वाद-लाघव वाले मुनि के (स्वाद-अवमौदर्य तथा काय-क्लेश) तप होता है ।

भिक्षाचरी के माध्यम से

एस वीरे पंससिए, जे ण णिविज्जति आदाणाए ।

वह वीर प्रशंसनीय होता है जो संयम से उद्विग्न नहीं होता अर्थात् जो संयम में सतत लीन रहता है ।

ण मे देति ण कुप्पिज्ञा, थोवं लद्धुं न खिंसए । पडिसेहिओ परिणभिज्ञा ।

यह मुझे भिक्षा नहीं देता, ऐसा सोचकर कुपित नहीं होना चाहिए । थोड़ी भिक्षा मिलने पर दाता की निंदा नहीं करनी चाहिए । गृहस्वामी दाता द्वारा प्रतिवंध करने पर, निषेध करने पर शान्त भाव से वापस लौट जाये ।

मुनि संसार त्यागकर भिक्षावृत्ति से जीवन-यापन करता है । उसकी भिक्षा त्याग का साधन है, किन्तु यदि वही भिक्षा

आसक्ति, उद्वेग तथा क्रोध आदि आवेशों के साथ ग्रहण की जाये तो, भोग बन जाती है। श्रमण की भिक्षावृत्ति "भोग" न बने इसलिए भिक्षाचर्या में मन को शांत, प्रसन्न और संतुलित रखते हुए अनासक्त भाव में रमण करें।

समुट्ठिए अणगारे आरिए आरियपण्णे आरियदंसी "अयं संधी" ति अदक्खु। सव्वामगंधं परिण्णाय, णिरामगंधो परिव्वए।

आर्य, आर्यप्रज्ञ, आर्यदर्शी और संयम में तत्पर अनगार यह "भोजन-काल है" यह देखकर (भिक्षा के लिए जाए)। वह सब प्रकार के अशुद्ध भोजन का परित्याग कर आहार ग्रहण करें।

से भिक्खू कालण्णे वलण्णे मायण्णे खेयण्णे खणयण्णे विणयण्णे समयण्णे भावण्णे, परिग्गहं अममायमाणे, कालेणुट्ठाई, अपडिण्णे।

१. **कालज्ञ**—भिक्षा काल का उपयुक्त समय है अतः निजकर्तव्य में संलग्न रहने वाला।

२. **वलज्ञ**—अपनी शक्ति एवं सामर्थ्य को पहचानने वाला तथा शक्ति का तप, सेवा आदि में योग्य उपयोग करने वाला।

३. **मात्रज्ञ**—भोजन आदि उपयोग में लेने वाली प्रत्येक ग्राह्य वस्तु का परिमाण (मात्रा) जानने वाला।

४. **खेदज्ञ**—दूसरों के दुःख एवं पीड़ा आदि को समझने वाला जिस स्थान पर भिक्षा के लिए जाना हो उसका भली-भांति ज्ञान रखने वाला।

५. **क्षणज्ञ**—अवसर को जानने वाला।

६. **विनयज्ञ**—भिक्षाचर्या की आचार-संहिता को जानकर व्यवहार के औचित्य और जो लोक-व्यवहार का ज्ञाता हो।

७. **समयज्ञ**—स्व-पर सिद्धान्तों का सम्यक् ज्ञाता।

८. भावज्ञ—दाता के प्रिय-अप्रिय भाव को जानने वाला । परिग्रह पर ममत्व नहीं करने वाला, उचित समय पर अनुष्ठान करने वाला और अप्रतिज्ञ भोजन के प्रति संकल्प रहित, मूर्च्छा रहित आहार ग्रहण करने वाला हो ।

रस परित्याग का महत्त्व

७६.

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहारेमाणे णो वामाओ हणुयाओ दाहिणं हणुयं संचारेज्जा आसाएमाणे दाहिणाओ वा हणुयाओ वामं हणुयं णो संचारेज्जा आसाएमाणे, से अणासायमाणे ।

भिक्षु या भिक्षुणी अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य का सेवन करती हुई बाएं जवड़े से दाहिने जवड़े में न ले जाएं, आस्वाद लेती हुई तथा दाएँ जवड़े से बाएँ जवड़े में न ले जाय, आस्वाद लेती हुई वह अनास्वाद वृत्ति से आहार करे ।

सुब्भिं अदुवा दुब्भिं ।

सुगन्ध या दुर्गन्ध युक्त जैसा भी आहार मिले, उसे समभाव से खाए ।

कायाक्लेश की आराधना

एत्य विरते अणगारे, दीहरायं तितिक्खए ।

परिग्रह से विरत अनगार परिषहों को जीवन-पर्यन्त सहन करें । अपरिग्रहवृत्ति के कारण उत्पन्न होने वाले क्षुधा-पिपासा आदि परीषहों को जीवन-भर सहन करने वाले विरत अनगार होते हैं ।

७७.

जे असत्ता पावेहिं कम्मेहिं, उदाहु ते आयंका फुसंति । इति उदाहु वीरे "ते फासे पुट्ठो हियासाए ।"

जो साधक पाप कर्मों में आसक्त नहीं हैं कदाचित् उन्हें आतंक शीघ्र-घाती व्याधि, मरणान्तक पीड़ा आदि स्पर्श करें, ऐसे प्रसंग पर धीर, वीर 'उन दुःख स्पर्शों को समभावपूर्वक सहन करें ।

प्रतिसंलिनता की साधना

अहेगे धम्म मादाय आयाणप्पभिइं सुपणिहिए चरे । अपलीयमाणे दढे । सव्वं गेहिं परिण्णाय, एस पणए महामुणी ।

चारित्र धर्म में संलग्न महामुनि निर्ममत्व भाव से धर्मोपकरणादि से युक्त होकर इन्द्रिय और मन को समाहित करके साधना में संलीन रहता है । 'परिजनों का परित्याग, कामभोग में अलिप्त तप संयम में सुदृढ़, अनासक्त योगी, समस्त आसक्ति से परे होकर आत्मा में रमण करता है ।

प्रायश्चित एक विधान

जं आउट्टिकयं कम्मं, तं परिण्णाए विवेगमति । वहुं च खलु पाव-कम्मं पगडं । लोयंसी परमदंसी विवित्तजीवी उवसंते, समिते सहिते सया जए कालकंखी परिव्वए ।

अविधिपूर्वक प्रवृत्ति करते हुए मुनि को जो कर्म-बन्ध होता है, उसका (विलय) प्रायश्चित के द्वारा होता है । (इस जीव ने) अतीत में बहुत पाप कर्म किए हैं । जो लोक में परम को देखता है, वह विविक्त जीवन जीता है । वह उपशान्त, सम्यक् प्रवृत्त, (ज्ञान आदि से) सहित और सदा उप्रमत्त होकर जीवन के अन्तिम क्षण तक परिव्रजन करता है ।

आत्मदर्शी साधक प्राणि-जगत में

परम-मोक्ष या उसके कारण रूप संयम को देखता है । राग-द्वेष रहित शुद्ध जीवन जीता है वह उपशान्त-पांच समितियों से समित सम्यक् प्रवृत ज्ञान आदि से सहित होता है । अतएव वह सदा संयत अप्रमत्त-यतनाशील होकर, पण्डित-मरण की आकांक्षा करता हुआ जीवन के अन्तिम क्षण तक इस जीव ने भूतकाल में अनेक प्रकार के बहुत से पापकर्मो का बन्ध किया है । ऐसा चिन्तन करता हुआ प्रायश्चित करे ।

विनय गुण संपन्नता

एवं तेसिं भगवओ अणुट्ठाणे जहा से दिया-पोए ।

जैसे विहग-पोत अपने माता-पिता की इच्छा का पालन करता है, वैसे ही सुविनित शिष्य ज्ञानी गुरुजनों की आज्ञा का पालन करे ।

से जहावि अणगारे उज्जुकडे, णियागपडिवण्णे अमायं कुव्वमाणे वियाहिए ।

जिसका आचरण ऋजु होता है, जो मुक्ति के पथ पर चलता है और जो माया नहीं करता, वह विनित अनगार होता है, (इसके विपरीत आचरण करने वाला अनगार नहीं होता)

वयावृत्त का महान गुण

७८.

तवे से अभिसमण्णागए भवति ।

अल्प वस्त्र वाले मुनि के (उपकरण-अवमौदर्य तथा काय-कलेश) तप होता है ।

अहं च खलु तेण अहाइरित्तेणं अहेसणिज्जेणं अहापरिग्गहिएणं असणेण वा पाणेण वा खाइमेण वा साइमेण वा अभिकंख साहम्मियस्स कुज्जा वेयावडियं करणाए ।

मैं अपनी आवश्यकता से अधिक, अपनी कल्प-मर्यादा के अनुसार ग्रहणीय तथा अपने लिए लाए हुए अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य से निर्जरा के उद्देश्य से उन साधर्मिकों की सेवा करूँगा— पारस्परिक उपकार की दृष्टि से ।

स्वाध्याय में संलग्न

७६.

एयं णियाय मुणिणा पवेदितं—इह आणाकंखी पंडिए अणिहे, पुव्वावररायं जयमाणे, सया सीलं संपेहाए, सुणिया भवे अकामे अझंझे ।

इस (उत्थान-पतन के कारण) को जानकर भगवान् ने कहा-पंडित मुनि आज्ञा में रुचि रखें, स्नेह न करे, रात्री के प्रथम और अन्तिम भाग में स्वाध्याय और ध्यान करे, सदाशील का अनुपालन करे (लोक में सारभूत तत्व को) सुनकर काम और कलह से मुक्त बन जाए ।

इहारामं परिण्णाय, अल्लीण-गुत्तो परिव्वए । णिट्ठियट्ठि वीरे, आगमेण सदा परक्कमेज्जासि ।

इस सत्य के अनुशीलन में आत्म-रमण की परिज्ञा कर साधक आत्म-लीन और जितेन्द्रिय होकर परिव्रजन करे । संयम साधना द्वारा कृतार्थ, वीर मुनि सदा आगम-निर्दिष्ट अर्थ के अनुसार पराक्रम करे ।

सुपडिलेहिय सव्वतो सव्वयाए सम्ममेव समभिजाणिया । तमेव सच्चं णीसंकं, जं जिणेहिं पवेइयं ।

सब प्रकार से, सम्पूर्ण रूप से निरीक्षण कर सत्य का ही अनुशीलन करता रहे । वही सत्य और निःशंक है, जो तीर्थंकरों के द्वारा प्ररूपित है ।

ध्यान और कायोत्सर्ग

स्वानुभूति की उपलब्धि का उपाय है ध्यान । आत्मा और शरीर की भिन्नता के ज्ञान का उपाय है कायोत्सर्ग । ममत्व, विषय और कषाय के वन्धन से मुक्त होने का उपाय भी है । ध्यान और कायोत्सर्ग का समन्वय ।

जीवियं पुढो पियं इहमेगेसिं माणवाणं, खेत्त-वत्थु ममायमाणाणं । आरंत विरत्तं मणि कुंडलं सह हिरण्णेण, इत्थियाओ परिगिज्झ तत्थेव रत्ता । ण एत्थ तवो वा, दमो वा, णियमो वा दिस्सति ।

संसार में मानव जमीन जायदाद बंगले आदि में ममत्व रखते हैं उनको असंयत जीवन ही प्रिय लगता है । वे रंग-बिरंगे मणि, कुण्डल, हिरण्य और स्त्रियों का परिग्रह कर मानव उनमें अनुरक्त हो जाते हैं । परिग्रही मानव में न तप होता है, न शान्ति होती है न इन्द्रिय निग्रह होता है और न नियम होता है । यदि तप, जप, नियम आदि का आचरण करता भी हैं तो लोक प्रदर्शन के लिए करता है । वह केवल ऊपरी दिखावा है जिससे तप, शान्ति या नियमन निष्फल हो जाते हैं । अतः इन सभी आकर्षणों से मुक्त होने का उपाय है ध्यान ।

अदु पोरिसिं तिरियं भित्तिं, चुक्खुमासज्ज अंतसो झाइ ।

परमात्मा महावीर ध्यान करते थे आत्म साक्षात्कार के लिए । वे मन को एकाग्र करने के लिए दीवार का आलंबन लेते थे । वे एक-एक प्रहर तक तिरछी भीत पर आँखें गड़ाकर अंतरात्मा में ध्यान करते थे । इस साधना से उनका मन ही एकाग्र नहीं हुआ उनकी आँखें भी एकाग्र हो गई थीं । इस प्रकार वे अनिमेष दृष्टि को दीर्घकाल तक केन्द्रित करने में सफल रहे थे ।

सागारियं ण सेवे, इति से सयं पवेसिया झाति ।

भगवान की ध्यान मुद्रा अनेकों के लिए आकर्षण का केन्द्र रही । कामासक्त महिलाएं भोगोपभोग के लिए प्रार्थना करती थीं, किन्तु विरक्त भगवान अपनी अंतरात्मा में भीतर प्रवेश कर ध्यान में संलग्न रहते थे ।

जेके इमे अगारत्था, मीसीभावं पहाय से झाति ।

परमात्मा प्रायः मौन रखते थे । जैसे-जैसे ध्यान में लीन होते थे, वैसे-वैसे गृहस्थों से, सम्बन्धित स्थानों से और गृहस्थों से सम्बधित कार्यों से विरक्त हो जाते थे ।

आगंतारे आरामगारे, गामे णगरेवि एगदा वासो । सुसाणे सुण्णगारे वा, रुक्खमूले वि एगदा वासो । राइं दिवं पि जयमाणे, अप्पमत्ते समहिए झाति ।

भगवान कभी यात्री-गृह में, कभी आरामगृह में, कभी गाँव या नगर में, कभी श्मशान में, कभी शून्य-गृह में, तो कभी वृक्ष के नीचे ध्यान करते थे । इस प्रकार बारह वर्ष, छह महीने, पंद्रह दिनों में शान्त और समत्वभाव में रात और दिन सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रत्येक प्रवृत्ति में जागरुक रहते थे तथा अप्रमत्त और समाहित अवस्था में ध्यान करते थे ।

णिद्दं पि णो पगामाए, सेवइ भगवं उट्ठाए । जग्गावती य अप्पांण, ईसिं साई या सी अपडिण्णे ।।

परमात्मा ने निद्रा पर विजय पाई थी । क्षण भर की निद्रा के बाद फिर जाग्रत होकर ध्यान में बैठ जाते थे । निद्रा विजय के लिए वे कभी खड़े हो जाते थे कभी स्थानांतर करके टहलने लगते थे ।

उच्चालइय णिहणिंसु, अदुवा आसणाओ खलइंसु । वोसट्ठकाए पणयासी, दुक्खसहे भगवं अपडिण्णे ।।

कुछ लोग ध्यान में स्थित भगवान को ऊंचा उठाकर नीचे गिरा देते । कुछ लोग आसन से स्खलित कर देते थे, किन्तु भगवान शरीर का विसर्जन किए हुए, आत्मा के लिए समर्पित, कष्ट-सहिष्णु और सुख-प्राप्ति के

संकल्प से मुक्त थे । (अतएव उनका समभाव विचलित नहीं होता था ।) इस प्रकार मनुष्य तिर्यंच सम्वन्धी और देव दानव सम्वन्धी परिषह और उपसर्ग आने पर जैसे कवच पहना हुआ योद्धा संग्राम- शीर्ष में विचलित नहीं होता, वैसे ही संवर का कवच पनहे हुए भगवान महावीर कष्टों को झेलते हुए ध्यान से विचलित नहीं होते थे । किन्तु पर्वत की तरह निश्चल ध्यान करते थे ।

अवि झाति से महावीरे, आसणत्थे अकुक्कुए झाणं ।

भगवान ध्यान के लिए प्रायः एकांत स्थान पसन्द करते थे । प्रायः खड़े रहकर ध्यान करते थे कभी-कभी बैठकर भी ध्यान करते थे । बैठने के मुख्य आसन थे—वीरासन, गोदोहिकासन, उत्कटिकासन, पर्यंकासन और पद्मासन ।

उड्ढमहे तिरियं च, पेहंमाणे समाहिम पडिण्णे ।

परमात्मा ध्यान अवस्था में उर्ध्व, अधो और तिर्यक-तीनों को ध्येय बनाते थे । उर्ध्व लोक के पदार्थों का साक्षात्कार करने के लिए उर्ध्व दिशा का ध्यान करते थे । अधोलोक के पदार्थों का साक्षात्कार करने के लिए अधोदिशा का ध्यान करते थे और तिर्यक लोक के पदार्थो का साक्षात्कार करने के लिए तिर्यक दिशा का ध्यान करते थे ।

सयमेव अभिसमागम्म, आयत जोगमायसोहीए । अभिणिव्वुडे अमाइल्ले, आवकहं भगवं समिआसी ।।

आत्म शुद्धि के द्वारा आयत-योग (मन, वचन, और शरीर की संयत प्रवृत्ति) को प्राप्त होकर भगवान उपशांत हो गए । उन्होंने ऋजुभाव से (तप की साधना की ।) वे सम्पूर्ण साधना-काल में समित रहे ।

परमात्मा ने सर्व-प्रथम मन, वचन और शरीर की संयत प्रवृत्ति का ध्यान किया । कभी द्रव्य और पर्याय का ध्यान किया, कभी

शब्द और पदार्थों के माध्यम से ध्यान किया । इस प्रकार जिस स्थान में लीन हो जाते थे उसी में विशुद्धि प्राप्त कर लेते थे ।

समत्व जागरण की क्षण

समयं तत्थुवेहाए, अप्पाणं विप्पसायए

हमें, जीवन में समता का आचरण कर आत्मा में प्रसन्न रहना है ।

ध्यान की क्षमता से क्रमशः समत्व भाव केन्द्रित होता हैं । विचारों का संतुलन समत्व का सार्वभौम नियम है और विचारों का असंतुलन विषमता का द्योतक है । समत्व साधक घटना को जानता है, घटना को देखता है, घटना में सामिल होता है, पर घटना से प्रभावित नहीं होता है । इसलिए घटना से न तो वह आकुल व्याकुल होता है और न उसमें अनुरक्त हो जाता है ।

उवेहमाणो अणुवेहमाणं वूया "उवेहाहि समियाए ।"इच्चेवं तत्थ संधी झोसितो भवति ।

अतः समत्व योगी उत्प्रेक्षा करने वाला उत्प्रेक्षा नहीं करने वालों (विषम भाव वालों) से कहता है कि समभाव से उत्प्रेक्षा करो जिससे समता और विषमता की गुत्थि सुलझाई जा सकती है ।

समियाए धम्मे, आरिएहिं पवेदिते ।

क्योंकि परमात्मा ने समता में धर्म कहा है ।

जातिं च वुडिंढ च इहज्ज ! पासे । भूतेहिं जाणे पडिलेह सातं । तम्हा तिविज्ञो परमंति णच्चा, समत्तदंसी ण करेति पावं ।

समत्वदर्शी प्राणि जगत में जन्म और वृद्धि को देखता है और उससे कर्मबन्ध होते हैं यह जानता हैं अतः उनके साथ अपने सुख दुःख का पर्यालोचन करता हुआ पाप से मुक्त रहता हैं ।

पूर्वजन्म और पुनर्जन्म सिद्धान्त का

चिन्तन समत्व साधना की उपलब्धि है। अनेक जन्म जन्मान्तरों में मैंने प्रचुर पाप संयुक्त के फलस्वरूप कितने, कैसे और कहाँ दुःखों को सहे होंगे-सहते-सहते कहीं पुण्य संचय किया होगा फलतः आज मानव जगत में मेरा स्वागत हो रहा है अतः अपने विकास क्रम का चिन्तन करते-करते वह समत्व साधक अपने आप में केन्द्रित हो जाता है।

यहाँ समत्वदर्शी के लिए सूक्ष्म एवं तात्विक दृष्टि से जानने देखने का निर्देश किया गया है। जैसे—१. पूर्वजन्म शृंखला और विकास की स्मृति, २. प्राणिजगत का यथार्थ स्वरूप जानना और ३. अपने सुख-दुःख के साथ उसके सुख-दुःख की तुलना करके पर्यालोचन करना।

समत्वदर्शी पाप नहीं करता अर्थात् पाप और विषमता का मूल कारण राग और द्वेष हैं। जो अपने भावों को राग-द्वेष से कलुषित नहीं करता और न किसी प्राणी को राग-द्वेष युक्त दृष्टि से देखता है, अतः इसका रहस्य यही है कि पाप कर्म की उत्पत्ति, उसके कटु परिणाम और वस्तु स्वरूप का यथार्थ बोध जिसे हो जाता है उस ज्ञानी का आचरण विशुद्ध हो जाता है जिससे पापाचार का सवाल ही नहीं रहता।

८०.

जहेयं भगवता पवेदितं तमेव अभिसमेच्चा
सव्वतो सव्वत्ताए समत्तमेव समभिजाणिया।

अतः भगवान ने जैसे आचार धर्म का प्रतिपादन किया है, उसे उसी रूप में जानकर सब प्रकार से, सर्वात्मना समत्व का सेवन करे—

समत्व की साधना में संलग्न साधक को भौतिक सिद्धियाँ, यौगिक उपलब्धियाँ बाधक रूप होती हैं। समत्वदर्शी के लिए इन लब्धियों का सहारा लेना अपनी शक्ति का ही ह्रास करना है और अन्य सहायता की अपेक्षा रखना भी अपूर्णता है। अर्थात् सूक्ष्म रूप में भी इन्द्रिय विषयों में, मन के विकारों में, सहारा लेने से, आत्मा पराश्रित और निर्बल होता है। अतः निरावलम्बी अपनी ही उपलब्धियों में संतुष्ट रहता है। वह दूसरों द्वारा प्रदत्त सहायता, प्रशंसा या प्रतिष्ठा पर निर्भर नहीं रहता और न वह सहायता, प्रशंसा या प्रतिष्ठा में खुश रहता है। क्योंकि वही साधक समत्व योग की आराधना करने में सफल है, जो विषमता के समस्त कीटाणुओं को समाप्त करने में समर्थ है।

वृत्ति संशय—कर्म शमन की प्रक्रिया

क्रोधादि के स्वरूप तथा परिणाम आदि को जो देखता है, जानता है, मानता है और परित्याग करता है वही वृत्तियों का क्षय करने में समर्थ होता है। क्योंकि

कोहदंसी से माणदंसी,	जो क्रोधदर्शी है, वह मानदर्शी है।
जे माणदंसी से मायदंसी।	जो मानदर्शी है, वह मायादर्शी है।
मायदंसी से लोभदंसी,	जो मायादर्शी है, वह लोभदर्शी है।
जे लोभदंसी से पेज्जदंसी।	जो लोभदर्शी है, वह प्रेयदर्शी है।

पेज्जदंसी से दोसदंसी,

जो प्रेयदर्शी है, वह द्वेषदर्शी है ।

जे दोसदंसी से मोहदंसी ।

जो द्वेषदर्शी है, वह मोहदर्शी है ।

मोहदंसी से गब्भदंसी,

जो मोहदर्शी है, वह गर्भदर्शी है ।

जे गब्भदंसी से जम्म दंसी ।

जो गर्भदर्शी है, वह जन्मदर्शी है ।

जम्मदंसी से मारंदसी,

जो जन्मदर्शी है, वह मृत्युदर्शी है ।

जे मारंदसी से निरयदंसी ।

जो मृत्युदर्शी है, वह नरकदर्शी है ।

जे निरयदंसी से तिरियदंसी,

जो नरकदर्शी है, वह तिर्यंचदर्शी है ।

जे तिरियदंसी से दुक्खदंसी ।

जो तिर्यचदर्शी है, वह दुःख दर्शी है ।

से वंता कोहं च, माणं च,
मायं चं, लोभं च ।

साधक क्रोध, मान, माया और लोभ का वमन करने वाला होता है ।

अभिनिवट्टेज्जा कोहं च, माणं च,
मायं च, लोहं च, पेज्जं च,
दोसं च, मोहं च, गब्भं च,
जम्मं च, मारं च, नरगं च,
तिरियं च, दुक्खं च ।

जो वमन करता है वही क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रेय, द्वेष, मोह, गर्भ, जन्म, मृत्यु, नरक, तिर्यच और दुःख को छिन्न करने में समर्थ होते हैं ।

एयं पासगस्स दंसणं
उवरयसत्थस्स पलियंतकरस्स ।

यह वृत्तिसंक्षय साधना अहिंसक और निरावरण दृष्टा का दर्शन है ।

ऋजुता, जितेन्द्रियता और मानसिक स्थिरता भीतर की भावधाराओं का रूपान्तरण कर देता है । जिससे व्यक्तित्व का परिष्कार विशुद्ध हो जाता है । विशुद्ध अध्यवसाय से आभामण्डल की निर्मलता स्पष्ट होती है । व्यक्ति प्रशान्त चित्तवाला, विशुद्ध आचरण वाला, ध्यान में निरंतर संलग्न साधनावाला और क्रमशः निर्विकल्प-आराधना वाला होता है ।

आवीलए पवीलए निप्पीलए
जहित्ता पुव्वसंजोगं, हिच्चा
उवसमं ।

वृत्तियाँ क्षीण होते ही वस्तु, व्यक्ति और घटना का आकर्षण प्रायः विनष्ट होता जाता है । साधक अपनी साधना को चरम सीमा तक ले जाने के लिए शरीर का आपीडन, प्रपीडन और निष्पीडन करता है ।

साधना काल की तीन भूमिकाएँ हैं—

१. **आपीडन**—ध्यान का अल्पकाल और श्रुत-स्वाध्याय के लिए उचित तप, जप और त्याग ।

२. **प्रपीडन**—संयम की उत्कृष्ट साधना, दीर्घ तप, जप, त्याग, अध्यापन और उपदेश तथा उत्कृष्ट ध्यान और समाधि का प्रथम चरण ।

३. **निष्पीडन**—बाह्य और आभ्यंतर उत्कृष्ट तप, ध्यान और समाधि की साधना ।

गुण-स्थान क्रमारोह से इन तीनों भूमिकाओं का सम्बन्ध इस प्रकार प्रस्तुत है । जैसे—

अपूर्वकरणादि गुणस्थानों में कर्मों का आपीड़न हो । अपूर्वकरण एवं अनिवृत्तिकरण गुणस्थानों में प्रपीडन हो । तथा सूक्ष्म-संपराय-गुणस्थान में निष्पीडन हो । अथवा उपशम श्रेणी में आपीड़न क्षपक श्रेणी में प्रपीडन और शैलेशीकरण में निष्पीडन होता है ।

⌘

३

साधना के महत्वपूर्ण सूत्र—विरक्ति और मौलिक तत्त्व

- कर्म क्षय का उपाय
- निर्दोष—चिकित्सा
- सत्य का अनुसंधान
- सत्यार्थी के लिए पाप अकरणीय
- अकृत कार्य में संलग्न
- सर्वेन्द्रिय संयम में रमण
- विषयों में अनुरक्त
- मूर्च्छा में विरत

राग, विराग और अनुराग से जुड़े विविध आयाम

- हास्य से लाभ और हानि
- अनुराग
- विराग
- पाप निवृत्ति
- अतृप्त इच्छा
- अप्रियता

यौगिक भावना के प्रयोग की पद्धति

- आत्मीयता
- द्वंद मुक्ति का उपाय
- आदर-सत्कार
- प्राण सुरक्षा

⌘

अहिंसा का आदर्श

८१.

से मेहावी अणुग्धायणस्स खेयण्णे, जे य वंधप्प मोक्खमण्णेसी ।

साधक अहिंसा का समग्र स्वरूप, अहिंसा के मर्म स्थान और कौन-सी प्रवृत्ति से कर्म बन्धन होते हैं और कौन-सी प्रवृत्ति से कर्मक्षय होते हैं, उसका अन्वेषण करता है ।

से जं च आरभे, जं च णारभे, अणारद्धं च णारभे ।

कौन-सी प्रवृत्ति का आचरण करने योग्य है, कौन-सी प्रवृत्ति का आचरण करने योग्य नहीं है ऐसा विवेक ज्ञान जिस साधक को होता है वही अनाचीर्ण प्रवृत्ति का आचरण नहीं करता है ।

छणं छणं परिण्णाय, लोगसण्णं च सव्वसो ।

ऐसे साधक प्रत्येक हिंसास्थान को जाने और परित्याग करें जिससे लौकिक सुख का सर्वथा असंग हो सकता है ।

ण लिप्पई छणपएण वीरे ।

जो साधक कुशल होता है वे विवेक ज्ञान के साथ चलता है अतः हिंसा स्थान से लिप्त नहीं होता जो बन्ध से मुक्त होने की खोज करता है उसके लिए शरीर और शरीर के प्रति ममत्व का विसर्जन एक बहुत बड़ी साधना है किन्तु हरेक साधक के बस की बात नहीं अतः शरीर के व्याधि निवारण हेतु चिकित्सा आवश्यक है ।

चिकित्सा जीवन और मृत्यु का बचाव नहीं कर सकती किन्तु समाधि रूप आधार अवश्य बना सकती है । फिर भी औषधि

के प्रयोग से होने वाली हिंसा से बचना परम आवश्यक है ।

से हंता छेत्ता भेत्ता लुंपइत्ता विलुंपइत्ता उद्दवइत्ता ।

क्योंकि चिकित्सा के माध्यम से अनेक जीवों का हनन, छेदन, भेदन, लुंपन, विलुंपन और प्राण वध होता है ।

अंजू चेय-पडिवुद्ध-जीवी, तम्हाणं हंता ण विधायए ।

ज्ञानी पुरुष ऋजु तथा (हन्तव्य और घातक की एकता को) समझकर जीने वाला होता है । इसलिए वह स्वयं हनन नहीं करता और दूसरों से नहीं करवाता ।

पर किसी भी प्राणी की हिंसा करने पर ऐसा चिन्तन करे जैसी संवेदना का अनुभव मुझे होता है वैसा अन्य को होता है । अतः सरल शृद्धावान, प्रबुद्ध साधक किसी भी प्रकार की हिंसा, भय, प्रलोभन या छलादि से सर्वथा भिन्न रहने में समर्थ हो सकता है ।

⌘

सत्य का संशोधन

से वसुमं सव्व-समन्नागय पण्णाणेणं अप्पाणेणं अकरणिज्जं पापं कम्मं तं णो अण्णेसिं ।

पूर्ण अहिंसक सत्यप्रज्ञ साधक के लिए अंत:करण से पापकर्म (हिंसा का आचरण और विषय का सेवन) अकरणीय है । जो पाप कर्म सत्यार्थी के लिए अकरणीय है उसका अन्वेषण भी न करें । अर्थात् मन से चिन्तन भी न करे ।

पुरिसा ! सच्चमेव समभिजाणाहि। सच्चस्स आणाए उवट्ठिए से मेहावी मारं तरति । पुरिसा ! अत्तावमेव अभिविगिज्झ, एवं दुक्खा पमोक्खसि । से अविहिंसमाणे अणवयमाणे, पुट्ठो फासे विप्पणोल्लए ।

अध्यात्म योगी सत्य का ही अनुशीलन करता हुआ सत्य की साधना में संलग्न रहता है । सत्य साधक अनेक कामनाओं और मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकता है और आत्मा का ही निग्रह कर सत्यदर्शी, सर्व दु:खों से मुक्त हो जाता है ।

सुख और दु:ख का अध्यवसाय स्वतंत्र होता है ऐसा जानने वाला कभी हिंसा और असत्य का स्वीकार कर नहीं सकता । क्योंकि वह सूक्ष्म जीवों के अस्तित्व को जानता है अत: उन जीवों की सुरक्षा के लिए जो भी कष्ट प्राप्त हो साधक उसे समभाव से सहन करता है ।

८२.

एस समिया-परियाए वियाहिते ।

ऐसा अहिंसक, सहिष्णु, सत्यार्थी, साधक, सत्य का पारगामी कहलाता है ।

अभिभूय अदक्खू, अणभिभूते पभू निरालंबणयाए ।

साधना में आने वाले विघ्नों को अभिभूत करने पर, जो विघ्नों से अभिभूत नहीं होता है वही निरालंबी होने में समर्थ होता है तथा सत्य तत्व का साक्षात्कार करने में पूर्ण होता है । ॐ

अचौर्य वृत्ति

उद्देसो पासगस्स णत्थि ।

जो दृष्टा है, अचौर्च की साधना में संलग्न है, उसके लिए उपदेश की आवश्यकता नहीं होती । आवश्यकता है जो इस जीवन के प्रति प्रमत्त है, आसक्त है, वही चोरी जैसी प्रवृत्ति में प्रवर्तमान होता है अकृतकार्यों में संलग्न रहता है । सामान्यतः मानव विषय और परिग्रह के प्रति अनुराग होने से ही चोरी जैसा अकृत्य करता है । वह सोचता है कि इसके बिना यात्रा चल नहीं सकती ।

से हंता छेत्ता भेत्ता लुंपित्ता विलुंपित्ता उद्दवित्ता उत्तासइत्ता ।

इसीलिए वह हनन, छेदन, भेदन, चोरी, ग्राम घात, प्राणवध और त्रास—इन प्रवृत्तियों में लगा रहता है । किन्तु अपरिग्रही साधक का जीवन जब उसके सन्मुख आता है और उसे शान्तिपूर्वक जीवन-यापन करता हुआ देखता है तब वह अचौर्य जैसे व्रत्तों की ओर चिन्तन करता है ।

अदत्तहारो वासे अवहरति ।

परिग्रह की लालसा में आसक्त मानव सुख प्राप्ति हेतु धन का संचय करता है उसकी सुरक्षा करता है फिर भी न जाने कैसे चोर उसे चुरा लेता है । जिससे मानव दुःख से त्रसित हो जाता है ।

अहो य राओ य परितप्पमाणे, कालाकालसमुट्ठाई, संजोगट्ठी अट्ठालोभी, आलुंपे सहसक्कारे, विणिविट्ठचित्ते एत्थ सत्थे पुणो-पुणो ।

वह दिन-रात परितप्त रहता है, काल या अकाल में अर्थार्जन का प्रयत्न करता है, संयोग का अर्थी होकर अर्थ-लोलुप होकर चोर या लुटेरा हो जाता है उसका चित्त अर्थार्जन में ही लगा रहता है । अर्थार्जन

में संलग्न पुरुष पुनः पुनः शस्त्र संहारक वनता है ।

अदुवा अदिण्णादाणं ।

किसी भी जीव की हिंसा के साथ-साथ उसके प्राणों को हरण करना उसकी चोरी करना है अतः हिंसा के साथ-साथ अदत्ता दान भी स्पष्ट है ।

अदुवा अदिन्नमाइयंति ।

प्राणियों के प्राण का अपहरण करना अदत्त है । प्राणवध करने वाला केवल हिंसा की ही दृष्टता नहीं करता किन्तु अदत्त का भी अनाचार करता है ।

अभिक्कंतं च खलु वयं संपेहाए ।

अतः अवस्था जा रही है—यह देखकर साधक तू शीघ्र ही अचौर्य व्रत की आराधना में संलग्न हो जा ।

⌘

ब्रह्मचर्य की उर्जा

ब्रह्मचर्य अर्थात् ब्रह्म याने आत्मा, चर्य याने विचरण जो आत्मा में ही रमण करता है । मैथुन विरति, अर्थात् सर्वेन्द्रिय संयम में रमण करता है । जो गुरुकुलवास का अधिकारी है तथा सदाचारी है ।

ब्रह्मचारी में अनेक लक्षण विद्यमान होते हैं जैसे—

८३.

से णो काहिए णो पासणिए णो संपसारए णो ममाए णो कयकिरिए वइगुत्ते अज्झप्प-संवुडे परिवज्जए सदा पावं ।

१. ब्रह्मचारी काम-कथा न करे ।
२. वासना पूर्ण दृष्टि से न देखे ।
३. परस्पर कामुक भावों का प्रसारण न करे ।
४. ममत्व न करे ।
५. शरीर की साज सज्जा न करे ।
६. मौन करे ।
७. मन का संवरण करे ।
८. सदा पाप का परिवर्जन करे ।

एतं मोणं समणुवासिज्जासि ।

इस प्रकार ब्रह्मचारी (अब्रह्मचर्य विरति रूप) ज्ञान का सम्यक् पालन करने वाला साधक होता है ।

८४.

एस पुरिसे दविए वीरे,
आयाणिज्जे वियाहिए ।
जे धुणाइ समुस्सयं,
वसित्ता बंभचेरंसि ।।

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य में विवेक रखने वाला साधक राग द्वेष से मुक्त और पराक्रमी होता है । अन्य के लिए अनुकरणीय, मुक्तिगमन योग्य ब्रह्मचर्य में स्थित, साधक तपश्चरण आदि द्वारा कर्म मल को क्षय करता है ।

जे छेए से सागारियं ण सेवए ।	ब्रह्मचारी मोह के परिणाम को जानता है अतः वह मैथुन का सेवन नहीं करता ।
कट्टु एवं अविजाणओ, वितिया मंदस्स वालया ।	जो मन्दमति मैथुन का सेवन कर लेता है और पूछने पर 'मैं नहीं जानता' यह कहकर उसे अस्वीकार कर देता है, यह उस मन्दमति की दोहरी मूर्खता है ।
लद्धा हुरत्था पडिलेहाए आगमित्ता आणविज्ञा अणासेवणयाए ।	इसलिए प्राप्त काम-भोगों को पर्यालोचनापूर्वक जानकर उनके अनासेवन की आज्ञा दे—उनके कटु परिणामों का शिष्य को ज्ञान कराना आवश्यक है ।
पासह एगे रुवेसु गिडे परिणिज्ञमाणे ।	जो मनुष्य शरीर में आसक्त है वे विषयों में अनुरक्त है ।
एत्थ फासे पुणो-पुणो ।	जिससे इस प्रवाह में वे बार-बार दुःख को प्राप्त होते हैं ।
आवंती के आवंती लोयंसि आरंभजीवी, एएसु चेव आरंभजीवी ।	इस जगत में जितने मनुष्य हिंसा-जीवी हैं वे विषयों में आसक्त होने के कारण ही हिंसा-जीवी हैं ।

ब्रह्मचारी साधक संसार के, मोहवासना के कटु परिणामों का पर्यालोचन करके स्वयं मैथुन का सेवन नहीं करता है । दूसरों को भी काम-भोगों के कटु फल का ज्ञान कराकर सेवन न करने का उपदेश देता है और जो काम-भोग में आसक्त है । भोग-विलास के स्थानों में ही रमण करते हैं । उन विषयों के वशीभूत संसार प्रवाह में बहे जा रहे हैं और जन्म-मरण रूप संसार का परिभ्रमण करते हैं । उससे मुक्त होने की अनुमोदना करते हैं ।

एतेसु चेव वंभचेरं ।

जो परिग्रह आदि व्रतों का संयम करता है वही ब्रह्मचारी होता है । जो ब्रह्मचारी निरस आहार करता है, अल्प आहार करता है, कायोत्सर्ग करता है, ग्रामानुग्राम विहार करता है तथा इन्द्रिय निग्रह करता है ऐसा साधक लाखों विघ्न आने पर भी ब्रह्मचर्य से विचलित नहीं हो सकता है ।

⌘

अपरिग्रह भाव

आवंती के आवंती लोगंसि परिग्गहावंती-से अप्पं वा, वहुं वा, अणुं वा, थूलं वा, चित्तमंतं वा, अचित्तमतं वा, एतेसु चेव परिग्गहावंती ।

आवंती के आवंती लोयंसि अपरिग्गहावंती, एएसु चेव अपरिग्गहावंती ।

इस जगत में जितने मनुष्य परिग्रही हैं, वे अल्प या बहुत, लूक्ष्म या स्थूल सचित्त या अचित्त वस्तु का परिग्रहण करते हैं । अतः वस्तुओं में मूर्च्छा रखने के कारण ही वे परिग्रही हैं ।

इस जगत में जितने मनुष्य अपरिग्रही हैं वे वस्तुओं में मूर्च्छा न रखने और उनका संग्रह न करने के कारण ही अपरिग्रही हैं ।

पदार्थ अल्प या बहुमूल्यवान है यह महत्व नहीं रखता, महत्व है साधक की आसक्ति, ममत्व या मूर्च्छा कितनी होती है । किसी भी पदार्थ, वस्तु या व्यक्ति के प्रति थोड़ी या अधिक भी मूर्च्छा है तो उस साधक की गणना परग्रही मानव में होती है ।

इसी प्रकार आहार शरीर और इन्द्रिय के प्रति आसक्त होने पर भी मैं अनासक्त हूँ ऐसा अल्पज्ञ भी परिग्रही मानव की कोटि में ही होता है । चार संज्ञा में परिग्रह संज्ञा संपूर्ण शरीर में व्याप्त होती है । ब्रह्मचर्य-भंग भी मोह वस ही होता है और मोह आभ्यंतर परिग्रह है । परिग्रह से विरत साधक ही वास्तव में ब्रह्मचारी है । अहिंसा, सत्य आदि व्रतों का आचरण अपरिग्रह व्रत

का अस्तित्व है । अतः परिग्रह से विरत साधक ही वास्तव में अपरिग्रही रह सकता है तथा अहिंसादि व्रतों का आचार सुरक्षित और विशुद्ध रूप से पालन कर सकता है ।

८५.

से तं संवुज्झमाणे, आयाणीयं समुट्ठाए ।

ऐसे साधक परिग्रह के परिमाण को समीचीन दृष्टि से समझकर संयम की साधना में सावधान हो जाता है । अतः वह पाप संग्रह स्वयं करता नहीं और अन्यों में करवाता नहीं ।

सिया से एगयरं विप्परामुसइ, छसु अण्णयरंसि कप्पति ।

उसे ऐसा चिन्तन करना है कि यदि जीवन में से एक का स्पर्श हो जाता है तो छहों अर्थात् हिंसा, असत्य, अस्तेय, अब्रह्म, परिग्रह और रात्रि भोजन में से किसी भी अव्रत का स्पर्श कर सकता है । मानसिक दुर्वलता से कोई भी अघटित घटित हो सकता है । जब पदार्थ के साथ, व्यक्ति के साथ, वस्तु के साथ ममत्व बुद्धि जुड़ जाती है, तव वह पदार्थ परिग्रह कोटि में आ जाता है । अतः ममत्व जो बुद्धि के ऊपर उठता है वही परिग्रह बुद्धि से ऊपर उठता है । संसार में परिग्रह और हिंसा के कारण ही समस्त दुःख पीड़ा और परिभ्रमण बढ़ता है ।

से अण्णवहाए अण्णपरियावाए अण्णपरिग्गहाए, जणवयवहाए जणवयपरियावाए जणवयपरिग्गहाए ।

तृष्णातुर मानव दूसरों के वध, परिताप और परिग्रह तथा जनपद के वध, परिताप और परिग्रह के लिए अनेक प्रवृत्ति करता है ।

इसलिए प्रथम अहिंसा और अंतिम अपरिग्रह दोनों की विशुद्धि सभी व्रतों की विशुद्धि है ।

व्रतों का आदि बिन्दु है अहिंसा और अंतिम बिन्दु है परिग्रह । ऐसा कोई भी परिग्रह नहीं जिसके संचय करने में अल्प या बहु किसी प्रकार की हिंसा नहीं । जहाँ हिंसा है वहां परिग्रह है अथवा नहीं भी है किन्तु जहाँ परिग्रह है वहाँ हिंसा होती ही है । अतः अहिंसा और अपरिग्रह रूप जीवन व्यवहार करना अत्यंत आवश्यक है ।

⌘

हास्य से हानि और लाभ

अवि से हासमासज्ज,
हंता णंदीति मन्नति ।
अलं वालस्य संगेणं,
वेरं वड्ढेति अप्पणो ।

हास्य विनोद के कारण प्राणियों का वध करके प्रमोद मानने वाला काम-भोगासक्त मानव लाभ और अलाभ के विषय में क्या सोचेगा ? ऐसे हास्य प्रसंग से वह अज्ञानी लाभ के स्थान पर प्राणियों के साथ अपना बैर बढ़ाता है ।

से ण हस्साए, ण किड्डाए,
ण रतीए, ण विभूसाए ।

उसे पता नहीं कि बृद्ध होने पर न तो हास्य विनोद के योग्य रहूँगा और न ही क्रीड़ा, रति या शृंगार कर पाऊँगा ।

तम्हा पंडिए णो हरिसे,
णो कुज्झे ।

इसलिए पंडित साधक श्रेष्ठ गोत्र प्राप्त होने पर हर्षित नहीं होता है और निम्न गोत्र प्राप्त कर कुपित नहीं होता है ।

सव्वं हासं परिच्चज्ज ।

किन्तु हास्यादि प्रमोदों का त्याग करता है ।

⌘

रति में प्रियता

ण रतीए ।

जरा-जीर्ण मानव रति-सेवन के योग्य नहीं होता है । इसी प्रकार—

वहुरए ।

जो बहुत से पापों में रत रहता है वह बहुरत कहलाता है ।

अच्चेइ जाइ-मरणस्स वट्टमग्गं वक्खाय-रए ।

सूत्र और अर्थ में रत मुनि जन्म और मृत्यु के वृत्त-मार्ग का अतिक्रमण कर देता है ।

अरति में अप्रियता

अरइं आउट्टे से मेहावी ।

जो अरति का निवर्तन करता है, वह मेधावी होता है ।

अप्रमाद में रति और प्रमाद में अरति होने पर भीतर की प्रसन्नता प्राप्त होती है । इसी प्रकार अप्रमाद में अरति और प्रमाद में रति होने से उसका ह्रास होता है । अतः साधक साधना द्वारा होने वाली अरति का निवर्तन करे ।

का अरई के आणंदे ?
एत्थंपि अग्गहे चरे ।

साधक के लिए क्या अरति और क्या आनंद ? वह अरति और आनंद के विकल्पों को ग्रहण न करे ।

अरति, इष्ट वस्तु के प्राप्त न होने या वियोग होने से होती है और आनंद इष्ट-प्राप्ति होने से । परन्तु जिस साधक का चित्त धर्म व शुक्लध्यान में रत है, जिसे

आत्म-ध्यान में ही आत्मरति,आत्म-संतुष्टि या आत्मानंद की प्राप्ति हो चुकी है उसे इस वाह्य अरति या आनंद से क्या मतलब है ? इसीलिए साधक आध्यात्मिक जीवन में अरति-रति के मूल राग-द्वेष का ग्रहण न करता हुआ विचरण करे ।

विरयं भिक्खुं रीयंतं, चिररातोसियं, अरती तत्थ किं विधारए ?

चिरकाल से प्रव्रजित, संयम में (उत्तरोत्तर) गतिशील विरत भिक्षु को क्या अरति अभिभूत कर पायेगी ?

जो साधक विषयों को त्यागकर मोक्ष के लिए चिरकाल से चल रहा है । बहुत वर्षों से संयम-पालन कर रहा है क्या उसे भी अरति स्खलित कर सकती है ? हाँ ! अवश्य कर सकती है; क्योंकि इन्द्रियाँ दुर्वल होने पर भी दुर्दमनीय होती है, मोह की शक्ति अचिन्त्य है, कर्म-परिणति क्या-क्या नहीं कर देती । सम्यग्ज्ञान में स्थित पुरुष को भी सघन, चीकने, भारी एवं वज्रसारमय कर्म अवश्य ही पथ या उत्पथ पर ले जाते हैं अतः ऐसे भुलावे में न रहे कि 'मैं वर्षों से संयम-पालन कर रहा हूँ, चिरदीक्षित हूँ, अरति मेरा क्या करेगी ? क्या विगाड़ देगी ?'

संधेमाणे समुट्ठिए ।

प्रतिक्षण धर्म का संघान करने वाले तथा वीतरागता के अभिमुख मुनि को अरति अभिभूत नहीं कर पाती ।

मानव का मन दुर्वल अस्थिर और उच्छृंखल होता है अतः कर्म वैचित्र्य दशा में ज्ञानी साधक भी पथ-भ्रष्ट हो जाते हैं किन्तु जागरूक साधक विघ्नों में ही विजय

प्राप्त करते हैं । आत्मानुभूति में ही विचरण करते हैं ।

रति-अरति का द्वंद

सीओसिणच्चाई से निग्गंथे अरइ-रइ-सहे फरुसियं णो वेदेति ।

निर्ग्रन्थ सर्दी और गर्मी के द्वारा प्राप्त सुख-दुःख के परिषह-उपसर्ग को सहते हैं । अरति-संयम में होने वाले विषाद, पीड़ा या वेदना का अनुभव नहीं करता है । रति-स्पर्शजन्य सुख-का वेदन और असंयम में होने वाला आह्लाद, आसक्ति आदि का भी अनुभव नहीं करता ।

अहियासए सया समिए,
फासाइं विरुवरुवाइं ।
अरइं रइं अभिभूय,
रीयई माहणे अवहुवाई ।।

भगवान महावीर ने अपनी समीचीन प्रवत्ति के द्वारा नाना प्रकार से स्पर्शों को झेला । वे संयम में होने वाली अरति और असंयम में होने वाली रति को ध्यान के माध्यम से अभिभूत कर चलते थे ।

भय का आवेग

आरंभजीवी उ भयाणुपस्सी ।

आरंभजीवी अनुष्य को भय का दर्शन (या अनुभव) होता रहता है ।

हिंसादि पापाचार में प्रवृत्त मानव दंड आदि के भय का अनुभव करते रहते हैं । रागदि बन्धनों में आसक्त होने से शारीरिक, मानसिक तनावों का कष्ट भोगता रहता है ।

सपेहाए भया कज्जति ।

मानव किसी कामना से, किसी अपेक्षा से या किसी भय से हिंसादि कर्म करता है ।

शोक—जीवन का उद्वेग

से सोयति जूरति तिप्पति पिड्डति परितप्पति ।

मन का संकल्प पूर्ण न होने पर कामभोग में आसक्त मानव अतृप्त इच्छा रहने से गहरा शोक व्यक्त करता है । काम की अप्राप्ति तथा वियोग होने पर शोकग्रस्त मानव की खिन्नता से उसका शरीर सूख जाता है वह आँसू बहाता है, पीड़ा और परिताप से दुःखी हो जाता है ।

दुगुंछा (तिरस्कार)

जेहिं वा सद्धिं संवसति ते वा णं एगया णियगा तं पुव्विं परिवयंति, सो वा ते णियगे पच्छा परिवएज्जा ।

वह जिनके साथ रहता है, वे आत्मीय जन एकदा उसके तिरस्कार की पहल करते हैं । बाद में वह भी उनका तिरस्कार करने लग जाता है ।

शरीर शक्ति की हानि और विषयासक्ति की वृद्धि के कारण मानव में एक विचित्र प्रकार की व्याकुलता उत्पन्न हो जाती है । मन में सहज ही चिन्ता, भय-शोक और रोग बढ़ जाता है जिससे परिजन उद्विग्न हो जाते हैं और वह तिरस्कार का पात्र बन जाता है ।

जिसके साथ वह रहता है वे आत्मीय जन वृद्धावस्था आने पर उसका तिरस्कार करने लगते हैं अतः वह भी उन आत्मीय जनों का तिरस्कार करने लगता है ।

मैत्री—आत्मलीनता

पुरिसा ! तुममेव तुमं मित्तं,
किं वहिया मित्तमिच्छसि ?

हे आत्मन् ! तू ही मेरा मित्र है, फिर बाहर अपने से भिन्न मित्र क्यों ढूंढ रहा है ।

बाहर का मित्र आज मित्र है तो कल दुश्मन भी बन जाता है । अपने से जो भिन्न है वह द्वंद को भी खड़ा कर सकता है । द्वंद बदला नहीं जाता उसे बदलने के लिए द्वंद की अनुभूति को बदलना पड़ता है । मैत्री का प्रथम चरण द्वंदातीत चेतना की जागृति का चरण है । जब तक दो है दो में द्वैत है । द्वंद के प्रतिबिम्ब समाप्त होते ही अपना स्वरूप स्पष्ट हो जायगा । अपने प्राणों की बलि देकर दूसरों के प्राणों की सुरक्षा करना मैत्री है । कष्ट शरीर को मिलता है, अनुभूति मन को होती है, किन्तु मैत्री का आनंद आत्मा को मिलता है ।

जागर-वेरोवरए वीरे । एवं दुक्खा पमोक्खसि ।

जाग्रत और वैर से उपरत सबका मित्र वीर होता है ।

ऐसे वीर साधक (ज्ञान, अनासक्ति, सहिष्णुता, जागृति और मैत्री के प्रयोग द्वारा) दुःखों से मुक्त हो जाता है ।

समयं लोगस्स जाणित्ता, एत्थ सत्थोवरए ।

'सब आत्माएँ' समान हैं—यह जानकर पुरुष समूचे जीव-लोक की हिंसा से उपरत हो जाए और सभी से मैत्री करें ।

प्रमोद—आदरभाव

मज्झत्थो णिज्जरापेही,
समाहिमणुपालए ।
अंतो वहिं विउसिज्ज, अज्झत्थं
सुद्धमेसए ।।

गुणीजनों के प्रति प्रमोद भाव होता है । गुणों से युक्त साधक जीवन जीने की आकांक्षा और मृत्यु की इच्छा—इस प्रकार जीवन और मरण दोनों में अनासक्त रहता है । ऐसा साधक माध्यस्थ निर्जरादर्शी, समाधिस्थ, शारीरिक, ममत्व और पदार्थों के आकर्षण से ऊपर उठा हुआ होता है ।

कारुण्य का स्रोत

सव्वे पाणा सव्वे भूता सव्वे जीवा सव्वे सत्ता ण हंतव्वा, ण अज्ञावेयव्वा, ण परिघेतव्वा, ण परितावेयव्वा, ण उद्दवेयव्वा ।

किसी भी प्राणी, भूत, जीव और सत्व का हनन नहीं करना चाहिए, उन पर शासन नहीं करना चाहिए, उन्हें दास नहीं बनाना चाहिए, उन्हें परिताप नहीं देना चाहिए, उनका प्राण-वियोजन नहीं करना चाहिए ।

प्राण, भूत, जीव, सत्व—ये चारों शब्द सामान्यतः जीव के ही पर्यायवाची शब्द हैं । जैसे—

१. प्राण—दस प्रकार के प्राण युक्त होने से ।

२. भूत—तीनों काल में रहने के कारण ।

३. जीव—आयुष्य कर्म के कारण जीता है इससे ।

४. सत्व—विविध पर्यायों का परिवर्तन होते हुए भी आत्म-द्रव्य की सत्ता में कोई अन्तर नहीं होने से ।

'हंतव्वा'—डण्डा/चाबुक आदि से मारना-पीटना ।

'अज्ञावेतव्वा'—बलात् काम लेना, जवरन आदेश का पालन कराना, शासित करना ।

'परिघेत्तव्वा'—बंधक या गुलाम बनाकर अपने कब्जे में रखना । दास-दासी आदि रूप में रखना ।

'परितावेयव्वा'—परिताप देना, सताना, हैरान करना, व्यथित करना ।

'उद्दवेयव्वा'—प्राणों से रहित करना, मार डालना ।

ओए दयं दयइ ।

वीतराग मुनि दया का पालन करता है ।

माध्यस्थ वृत्ति की पराकाष्ठा

समियंति मण्णमाणस्स
एगया समिया होइ ।

वह किसी व्यवहार को सम्यग् मानता है और वास्तव में वह सम्यग् है ।

समियंति मण्णमाणस्स
एगया असमिया होइ ।

वह किसी व्यवहार को सम्यग् मानता है और वास्तव में वह असम्यग् है ।

असमियंति मण्णमाणस्स
एगया समिया होइ ।

वह किसी व्यवहार को असम्यग् मानता है और वास्तव में यह सम्यग् है ।

असमियंति मण्णमाणस्स
एगया असमिया होइ ।

वह किसी व्यवहार को असम्यग् मानता है और वास्तव में वह असम्यग् है ।

समियंति मण्णमाणस्स समिया वा, असमिया वा समिया होइ उवेहाए ।

व्यवहार वास्तव में सम्यग् हो या असम्यग्, किन्तु सम्यग् मानने वाले के मध्यस्थ (राग-द्वेष रहित या निष्पक्ष) भाव के कारण

वह सम्यग् होता है । व्यवहार वास्तव में सम्यग् हो या असम्यग्, किन्तु असम्यग् मानने वाले के मध्यस्थ भाव के कारण वह असम्यग् होता है ।

समियंति मण्णमाणस्स समिया वा, असमिया वा, असमिया होइ उवेहाए ।

जो साधक वास्तव में सम्यग् है उनका व्यवहार सम्यग् ही होता है ऐसा नहीं । जो साधक का व्यवहार सम्यग् होता है उसका वास्तव में सम्यग् होता ही है ऐसा भी नहीं क्योंकि साधक आत्मज्ञानी है पर पूर्ण सफल नहीं होने से क्रिया और प्रतिक्रिया का परिणाम अवश्य होता रहेगा । पूर्णता न होने से सभी साधक का मानसिक स्तर बौद्धिक स्तर, व्यवहारिक स्तर समान नहीं होता । तर्क-शक्ति, चिन्तन-शक्ति, स्फुरणा-शक्ति, स्मरण-शक्ति, निर्णय-शक्ति या निरीक्षण शक्ति का परिणाम भी समान नहीं होता । कोई साधक त्वरित गति से ग्रहण करता है, कोई मंदगति से ।

जिसका अध्यवसाय शुद्ध है, दृष्टि माध्यस्थ है, भाव निष्पक्ष है और अन्तःकरण ऋजु है, ऐसा साधक वस्तु, व्यक्ति और व्यवहार के विषय में सम्यक् माना जाता है और जिसका नहीं है उसके विषय में सम्यक् नहीं माना जाता है । किन्तु मध्यस्थदर्शी दोनों साधकों का विशुद्ध रूप में ही पर्यालोचन करता है ।

⌘